सांस्कृतिक
निबंध
भगवतशरण उपाध्याय
भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

डा० भगवतशरण उपाध्यायकी
प्रखर लेखनीसे प्रसूत ये निबन्ध विभिन्न
क्षेत्रोंका ज्ञान अपनी परिधिमें समेटे हैं
—धर्म, साहित्य, कला तक। अत्यन्त
प्राचीन संस्कृतियोंका कालावृत रूप इन
अनुसन्धानमिश्र निबन्धोंमें खुल पड़ा है।
ऋग्वेदकी सामाजिक भावभूमि, मिस्री
चित्रलिपिमें सुरक्षित पिरामिडोंका
आत्मसाहित्य, सुमेरी-बाबुली जीवनके
चित्र, यूनानी-रोमन देवताओंके मानवीय
आचरण, अफ्रीकी-चीनी लोक-कथाएँ
भाषाकी सुघड़ शैलीमें प्रस्तुत हैं।
भाषा और शैली विषयके अनुकूल गरिम
और सरल होती गई है। अभ्यस्त
क्षणोंमें इन निबन्धोंका पारायण पाठकके
व्यापक ज्ञान और मनोरंजन दोनोंका
साधक होगा।

सांस्कृतिक निबन्ध

■ ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला

सांस्कृतिक निवन्ध

•

भगवतशरण उपाध्याय

भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन

प्रथम संस्करण
१९६०
मूल्य तीन रुपये

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
रोड, वाराणसी

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल,
सन्मति मुद्रणालय, वाराण

श्री भागीरथ कानोड़िया को

प्रस्तुत सग्रह मेरे निवन्धोका है।

—लेखक

काशी,
१६–२–६०

• विषय-क्रम •

•

सांस्कृतिक निबन्ध

ऋग्वेदके रोमैण्टिक ऋषि : २ :

ऋग्वेद प्रौढ़ साहित्य होता हुआ भी मनुष्यके आदिम उल्लासकी कृति है। उसे पढ़ते हुए जैसे हम उसमें घटित जीवनको छूने लगते हैं, उसके देवी-देवताओं तकको, क्योंकि उनका लिबास इन्सानी है, उनकी सूरत-शक्ल इन्सानी है, उनके भाव-विलास, प्रेम-द्वेष मानवीय हैं। और ऋग्वेदके मानव? सर्वथा जीवित चलते-फिरते व्यक्ति, जिनके हर्ष-विषादकी पुकार हम सुन लें, जिनकी मानवीय दुर्बलताएँ सतहपर ही देख लें।

ऋग्वेदका जीवन कविका काता हुआ सूत नहीं, मानवका जिया हुआ जीवन है। उसमें उसके हास्यमें आँसू मिले हैं। जागरूक जीवन वैसे भी रोमैण्टिक वातावरण पैदा करता है और जब उसके साथ प्रणयकी स्वच्छन्दता भी मिली हो तब समाजमें ऐसे व्यक्तियोंकी कमी न होगी जो शकुन्तला और वासवदत्ताको वरें।

गरज कि मानवजातिके उस महान् और तथाकथित धर्म-ग्रन्थमें रोमैण्टिक ऋषियों अथवा अन्य कवियोंकी कमी नहीं। प्रस्तुत लेखमें इन रोमैण्टिक ऋषियोंमेंसे केवल कुछका उल्लेख करेंगे। श्यावाश्व, कक्षीवान् और विमदका। संहितामें उनका बार-बार उल्लेख हुआ है, बार-बार उनके कार्योंके प्रति संकेत हुआ है, साधारण स्पष्ट वर्णन, प्रच्छन्न संकेत, प्रगट उदाहरण, उपमा आदिमें सर्वत्र उनकी कथा अनायास टपक पड़ती है।

श्यावाश्व कवि था। वैसे तीनों आभिजात्य थे, ऋषियोंके बेटे। पौरोहित्य वित्तवृत्तिसे वैसे ही पृथक् हो चुका था जैसे राजन्य-शक्ति कृषि-कार्यसे। सो श्यावाश्व कवि था, ऋषि-पुत्र कवि। परन्तु स्वभावसे

कवि वह न रहा था, हृदयकी दुर्बलताने, आकांक्षाकी उपेक्षाने, विफल प्रणयकी कष्टानुभूतिने उसे कवि बना दिया। उसका हृदय तब पिघलकर तरल धाराओंमें बह चला।

श्यावाश्वकी कहानी प्राचीन साहित्यके रोमांसोंमें-से है। वह ऋग्वैदिक कालकी जनताके लिए आदर्श बन गया जो तबके प्रेमियोंके लिए अनुकरणीय प्रतीक बन गया। वह जब जन्मा तब तक समाजमें धनी-निर्धनकी दीवारें खिंच चुकी थी, राजाओंकी दाय पुश्तैनी हो चुकी थी, राजाका बेटा ही राजा होने लगा था, पुरोहितका बेटा ही ऋषि। परन्तु राजन्यों और पुरोहितोंमें विवाह स्वाभाविक रीतिसे होते थे और उनमें कोई सामाजिक-धार्मिक अवरोध न था। श्यावाश्व राजपुरोहितका पुत्र था।

तब राजा दर्भका पुत्र रथवीति गद्दीपर था और श्यावाश्वका पिता उसी रथवीतिका पुरोहित था। राजाकी एक कन्या थी, अभिराम सुन्दर। थी भी वह ऋषिपुत्र श्यावाश्वके प्रति अनुरक्त और श्यावाश्व तो उसके रूप-ज्योतिका शलभ था ही। समनमें, यज्ञमें, उत्सव-त्योहारोंपर सदा दोनों प्रणयी एक दूसरेसे मिलते और परस्पर रूप-गुणसे आकृष्ट होते। जो वक्तव्य शक्ति न कह पाती वह प्रणय-चेष्टा और भावभंगिमा चुपचाप स्पष्ट कर देती। आकर्षण अनुराग बना, अनुराग भावबन्धन प्रेम। खुले प्रेममें दुराव नहीं होता। श्यावाश्वने प्रेयसीको पत्नी बनाकर चिर सानिध्य और गार्हस्थ्यका सुख भोगना चाहा। कुछ काल उसने अवसरकी प्रतीक्षामें प्रणयकी घनी चोटें भी सहीं, फिर एक दिन प्रेमाविष्ट वह रथवीतिके समीप पहुँचा और उससे उसने उसकी कन्या, अपनी प्रणयिनी, पत्नी-रूपमें माँगी, विवाहका प्रस्ताव किया। पिताको वह सम्बन्ध स्वीकार था पर रानीने ऋषिपुत्रकी वह प्रार्थना अस्वीकार कर दी। उसे श्यावाश्वके गुणोंमें कमी जान पड़ी। उसके दामादका आदर्श धनवान् कवि था। श्यावाश्व न धनवान् था, न कवि। रानीने अपनी राजसी समृद्धि देखी। कन्याकी अल्हड़ सुकुमार भावुकता और भावी जामाताका कठिन दारिद्रय,

उसकी कविप्रतिभाहीन शिष्टता देखी। रानीको वह अभाव खला। कौन उसकी कन्याकी बहुमूल्य आवश्यकताएँ पूरी करेगा? कौन उसके मर्मसे उठती गाथोंको सार्थक करेगा? कौन उसके कवि-हृदयकी काम्य अमूर्त भावनाएँ साकार करेगा? रानीका भय सार्थक था।

आश्चर्य और अभाग्य कि श्यावाश्वका पिता धनी न था क्योंकि तब का पुरोहित उस परम्परामें था जिसमें मित्रके पिरामिडों और ऊरकी बस्तीके पुरोहित थे, धन-वैभव जिसका दास था, दमित जिसका वैतालिक। ऋषियों, विशेषकर, ऋषि-पुरोहितोंको जैसे दानमें मिली वस्तुओंकी कमी न थी, द्वार पर खड़े घोड़ों-रथोंकी भी कमी न थी, बखारमें भरे अन्नकी भी सीमा न थी, घरमें सोनेकी चमककी भी कमी न थी। पर दुर्भाग्य कि पिताके पास धन न था। श्यावाश्व उस कवि-परम्परामें भी जन्मा था जिसके ऋषिने उषाके ललित गानकर काव्य-जगत्में अपना साका चलाया था। पर अभाग्य कि स्वयं उसकी जिह्वामें भारती मुखरित न हुई थी। विवाह रुक गया, युगल प्रणयी विलग हो गये।

श्यावाश्व कवि न था, पर निःसन्देह कवि-हृदय था। अटूट कवि-परम्पराकी अव्यक्त दाय उसकी थी। और अब जो मर्मको ठेस लगी तो राग-रस चू पड़ा। राजकन्याका मादक सौन्दर्य, उसका मदिर भाव-विन्यास श्यावाश्वके कन-कनमें रम गया। उन्हें वह भुला न सका। नीरव एकान्त उसके प्रणयको सविता और शालीनता देने लगा, स्मृति टीसने लगी। प्रणयकी चेतना बहुकी चेतना [illegible] नभूति। ऋषिपुत्र विलख उठा। यह प्र [illegible] , जो निर्जनतामें

सुकुमार था,

सीमा होती है,

[illegible] गरिम प्रणयकी

अविरल भाव-

[illegible] चित्र मानस-पट

पर लिखती जाती। भावबन्धको गाँठें खुल पडी, सोतेका निर्मल रस अन्तरसे उमड आया, कविकी वाणी फूट पडी। उपेक्षित प्रणय आर्त स्वरमें चीत्कार कर उठा। कविका करुण विलाप छन्दके परोपर दिशाओ मे तिर चला, उसने आकाशकी परिधि नाप दी। श्यावाश्व अब कवि था, व्यापक यशका धनी।

श्यावाश्वकी ही भाँति प्रेममें असफल एक और जन था—राजकुमारी शशीयसी। उसका आभिजात्य उसके द्वारे उत्सुक विवाहार्थियोकी भीड लगाये रखता। परन्तु उसने उन सबको अस्वीकृत कर दिया। उसका उपास्य कोई और था, सुन्दर राजन्य कुमार, राजा पुरुमिल्हका तनय। पर उसका प्रियपात्र उसे न मिला। राहमे कुछ कठिनाइयाँ उठ खडी हुई। सम्भवत· राजकुमार जानता न था कि शशीयसी उससे प्रेम करती है, शायद वह किसी कारण विवाहके लिए तैयार न था। राजकुमारी प्रणयके दाहसे घुलने लगी।

तभी उसने श्यावाश्वकी करुण कहानी सुनी। उसके काव्य और प्रणय-पीडाने समानधर्मिणी शशीयसीका मर्म छू लिया। उसने सोचा उसका सखित्व कल्याणकर होगा। वह समान व्ययासे व्यथित है। प्रेमके मारे व्यक्तियोका उसका हृदय उचित दौत्य कर सकता है, कुमारीने जाना, और उसे बुला भेजा। उससे अन्तरका मधुर रहस्य कहा और पुरुमिल्ह-तनयके प्रति प्रणय-सन्देश वहन करनेकी प्रार्थना की। स्वाभाविक ही इस हेतु श्यावाश्वसे अधिक समर्थ दूत नही मिल सकता था। उसने उस रागकी ध्वनि अपने भीतर सुनी थी, उसका कष्ट उसके रोम-रोममें व्यापा, सन्देश लेकर वह चल पडा। वह कवि था, साथ ही प्रेमका मारा। उसका दौत्य सफल हुआ। शशीयसीने अनुरक्त पुरुमिल्ह-पुत्रको वरा।

दम्पतिने दूतको अपनी उदारतासे गद्गद कर दिया, गौओं, घोड़ो रथोंसे कविका घर भर दिया।

उपकृत कविने गाया—"शशीयसीने मुझे गायोंके ढोर दिये, घोडोंके

झुण्ड दिये, सैकड़ों रथोंके दल। श्यावाश्वके दिये उस पतिके बदले जिसकी वह शक्ति बनी (१०, ६१, ५)। अन्य नारियोंसे कितनी भिन्न है यह शशीयसी, उन पुरुषोंसे कितनी भिन्न, अमित उदार, जो देवहीन हैं लाभ-चिन्तनमें निमग्न हैं! (वही, ६) देवताओंमें भी वह उसीको खोजती है जो विश्रान्त है, तृषित और उत्सुक है। उसीको वह अपना मानस समर्पित करती है।" (वही, ७)

दौत्यकी सफलता स्वयं श्यावाश्वकी असफलतापर भयानक व्यंग्य थी। शशीयसीके प्रति उसका गान स्वयं उसके उपेक्षित प्रणयका उपहास कर उठा। पीडित अन्तर फिर वह चलता, उसका स्वर रातके सन्नाटे और उसकी हवाको चीर चलता। उसकी विकम्पित वाणी पुकार उठी। मनारके पहले यशने गाया—

"रात्रि, मेरा सन्देश दर्भतनयके समीप पहुँचा। देवि, तू मेरी गिराका रथ बनकर जा!" (वही, १७,)

"जब रथवीति अग्निमें आहुति डालता हो, तब तू उससे मेरा सन्देश कह। कह कि तेरी सुताके प्रति मेरा मोह कम नहीं हुआ, आज भी जाग्रत है।" (वही १८)

यशकी आर्त पुकार रथवीतिने सुनी। उसकी रानीने सुनी। शशीयसी-की उदारताने उसे सम्पन्न कर दिया था, प्रणय-तपने उसे अप्रतिम कवि। राजकन्याने श्यावाश्वको वरा, उसके माता-पिताने आतुरतासे ब्याहकी अनुमति दी। कवि आनन्दविभोर गाता रहा। ऋग्वेदके प्रायः दस सूक्त उसके हैं। अनेक सन्दर्भोंसे उसकी लोकप्रियता सिद्ध है।

कक्षीवान् ऋग्वेदके महान् द्रष्टा ऋषियोंमें हैं। दो राजाओंके वे दामाद थे, परन्तु स्वयं थे वे दासी-पुत्र (१, ११८, १, ११२, १)। तब अनेक राजा और ऋषि शूद्राओं अथवा अनार्य दासियोंसे विवाह करने लगे थे। उनसे उत्पन्न पुत्र भी औरस माने जाते थे। कक्षीवान्‌के पिता महर्षि,

पज्रोने भी दासीको रख लिया था जिससे कक्षीवान् उत्पन्न हुए। औरस तो वे थे ही, ऋषियोंने उनको बड़ा माना था।

कक्षीवान् बहुपत्नीक थे। उन्होंने कमसे कम दो विवाह किये थे। दोनों पत्नियाँ अभिजात क्षत्रिया थीं, राजाओंकी दुहिता (१, १२६, ३; १, ५१, १३)। पहली रोमशा राजा भाव्यकी पौत्री और स्वनय भावयव्यकी पुत्री थी, घोषाके पिताके नामका ऋग्वेदसे स्पष्ट परिचय तो नहीं मिलता परन्तु कहीं वह भी 'राज्ञः दुहिता' (१०, ४०, ५) गई है जिससे उसका राजघरानेकी कन्या होना प्रगट है।

कक्षीवान् विद्याध्ययन समाप्तकर गुरुके गृहसे पिताके घर लौट रहे थे जब थककर पेडोंकी घनी छायामें राहमें ही वह सो गये। राजा भाव्यका पुत्र स्वनय तभी उधरसे रथपर निकला। ब्रह्मचारीको भूमिपर सोया देख उसने उसे जगाकर रथपर चढ़ा लिया। कक्षीवान्की बातचीतसे स्वनय बडा प्रभावित हुआ। नयी आयुमें इतना ज्ञान देख ब्रह्मचारीपर वह मुग्ध हो गया। उसकी रोमशा नामकी बडी सुन्दरी कन्या थी। उसके लिए कक्षीवान्को उसने समुचित वर माना और उसे पिताके पास ले गया। कक्षीवान्का अध्ययन समाप्त हो चुका था, अब उसे गार्हस्थ्यमें प्रवेश करना ही था, उधर जो उसने राजकन्याकी विनय और प्रतिभा देखी तो उसके पिता-पितामहका अनुरोध मान रोमशासे विवाह कर लिया। पत्नीके अतिरिक्त विवाहमें उसे अमित धन-धान्य, हिरण्य, अनेक वधुएँ (विवाह करने योग्य दास-कन्याएँ), मवेशियोंके ढोर, घोडे और रथ मिले।

सारी धन-सम्पत्ति और जाया लिये कक्षीवान् पिताके घर पहुँचा और वहाँ उसने अपने इस रोमैण्टिक विवाहकी कथा कही। तब उसकी नववधू रोमशाने सविनय अपने ससुरके समीप जा अत्यन्त आत्मीयतासे कहा—

"इन्होंने मुझे पत्नी रूपमें ग्रहण किया है, और मैं इनके प्रति वैसे ही अनुरक्त हूँ जैसे अश्वारोहीके करमें चिपकी हुई कशा। मेरे पति मुझे हजार यत्नोंसे सुखी करते हैं।" (१,१२६,३–६)

"मुझे समीप आनेकी अनुमति दें। मुझ अबलापर प्रसन्न हों! मैं सदा रोमशा रहूँगी, गन्धारके मेमनोंकी भाँति सर्वदा रोमशा, विनीता।" (वही, ७)

पीछे कक्षीवान्ने एक और विवाह किया। वह घोषा थी, राजदुहिता (१०,४०,५), और स्वाभाविक ही पतिका उसका आदर्श "अनेक अश्वोंका स्वामी धनी रथी" राजन्य था। पर अभाग्यवश त्वचा रोगसे आक्रान्त हो जानेके कारण उसकी कामना पूरी न हो सकी और दीर्घकाल तक वह अविवाहिता ही रही। पिताके गृहमें ही उसके केश श्वेत हो चले। फिर अश्विनोंकी स्तुतिके फलस्वरूप उसे कक्षीवान्-सा वर मिला। कक्षीवान्ने उसे स्वयं वृद्धावस्थामें ब्याहा था और इस प्रकार समानने समानको वरा। घोषाका नाम ऋग्वेदमें अनेक बार आया है। (१,११७,७,१०,३६ आदि) साथ ही संहिताके दसवें मण्डलके दो समूचे सूक्त, ३९ और ४० उसी नारी ऋषिकी कृतियाँ हैं।

महर्षि कक्षीवान्को वृद्धावस्थामें विवाह करनेका तिक्तफल भी च्यवनादिकी भाँति भोगना पड़ा। स्पष्ट पता तो नहीं चलता कि वृद्धावस्थाके कारण स्वयं वे क्लीव हो गये थे या उनकी पत्नी ही वन्ध्या थी, परन्तु वे सन्ततिके लिए स्वयं भी (१०,३९,७) घोषाकी ही भाँति (१,११७,२४) अश्विनीकुमारोंकी स्तुति करते हैं। कहते हैं, "तुम दोनों क्लीवकी पत्नी (वध्रिमत्या) की स्तुति सुन उसके पास चले आये थे और सुखी पत्नीको सुन्दर सन्तति प्रदान की थी।" उसी प्रकार घोषा भी कहती हैं, "वीरो, तुमने असीम उदारतापूर्वक क्लीवकी पत्नीको हिरण्यहस्त नामका पुत्र प्रदान किया था।" उनका तात्पर्य अपने लिए सन्तान माँगनेसे है। अश्विनीकुमार दिव्य वैद्य हैं जो अचूक औषधियोंका वितरण करते हैं और ऋग्वेदमें क्लीवों और वन्ध्याओंके विशेष आराध्य हैं।

विमद भी ऋग्वेदका ब्राह्मण ऋषि है। उसने कमद्यु अथवा शुन्ध्युको ब्याहा। वस्तुतः दोनोंमें परम्परया विवाह नहीं हुआ। दोनों प्रणय-निर्वाह-

के लिए भाग गये थे (१,९,२,४)। विमद और कमद्यु ऋग्वैदिक युगके
रोमियो-जूलियट थे। कमद्यु राजकन्या थी, राजा पुरुमित्रकी दुहिता, उस
समीपवर्ती नगर जिसके आर्टेक थे। प्रणय-दोहदकर समीपवर्तीको स्था-
पात्रने निकाल दिया था। विमद और कमद्यु एक दूसरेसे प्रेम करते
थे। परन्तु विवाहार्थ जब विमदने राजासे अनुमति माँगी तब राजाका
राजन्य आड़े आ गया। निर्धन ब्राह्मणको अपनी कन्याका विवाह उसे इष्ट
न था और उसने यह सम्बन्ध अस्वीकार कर दिया। पर प्रणयियोंपर
निगूढ़ प्रेम छाया हुआ था, वे स्वयं भी करणीयसे विमुख न हो सके।
श्यावाश्व और रथवीति-कन्यासे ये सर्वथा भिन्न थे। पति-पत्नी बनना
निश्चित कर दोनों अनजाने स्थानको भाग गये। अब माता-पिताने उनके
निश्चयमें बाधा डालना उचित नहीं समझा और उनका सम्बन्ध स्वीकार
कर लिया। उस काल यह घटना भी पर्याप्त लोकप्रिय हो गई थी उसका
उल्लेख अनेक ऋचाओंमें हुआ है (१, ११२, १९, ११६, १, ११७, २०;
१०, ३९; ७, ६५, १२)। लगता है विमद भी बादमें क्लीव हो गया
था और उसे भी सपत्नीक च्यवनसे पाण्डु काल तकके क्लीवोंके सहायक
[illegible] शक्तिके लिए स्तुति करनी पड़ी।

ऋग्वेदके समन

ऋग्वेदमें मधुर और मनोरञ्जक स्थलोंकी कमी नहीं। इसके धर्मेतर मधुर सामाजिक प्रसंग कोटियोंमें गिने जा सकते हैं। यहाँ हम केवल एक "समन" का उल्लेख करेंगे।

उस प्राचीन मानव समाजमें उत्सवों और त्योहारोंसे मिलते-जुलते एक प्रकारके मेलेका उल्लेख हुआ है जिसे 'समन' कहते थे (ऋ० १ ४८, ६, १२४, ८, ४, ५८, ८, ७, २ ५ ९, ४, १०, ८६, १०)। स्त्रियाँ, विशेषकर कुमारियाँ, पतिकी खोजमें वहाँ जाती हैं। उसमें घुड़दौड़ और स्पर्धावन (वही, १०, १६८ २) वही तमाशे होते थे। वह मेला रातमें होता था। चमकती मशालोंके उजालेमें (सुसन्दृशा भानुना यो विभाति, वही, ७, ९, ४) कुमारियाँ मधुर मुसकराती हुई (स्मयमानासो) वहाँ जाती थी और अनेक बार मेलेमें वहाँ सारी रात गुजार देती थी (वही, १, ४८, ६, १०, ६९, ११)। प्रेमियोंके सम्मिलन और सम्भाव्य वर-वधूकी खोज (वही, ७, २, ५) की सुविधा समन विशेष रूपसे प्रदान करते थे। कुछ अजब नहीं कि इस प्रकारकी स्वतन्त्रता जब तब आचरणमें दोष उत्पन्न कर देती रही हो। आखिर सहितासे समाजकी अनुमति न मिलनेसे प्रणय-साधनके निमित्त प्रणयियोंके भाग जानेके अनेक संकेत मिलते हैं (वही, १, ११२, १९, ११६, १, ११७, २०, १०, ३९, ७, ६५, १२)। सम्भव है अन्यथा उस समाजमें ऐसी स्वतन्त्रता सम्भव न रही हो। परन्तु समन कुमारियाँ प्रमाणतः अपने प्रेमियोंके साथ घूमती थी (७, २, ५; ४, ५८, ८, अथर्ववेद, २, ३६, १)। अनेक प्रणयी-युगलके लिए समन संकेत-स्थानका कार्य करते होंगे। अनेक बार तो कुमारियोंकी माताएँ स्वयं वर

षडंगोंसे युक्त कहा है। धम्मपदकी टीकामें जिस समज्जाका उल्लेख है उसके चलानेवाले ५०० अभिनेता हैं जो बहुमूल्य पुरस्कारके बदले राजगृहके नृपतिके सामने प्रतिवर्ष अथवा प्रति षण्मास प्रदर्शन करते हैं। इस कम्पनीके प्रदर्शन सात-सात दिन तक चलते थे। उसके प्रसिद्ध खेलोंमें एक ऐसा था जिसमें अल्हड़ सुन्दरी खड़े बँधे लट्ठेपर चलती, गाती और नाचती थी। एक बार तो ऐसा अनर्थ हुआ, जो अस्वाभाविक किसी प्रकार न था, कि अखाड़ेके मंचपर बैठे (मचातिं मंचेरियत्) दर्शकोंमें-से एक धनी सेठका बेटा, उग्गसेन तरुण-नर्तकी-अभिनेत्रीके प्रेम-पाशमें बँध गया। इसी प्रकार विनय पिटकमें भी राजगृहकी पहाड़ीपर होनेवाले समाज-का उल्लेख हुआ है जिसमें नृत्य, संगीत (३, ५, २, ६) होते हैं। उसीमें एक और प्रकारके समाजमें प्रीतिभोजादि होनेका ब्यौरा मिलता है (४, ३७, १)। महाभारतमें समाज शैव उत्सवके रूपमें व्यवहृत हुआ है। उसमें आपान (मद्य-पान), नृत्य, गान आदि होते हैं। (हापकिन्स, एपिक मिथालोजी, पृ० ६५, २२०)। कौटिल्यने अपने 'अर्थशास्त्र' (२, २५) में 'उत्सव समाज' और यात्राका उल्लेख किया है। उसके अनुसार इनमें चार दिनोंतक अविराम मद्यपान होता था। अन्यत्र (१३, ५) उसी महान् आचार्यने विजेताको सलाह दी है कि उसे अपने विजितों-को अनुकूलचेता उनके देशप्रेम, देश-दैवत-प्रेम और उनको उत्सव, समाज, यात्रा आदि की-सी संस्थाओंके आदर द्वारा बनाना चाहिए। स्पष्टतः कौटिल्यकी दृष्टि समाज-शास्त्री और आचार-निर्माताकी नहीं नीतिज्ञ-की थी।

इस प्रकार जान पड़ता है कि समाज या समज्जा एक प्रकारका रामन ही था। सम्भवतः उत्तरकालीन सामाजिक परम्परामें उसके आपान, नर्तन, गायन आदि सह्य न हो सके और उन्होंने अपनी दूषित समाजविरोधी आजकी फिल्मोंकी-सी अशिव छाया डाली। धम्मपदकी टीकावाली उद्धृत घटना समन अथवा समाजमें सामान्य हो गई होगी। इसी उपेक्षणीय प्रकारके

समाजका अशोकने विरोधकर उसे घोषणा द्वारा बन्द कर दिया था। पश्चात्कालमें अशोककालीन समाजने और गुरुतर अपराध करना शुरू किया। उसकी परिणति कालान्तरमें एक नितान्त घृणित संस्थामें हुई जिसका सम्बन्ध वेश्याओं, गणिकाओं और गायिका-नर्तकियोंसे था। उनके दलमें रहकर सारंगी आदि वाद्य-साज बजानेवाले सफरदे उत्तरप्रदेश और बिहारके सूबोंमें आज भी 'समाजी' कहलाते हैं जो अपने नाममें समन तथा समाजकी प्राचीन स्मृति जीवित रखे हुए हैं। सम्भव है समनका दूसरा सम्बन्ध श्रावण मासमें शिव मन्दिरोंमें होनेवाले नाच-गानके प्रदर्शनों-से भी रहा हो। पंजाबमें उन्हें सामन कहते हैं जो प्रकटतः श्रावणका अपभ्रंश है।

ऋग्वेदके समाजमें, जैसा ऊपर कहा गया है, समन न केवल विनोद और खेल-कूदके उत्सव थे, वरन् वे एक सामाजिक आवश्यकताकी भी पूर्ति करते थे। परन्तु उनका संगठन इस प्रकारका था कि उनका कालान्तरमें अत्यन्त घृणास्पद हो जाना स्वाभाविक था। फिर भी यह कुछ कम महत्त्व-की बात नहीं है कि अपने प्रकृत अथवा परिवर्तित रूपमें बहुत कालतक वे चलते रहे और आज भी अनेक दिशाओंमें अपने प्रतिनिधि छोड़ गये हैं। आजके 'कार्निवल' उनसे विशेष भिन्न नहीं।

षडंगोंसे युक्त कहा है। धम्मपदकी टीकामें जिस समज्जाका उल्लेख है उसके चलानेवाले ५०० अभिनेता हैं जो बहुमूल्य पुरस्कारके बदले राजगृहके नृपतिके सामने प्रतिवर्ष अथवा प्रति षण्मास प्रदर्शन करते हैं। इस कम्पनीके प्रदर्शन सात-सात दिन तक चलते थे। उसके प्रसिद्ध खेलोंमें एक ऐसा था जिसमें अल्हड़ सुन्दरी खड़े बँधे लट्ठेपर चलती, गाती और नाचती थी। एक बार तो ऐसा अनर्थ हुआ, जो अस्वाभाविक किसी प्रकार न था, कि अखाड़ेके मंचपर बैठे (मंचाति मचेत्यित्) दर्शकोंमेंसे एक धनी सेठका बेटा, उग्गसेन तरज्जु-नर्तकी-अभिनेत्रीके प्रेम-पाशमें बँध गया। इसी प्रकार विनय पिटकमें भी राजगृहकी पहाड़ीपर होनेवाले समाजका उल्लेख हुआ है जिसमें नृत्य, संगीत (३, ५, २, ६) होते हैं। उसीमें एक और प्रकारके समाजमें प्रीतिभोजादि होनेका ब्यौरा मिलता है (४, ३७, १)। महाभारतमें समाज शैव उत्सवके रूपमें व्यवहृत हुआ है। उसमें आपान (मद्य-पान), नृत्य, गान आदि होते हैं। (हापकिन्स, एपिक मिथालोजी, पृ० ६५, २२०)। कौटिल्यने अपने 'अर्थशास्त्र' (२, २५) में 'उत्सव समाज' और यात्राका उल्लेख किया है। उसके अनुसार इनमें चार दिनोंतक अविराम मद्यपान होता था। अन्यत्र (१३, ५) उसी महान् आचार्यने विजेताको सलाह दी है कि उसे अपने विजितोंको अनुकूलचेता उनके देशप्रेम, देश-दैवत-प्रेम और उनकी उत्सव, समाज, यात्रा आदि की-सी संस्थाओंके आदर द्वारा बनाना चाहिए। स्पष्टतः कौटिल्यकी दृष्टि समाज-शास्त्री और आचार-निर्माताकी नहीं नीतिज्ञकी थी।

इस प्रकार जान पड़ता है कि समाज या समज्जा एक प्रकारका समन ही था। सम्भवतः उत्तरकालीन सामाजिक परम्परामें उसके आपान, नर्तन, गायन आदि सह्य न हो सके और उन्होंने अपनी दूषित समाजविरोधी आजकी फिल्मोंकी-सी अशिव छाया डाली। धम्मपदकी टीकावाली उद्धृत घटना सम्भव अथवा समाजमें सामान्य हो गई होगी। इसी उत्तेजनीय प्रकारके

समाजका अशोकने विरोधकर उसे घोषणा द्वारा बन्द कर दिया था। पश्चात्कालमें अशोककालीन समाजने और गुरुतर अपराध करना शुरू किया। उसकी परिणति कालान्तरमें एक नितान्त घृणित संस्थामें हुई जिसका सम्बन्ध वेश्याओं, गणिकाओं और गायिका-नर्तकियोंसे था। उनके दलमें रहकर सारंगी आदि वाद्य-साज बजानेवाले सफरदे उत्तरप्रदेश और बिहारके सूबोंमें आज भी 'समाजी' कहलाते हैं जो अपने नाममें समन तथा समाजकी प्राचीन स्मृति जीवित रखे हुए हैं। सम्भव है समनका दूरका सम्बन्ध श्रावण मासमें शिव मन्दिरोंमें होनेवाले नाच-गानके प्रदर्शनोंमें भी रहा हो। पंजाबमें उन्हें सावन कहते हैं जो प्रगटतः श्रावणका अपभ्रंश है।

ऋग्वेदके समाजमें, जैसा ऊपर कहा गया है, समन न केवल विनोद और खेल-कूदके उत्सव थे, वरन् वे एक सामाजिक आवश्यकताकी भी पूर्ति करते थे। परन्तु उनका संगठन इस प्रकारका था कि उनका कालान्तरमें अत्यन्त घृणास्पद हो जाना स्वाभाविक था। फिर भी यह कुछ कम महत्त्वकी बात नहीं है कि अपने प्रकृत अथवा परिवर्तित रूपमें बहुत कालतक वे चलते रहे और आज भी अनेक दिशाओंमें अपने प्रतिनिधि छोड़ गये हैं। आजके 'कार्निवल' उनसे विशेष भिन्न नहीं।

ऋग्वेदका जुआरी

जो लोग ऋग्वेदको केवल धर्मकी पुस्तक मानते हैं उन्हें पता नहीं कि उस सहितामे कितना लौकिक-सामाजिक सौन्दर्य बिखरा पड़ा है। अनेक बार तो उसमें समाजका प्रतिबिम्ब इतना स्पष्ट झलक पड़ता है कि पाठक स्तब्ध रह जाता है। दसवें मंडलका ३४वाँ सूक्त एक जुआरीकी दिनचर्या और दुर्बलताका मनोहारी वर्णन करता है। उसकी मार्मिकता हृदयको छू लेती है। वर्णन वस्तुत. इतना सजीव, इतना मासल हुआ है कि लगता है, तत्सामयिक समाजका एक पृष्ठ खुल पडा हो। जुआरी बार-बार जुआ खेलना छोड देनेकी शपथ लेता है, बार-बार पाँसेकी मदिर ध्वनि उसे मत्त कर देती है, और वह सब कुछ दाँवपर लगा कर फिर हार जाता है। सूक्तका देवता भी जुआ ही है, और उसका ऋषि अंशत. स्वय जुआरी। चित्रण सर्वथा मानवीय और पार्थिव है।

सूक्त कहता है कि जुआरी दिन-रात जुआ खेलनेके सार्वजनिक हालमें उसके स्तम्भकी भाँति अडा रहता है। मेजपर अक्ष (पाँसे) के गिरते ही उसकी बाछें खिल जाती है, उनके मदसे वह उन्मत्त हो जाता है— 'प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे वर्वृतानाः' (१०, ३४, १)। स्पष्ट है कि पाँसेका प्रभाव उसपर वैसा ही होता है जैसे शराबका पियक्कड़पर। वह अपनी सारी संपत्ति जुएमे हार चुका है और बादमे अपनी पत्नी तकको दाँवपर लगाकर हार जाता है। तब उसकी आँखें खुलती हैं और वह आर्तनाद कर उठता है। उसकी प्रियतमा पत्नी 'अनुव्रता' (पतिव्रता) है, उसकी द्यूतरतिका सारा परिणाम वह चुपचाप सहती है। कभी उसपर क्रोध नही करती, सदा उसके और उसके मित्रोंके प्रति

कल्याण-भाव रखती है—'न मा मिमेथ न जिहल एषा शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत्'। (१०, ३४, २)

ऐसी पत्नीको जुएमें खोकर जुआरी स्वाभाविक ही कठिन यातनाका अनुभव करता है। कहता है—जुएके लिए मैंने पतिव्रता पत्नीको खो दिया (अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोरनुव्रतामप जायामरोधम्—वही)। पतिकी शकार उसे इतना अन्धा बना देती थी कि दाँवपर जोती जानेके पहले उसकी पत्नी उसके प्रियाचरणसे विरहित हो जाती थी। उसने चाहे अपना वह अभाग्य चुपचाप सह लिया पर उसके दाँवपर हार दिये जानेके बाद उसकी माँ, जुआरीकी सास, क्षुब्ध हो उठी (द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि—वही, ३)। और अब उस अभागेका 'अपना' कोई नहीं रह गया (न नाथितो विन्दते मर्डितारम्—वही)। अपनी हीन दशापर सहसा जुआरी रो पड़ता है—'वृद्ध कमजोर घोड़ेसे जैसे कोई लाभ नहीं जुएमें मैं भी कोई सुख नहीं पाता' (अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम्—वही)। सपतिविरहित पत्नीको भी दाँवपर खोकर जब वह दूसरों द्वारा उसे दुलारे जाते देखता है तब उसकी दशा और भी दयनीय हो उठती है (अन्ये जाया परि मृशन्त्यस्य यस्यागृधद्वेदने वाज्यक्षः—वही, ४)।

वह जुएमें घरकी सम्पत्ति हारकर ऋण लेता है, बार-बार ऋण लेनेसे वह महाजनोंका शिकार हो जाता है और तब उसके सारे स्वजन—माता, पिता, भाई उसे छोड़ देते हैं। उसे पकड़ ले जानेवाले महाजनोंसे कहते हैं—'उसे बाँध लो। बाँधकर अपने साथ ले जाओ। वह हमारा कोई नहीं' (पिता माता भ्रातर एनमाहुर्न जानीमो नयता बद्धमेतम्—वही)। जुआ न खेलनेका शपथ तो वह करता है पर जब उसके जुआरी मित्र उसे त्याग देते हैं (यदादीध्ये न दविषाण्येभि: परायद्भ्योऽव हीये सखिभ्य:—वही, ५) और जब अक्ष फेंके जानेसे द्यूत-फलक पर खनखना उठते हैं तब वह बेहाल हो जाता है। वह और नहीं रुक पाता, 'जारिणी'की भाँति

संकेतस्थानकी ओर जैसे दौड पड़ता है (वही, ५)। अगले चार छन्दोंमें असाधारण शक्ति और प्रौढ शैलीमें जुएका जादू खुल पडा है—

सभामेति कितवः पृच्छमानो जेष्यामीति तन्वाशूशुजानः।
अक्षासो अस्य वि तिरन्ति कामं प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि ॥
अक्षास इदङ्कुशिनो नितोदिनो निकृत्वानस्तपनास्तपयिष्णवः।
कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो मध्वा सम्पृक्ताः कितवस्य बर्हणाः ॥
त्रिपञ्चाशः क्रीडति व्रात एषां देव इव सविता सत्यधर्मा।
उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्ते राजा चिदेभ्यो नम इत्कृणोति ॥
नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्यहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते।
दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति ॥
(ऋ० १०, ३४, ६-९)

"जुआरी द्यूतस्थल (सभा) पर पहुँचता है, (शंकाओंसे) तनमें आग लगी है।—पूछता है—क्या जीतूँगा ?
अक्ष (पाँसे) उसकी कामनाको जगा देते हैं, वह अपना धन विपक्षीके विपरीत दाँवपर लगा देता है।"

"अक्ष, धन आदिसे संयुक्त, धोखा देते हैं, तपाते हैं, सताप जनते हैं। जीतनेवालेको पहले थोडी जीतसे लुभाकर वे उसका सर्वस्व अपहृत कर नाश कर डालते हैं, जुआरीके सुन्दरतम धन द्वारा स्वयं अभिषिक्त होते हैं।"

"सत्यधर्मा देव सविताकी भाँति तिरपनका उसका प्रसन्न दल खेलता है। वे शक्तिमान् (उग्र) के आगे भी नही झुकते, राजा स्वयं उनकी अर्चना करता है।"

"अक्ष सहसा नीचे आते हैं, फिर ऊपर उठ जाते है, स्वय करविहीन पर हस्तवन्तोंको अपनी सेवाके लिए वे बाध्य करते है।
जादूके अगारोंकी भाँति ढाले जाते हुए स्वय तो वे शीतल है पर दर्शकोंके हृदय जलाकर क्षार कर डालते हैं।"

जुआरी अपने दोषको समझता है, उसके अशिव परिणामको झेलकर बारम्बार पाँसा न छूनेकी क़सम खाता है पर जुएका मोह उसे बार-बार

घर दबाता है, उसे लाचार कर देता है। खेलता है, हारता है, फिर खेलता है, फिर हारता है। क्रोध और लालच उसे विमूढ़ कर देते हैं। उसकी हार ही उसे फिर खेलनेको मजबूर करती है। मधुरसे मधुर, कीमतीसे कीमती चीज दाँवपर उसने धरवा देती है। सब हार जाता है। कर्ज लेकर फिर खेलता है, फिर हार जाता है। और एक रात जुआ उसका सर्वनाश सम्पन्न कर देता है। निराशासे पागल, भयसे सन्त्रस्त, महाजन द्वारा अनुगत, वह घर लौटता है, सबसे भागकर शरण लेने। घरके द्वार उसके लिए बन्द हैं। द्वार खटखटाता है पर वे नहीं खुलते, क्योंकि वे अनजाने बन्द नहीं किये गये हैं। हारी हुई परित्यक्ता पत्नीकी शोचनीय दशा उसे विचार करनेको मजबूर करती है। घरका द्वार बन्द होनेसे बाहर पड़ा वह सोच रहा है—"दूसरोंकी पत्नियाँ कितनी सुखी हैं! औरोंके परिवार कितने भाग्यवान् हैं!" नलका परवर्ती, युधिष्ठिरका पूर्ववर्ती, वह जुआरी रात्रिके अन्धकारमें अपने कियेपर पछताता है, परन्तु प्रभातके साथ आशा लौट पड़ती है और अक्षपर झुकी हुई उसकी चिरचेष्टा नवीन हो जाती है। 'उषाकी ही भाँति वह भी अपने अक्षरूपी घोड़ोंको जोत देता है' (पूर्वाह्णे अश्वान्युयुजे)।

अन्तमें उसे पत्नीकी साधना और तपसे समझ होती है और वह परिवारकी ओर आकृष्ट होता है। ऋषि उस प्रकृतिस्थ जुआरीका स्वागत करता है—"जुआ न खेल, न खेल जुआ। अपने खेतोंको जोत। प्राप्त धनको बहुत मानते हुए उसीमें रम, उसका सुख मान। वो तेरी गौएँ हैं, और वह तेरी जाया"

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः॥ (वही १३)

ऋषिकी यह शालीन गिरा रेस-कोर्सके शौकीनोंके लिए आज भी चिन्तनीय है।

●

ऋग्वेदमें अगम्यागमन

मैने प्रस्तुत लेखमे "इन्सेस्ट" शब्दका व्यवहार किया है, कारण कि हिन्दी या सस्कृतका कोई शब्द उस अर्थको प्रगट नही करता जो इस अग्रेजी शब्दमें निहित है । इन्सेस्टका अर्थ है भाई-बहिन, पिता-पुत्री, माता-पुत्रका परस्पर यौन सम्बन्ध । ऋग्वेदके कतिपय सकेतोसे इन्सेस्टके ऋग्वैदिक समाजमे एकाशमें प्रचलित होनेकी बात कही गई है । प्रस्तुत लेखमें हम उसपर प्रकाश डालनेका प्रयत्न करेंगे ।

विषय वस्तुत. अत्यन्त विवादास्पद है । कुछका कहना है कि इस प्रकारका यौन सम्बन्ध वैदिक जीवनमें सर्वथा अनजाना था और ऋग्वेदमें उसका उल्लेख नही मिलता । कुछ पण्डितोंका मत इससे भिन्न है । हम यहाँ बग़ैर उस वादविवादमे पड़े सीधे उपलब्ध सामग्रीपर विचार करेंगे। आरम्भमें ही यह कह देना उचित है कि ऋग्वेदकी स्वल्प सामग्री पौराणिक परम्पराओं और बौद्ध जातकोंके साथ अध्ययन करनेपर जो पूर्व-मध्य-परकी एक क्रमिक सगति बैठ जाती है उससे ऐसा लगता है कि किसी-न-किसी समय किसी-न-किसी मात्रामे इस प्रथाका आर्य समाजमें प्रचार रहा होगा । ऋग्वैदिक तथा अन्य प्रमाणोंसे जान पडता है कि प्रथा उस समाजमें किसी प्रकार अनुचित नही मानी जाती थी । उस सम्बन्धका दो रूपमें अध्ययन समीचीन होगा—भ्राता-भगिनी सम्बन्ध और माता-पिता, पुत्र-पुत्री सम्बन्ध । हम पहिले भ्राता-भगिनी सम्बन्धपर विचार करेंगे ।

भ्राता-भगिनी यौन सम्बन्धका सबसे सबल प्रमाण ऋग्वेदके दसवें मण्डलके दसवें सूक्तमें यम-यमी संवादमें मिलता है । यम-यमी जुड़वें भाई-बहन है, पहले मानव जोड़े (दम्पति), जिनसे मानव जातिका प्रारम्भ

होता है। दोनोंका पारस्परिक सम्बन्ध बहुत कुछ उस प्राचीन ईरानी परम्परामें है जिसमें नारी नरके ही एक अंगसे प्रसूत होती है और दोनों मिलकर मानवजातिकी सृष्टि करते हैं, उसके आदि पितर बनते हैं। ये भारतीय परम्पराके आदिम मर्त्य-युगल भी उसी प्रकार जुड़वें माने गये हैं। यह विचार स्वयं यमीके वक्तव्यमें रखा गया है। "गर्भमें ही", यमी यमसे कहती है, "स्वयं स्रष्टाने हम दोनोंको पति-पत्नीके रूपमें रखा था।" आरम्भमें ही यह स्पष्ट कर देना उचित है कि संवाद असाधारण है जिसमें यमी अपने भाई यमको बार-बार पति बनने और उसे पत्नी बनानेका प्रस्ताव करती है, बार-बार यम क्षुब्ध होकर इस सम्बन्धको पाप बताता है, यद्यपि अनेक बार ऐसी स्थिति हलक जाती है जिसमें इस प्रकारके सम्बन्धकी ओर संकेत हो जाता है। सूक्तका एक बार नीचे विश्लेषण ही वास्तविकता प्रकट करनेमें सहायक हो सकता है।

सूक्तके ऋषि और देवता दोनों ही यम और यमी हैं। यम और यमी विवस्वान् (सूर्य) और सरण्यूके जुड़वें पुत्र-पुत्री हैं। आरम्भके छन्दमें ही भगिनी विकम्पित वाणीमें भाईको उससे "विवस्वान्के लिए" पुत्र उत्पन्न करनेकी प्रार्थना करती है। पर भाई मधुर शब्दोंमें उसके प्रस्तावको अस्वीकृत कर देता है—

"तेरा सखा उस सख्यको नहीं मानता जिसमें निकटकी जाईको दूर का माना जाता है (सगोत्रका निषेध)।

(न भूलो कि) महान् असुरके पुत्र, वीर, आकाशको धारण करनेवाले, अपने चतुर्दिक् दूर तक देखते हैं।" (२)

इससे प्रमाणित है कि इस छन्दके लिखे जाने तक असगोत्र विवाहकी परम्परा आर्योंमें प्रतिष्ठित हो चुकी थी और सगोत्र सम्बन्ध अनुचित माना जाने लगा था। दूसरी पंक्ति भाई-बहिनके सम्बन्धको नाजायज करार देती है क्योंकि महान् असुर (वरुण) जो पापपर दृष्टि रखता है, अपने चरों द्वारा इस सम्बन्धके

ावियोको जैसे सावधान करता है। परन्तु क्या यही पंक्ति प्राचीन कालमें
स प्रथाके प्रचलित होनेका प्रमाण नही बन जाती ? यमी इसके अतिरिक्त
क और युक्ति प्रस्तुत करती है। वह कहती है कि "ऋत (कानूनी
यवस्था) का सिद्धान्त मर्त्योके लिए है, अमरोंके लिए नही, और यह अमर
जो अपने भ्राताको सम्बन्धके लिए पुकारती है" (३)। परन्तु भाई
तिहासका उलाहना देकर उसे परास्त करना चाहता है—"क्या आज हम
ह करें", यम पूछता है, "जो हमने कभी नही किया ? हम, जो सदा ऋत
ोलते-करते रहे है, क्या अब अनृतकी उपासना करेंगे ?" (४)। इस
न्दमें स्पष्टतः 'कालविरुद्ध-दूषण' (अनाक्रानिज्म) आ गया है। छन्दकार
यत्न प्रमाणित करनेकी कोशिश कर रहा है कि प्रथा पुराकालमें जानी
ुई न थी। इसकी अन्यत्र उपलब्ध स्वतन्त्र सामग्रीसे तुलना इसकी असत्यता
ोषित कर देती है, पर उसका उल्लेख हम यथास्थान करेंगे। यहाँ तो
वयं यमी ऐतिहासिक परम्पराका सहारा लेती हुई उसके इतिहास-विरोधी
ाचरणको धिक्कार उठती है। अपने वक्तव्यमें वह उस साधारण जन-
विश्वासकी ओर संकेत करती है जिसमें जुडवें भाई-बहनोका सम्बन्ध नितान्त
वाभाविक माना जाता था। वह उसके विपरीत यमको धमकाती हुई
ावधान भी करती है कि यदि उसने प्राचीन परम्परानुमोदित प्रथाका
उल्लघन किया और उसका प्रस्ताव न माना तो उसे परम्पराका अनादर
रनेके कारण देवताओंके क्रोधका भागी बनना पडेगा। वह कहती है—

"विश्वकार त्वष्टाने स्वय हम दोनोको दम्पतिके रूपमें एकत्र किया
ा (गर्भे नु नौ जनिता दम्पती)। (सावधान!) उसके व्रतो (नियमों)
ा कोई उल्लंघन नही करता (नही तोडता)। और हम दोनो उसके है,
ाकाश और पृथ्वी दोनो इसे स्वीकार करते है।" (५)

अब जब यमको इतिहासका सहारा नहीं मिलता, और चूँकि यमी
चलित पद्धति और जानी हुई परम्पराकी याद दिला यमको निरुत्तर कर
ेती है, तब वह तर्कके बदले क्रोध प्रगट करता है—

"किसका जाना है वह प्रथम दिन जिसकी बात तू कह रही है ? उसे देखा किसने ? कौन यहाँ उसकी घोषणा करेगा ? मित्रावरुणोंकी व्यवस्था महान् है। नीच पुरुषको प्रलोभित करनेके लिए भला तू क्या नहीं कह सकती ?" (६)

उत्तरमें यमी उसके प्रति अपने स्निग्ध प्रणयकी घोषणा करती है। शब्दोंमें गजबकी गरिमा है—

"मैं, यमी, यमकी अनुरक्त हूँ। मैं उसके साथ समान शय्यापर शयन करूँ।

मैं उसे जायाकी भाँति अपने तनको पतिके प्रति समर्पित करूँ। हम दोनों रथके पहियेकी तरह परस्पर मिलनेको दौड पड़ें।" (७)

पर वह सावधि समाजके नये आचार-नियमोंमें अवगत और भयान्वित है। वह वरुणके चरोंकी चौकसीका हवाला देकर यमीको सावधान करता है—

"वे थकते (बैठते) नहीं, कभी निमिष (पलक) नहीं मारते, देवोंके वे चर जो सदा हमारे चारों ओर विचरते रहते हैं।

मुझे नहीं, नीच, तू दूसरेको रथ-चक्रोंकी भाँति दौड़कर भेंट।" (८)

तब वह समकालीन आचार-नियममें इस कार्यको अनुचित और अभ्रातोचित जानती हुई और इसी कारण भाईको डरा हुआ समझकर उसका सम्भाव्य पाप अपने सिरपर लेनेकी घोषणा करती है—

"सूर्यके नेत्र, दिन और रात्रिके रूपमें, उसके मार्गमें प्रकाश बिखेरते रहें।

आकाशमें धरापर (सर्वत्र) मिथुन (यम-यमी) की क्रीडा हो, यमीपर यमका अभ्रातोचित (बिभृयादजामि) कर्म हो।" (९)।

यमके उत्तरमें परोक्ष रूपमें उस स्थितिकी कल्पना की गई है जिसमें भाई-बहनके बीच यह सम्बन्ध सामाजिक नियमके रूपमें ध्वनित है। वह चाहे यमकी जानकारीमें रही हो चाहे उसकी स्मृति-परम्परामें बनी रही हो। उत्तर इस प्रकार है—

"निश्चय ऐसे युग (उत्तरा युगानि) आयेंगे जब भ्राता और भगिनी अभ्रातोचित कर्ममे प्रवृत्त होगे !

मुझे नही, सुभगे, अन्य पति खोज, और उसके लिए अपनी भुजाओं की तकिया बना।" (१०)

वस्तुत. ऋचामें उल्लिखित 'उत्तर युग' पूर्व ही बीत चुके है या उनकी स्मृति अथवा शेषांश समसामयिक समाजमें बचा हुआ है। भविष्यका शाप यथार्थमे उस प्रथाकी प्रतिक्रिया है जो सम्भवत. अंशत अभी बची हुई है और जिसे अनुचित करार दिया गया है। यमीके उत्तरमें उस प्रथाका सकेत है जिसमें भाई भगिनीका स्वाभाविक पति माना जाता था यद्यपि उसका ऊपरी अर्थ भगिनीके लिए पति और भाईके लिए पत्नी खोजना है—

"वह कैसा भाई जब भगिनी अनाथा (पतिरहित) हो ? कैसी वह भगिनी जब निऋति (मृत्यु) उपस्थित हो ?

कामाभिभूत ये अनेक शब्द मैं उद्गीरित करती हूँ। पास आकर मुझे गाढे आलिंगनमें बांध लें !" (११)

और यम इस पुरानीके विरुद्ध सावधि प्रथाका उल्लेख करता हुआ कहता है—

"मैं तेरे तनको अपनी भुजाओमें नही बाँधूँगा, भगिनीके पास जाना पाप कहा गया है !

मेरे लिए नही, किसी अन्यके लिए अपने आमोद प्रस्तुत कर। तेरा भाई तुझसे, सुभगे, इसकी कामना नही करता।" (१२)

तब प्राचीन प्रथा द्वारा अपनेअधिकार जताकर भी असफल यमी क्षुब्ध हो भाईको हृदयहीन और क्लीव कहकर धिक्कारती है—

"खेद ! यम, तू निश्चय क्लीव है, तेरे न मन है न हृदय !

खेद कि वृक्षको लताकी भाँति, कटिको मेखलाकी भांति, कोई और तुझे घेरेगी।" (१३)

भाई अपनी बहनामें आसक्त होकर भी जैसे जुड़वी बहनके उस पुरातन अधिकारको समझता है परन्तु समाजके नये आचारोंका अनुबन्ध मानता हुआ (वह स्वयं यम है, नियमोंका प्रतिष्ठाता, यह नया नियम वह स्वयं बना रहा है ।) भगिनीको प्रेमानुगामन द्वारा सलाह देता है—

"अन्यका आलिंगन कर, यमी, अन्यको अपनेको घेरने दे, जैसे लता तरुको घेरती है ।

तू उसके मनको जीत, वह तेरी इच्छा जीते, फिर उसका तेरे साथ श्रेयस्कर सत्य होगा ।" (१४)

सूक्तसे प्रकट है कि कमसे कम कभी, सम्भवत निकट पूर्वमें ही, भाई-बहनके बीच इन्सेस्ट प्रथाके रूपमें प्रचलित रही थी, जिसे समाजने अब तर्क कर दिया था । इस सम्बन्धके दो उल्लेख और हैं । एक (६,५५, ४) में तो भाईको बहिनका जार (स्वसुर्यो जार,—४ स्वसुर्जारः—५) और दूसरे में उसका पति अथवा जार होना (यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते—१०, १६२, ५) कहा गया है ।

परन्तु भ्राता-भगिनी विवाहका सबसे उत्कट और अकाट्य प्रमाण पौराणिक परम्परामें मिलते हैं जो ऋग्वैदिक समाजके पूर्व और पर सम्बन्धी दोनों स्थितियोंको समान रूपसे प्रकट करते हैं । अनेकाशमें पौराणिक परम्पराएं ऋग्वेदसे भी पूर्वगामी समाजका संकेत करती हैं, यह याद रखने-को बात है । दृष्टान्तः त्रसदस्यु-पुरुकुत्स और ययातिके नाम ऋग्वेदमें (८, १९, ३६, १०, ६३, १) आते हैं और वह भी प्राचीन वीरोंके रूपमें । परन्तु पुराणोंकी परम्परा और वंश-तालिका इनसे कई पीढ़ी पहले आरम्भ होती है ।

पुराणोंकी सूचीमें प्राय दो दर्जन भाई-बहिन-विवाह गिनाये जा सकते हैं जिनका कार्य-काल ऋग्वेद-पूर्व, समकालीन और पश्चात् रहा है । एकाधको छोड़ शेष सारे दृष्टान्तोंमें भाई अपनी भगिनी (पितृकन्या) से

विवाह करता है (मैं विस्तार-भयसे हवालोंका उल्लेख नही कर रहा हूँ। वे मेरी पुस्तक 'विमेन इन ऋग्वेद' में विस्तारसे दिये हुए हैं)। और ये अपवाद भी ऐसे हैं जिसमें विमातासे उत्पन्न या चचेरे भाई-बहिन परस्पर विवाह करते हैं।

अब देखें कि वेणके पिताने अपनी पितृकन्या सुनीताको व्याहा, विप्रचित्तिने अपने पिता कश्यपकी कन्या सिंहिकाको। यम-यमीकी पीढी अंगसुनीताके बाद दसवी है। विवस्वान्‌के पुत्र मनुने विवस्वान्‌की पुत्री श्रद्धासे विवाह किया, नहुप ऐलने पितृकन्या (ऋग्वैदिक ययातिकी माता) विरजासे, अमावसु ऐलने पितृकन्या अच्छोदासे, शुक्र-उशनस् (जो पश्चात् ययातिका ससुर हुआ) ने अपनी पितृकन्या गो से। देवयानी (शुक्र-उशनस्‌की पुत्री) की बडी बहन देवीने वरुणको बरा जो शुक्र-उशनस्‌का अगला वशधर होनेके कारण उसका भ्राता, अर्ध-भ्राता या चचेरा भाई रहा होगा। अंगिरसोंके भरतने अपनी तीनों बहनोंसे व्याह किया। संहताश्वकी दुहिता हैमवती दृपद्वतीने पिताके दो पुत्रों कृशाश्व और अक्षयाश्वको बरा। ऋग्वैदिक पुरुकुत्सके पुत्र मान्धातृने पितृकन्या नर्मदासे विवाह किया, सगर के पौत्र अंशुमतने पितृकन्या यशोदासे, दशरथने सगोत्रा कोशल्यासे। दशरथ जातक, जो सम्भवत रामायणसे प्राचीन है, राम और सीता दोनोंको भाई-बहन बताता है। कुछ अजब नही जो 'जनकतनया' पितृकन्याका पर्याय रहा हो। ये ऊपर गिनाये व्यक्ति या तो ऋग्वेदसे प्राचीन हैं या उसके समकालीन। उसी काल, लगता है, समाजने सगोत्र, विशेषत सगे बहनसे विवाहके विरुद्ध विद्रोह किया जिससे कमसे कम कुछ कालके लिए यह विवाह सम्बन्ध रुक गया। रामके बाद प्राय. २७ पीढियो तक पौराणिक परम्परामें ऐसे विवाह नही मिलते। परन्तु प्रथा कुछ साधारण न थी और पश्चात् फिर चल पडी। महाभारतकालमें ही प्रायः उसका नये सिरेसे फिर प्रारम्भ हो गया। कृष्णद्वैपायन व्यासके पुत्र शुकने पितृकन्या पीवरीको व्याहा, उसी प्रकार राजा द्रुपदने अपनी पितृकन्याको।

सत्राजितने अपनी दस बहनोंसे एक साथ व्याह किया। शृंजयीके पुत्रने शृंजयकी दो कन्याओंको व्याहा। उसके पितामहने किसी ऐक्ष्वाकीसे व्याह किया था, उनसे उत्पन्न पुत्र ने भी (दूसरी) ऐक्ष्वाकी (कौसल्या) से ही विवाह किया।

बौद्ध परम्पराके प्रमाणोंसे सिद्ध है कि यह भ्राता-भगिनी-विवाहकी प्रथा पौराणिक परम्पराके पीछे भी कायम रही थी। जातकमें राम-सीताको भाई-बहन माना जाना ऊपर लिखा जा चुका है। एक दूसरे जातकमें कृष्णके जुड़वें भाईका अन्य पतिसे उत्पन्न अपनी माताकी पुत्रीसे विवाह करना लिखा है। काशीके उदयभद्रने अपनी अर्द्ध-भगिनी उदयभद्राको व्याहा। शाक्योंमें (जिनमें बुद्ध हुए थे) बहिनसे विवाह प्रायः साधारण बात थी। कोसलके राजा पसेनदि (प्रसेनजित्) के पिता महाकोसलकी पुत्री कोसलदेवीका विवाह राजगृहके राजा बिंबिसारसे हुआ था। बिंबिसारके पुत्र अजातशत्रुने पसेनदिकी कन्या वजिराको व्याहा जो इस प्रकार उसकी चचेरी बहन हुई। चचेरे भाई-बहनोंके बीच विवाह बौद्ध परम्परामें सर्वदा आम था।

इन उदाहरणोंसे प्रमाणित है कि भ्राता-भगिनी-विवाह ऋग्वैदिक-कालके पूर्वसे लेकर बौद्धकाल तक भारतीय समाजमें सर्वत्र रहा है। सगोत्र विवाह बहुत पीछे स्मार्तयुगमें वर्जित हुआ यद्यपि उस विवाहकी परम्परा दीर्घकालतक पीछे भी चलती रही। मातुल-कन्या आदि विवाहोंका फिर उसने रूप धारण किया।

अत्यन्त आदिकालमें जब पिता परिवारका सर्वथा स्वामी था और नारियोंकी संख्या कम थी तब पिता और कन्याके बीच यौन सम्बन्ध-का होना वर्जित न था। उसके एकाध उदाहरण ऋग्वेदमें भी स्वीकारात्मक रूपमें मिलते हैं। कमसे कम उस प्रकारके उदाहरण लोगोंको ज्ञात थे और कवि अपनी उपमाओंमें उन्हें व्यक्त करते थे। प्रजापति और उनकी कन्याका सम्बन्ध (ऋ० १०, ६१, ५-७) उसी प्रकारका है। वैसे ही

माता-पुत्रका सम्बन्ध भी ६, ५५, ५ में ध्वनित हुँ जहाँ पूषन अपनी माता-का प्रेमार्थी (विवाहार्थी, दिधिषु) कहा गया है। पिता और कन्याका सम्बन्ध पौराणिक परम्परामें भी यदा-कदा उपलब्ध हैं। प्रवृत्ति, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, पितृसत्ताक स्थितिकी अवशेष है, जैसे माता-पुत्रका सम्बन्ध मातृसत्ताककी। माता-पुत्र सम्बन्धका उदाहरण अस्पष्ट रूपसे स्वयं ऋग्वेदसे भी दिया जा सकता है। उषाको सूर्यकी माताके रूपमें जनयित्री कहा गया है (७, ७८, ३), जो देदीप्यमान पुत्र जनती है (१, ११३, १ २)। उसे अपने जार (सूर्य—१, ९२, ११) के तेजसे चमत्कृत होना भी कहा गया है। वह सूर्यकी पत्नी (७, ७५, ५) का अनुसरण करता है (१, ११५, २; १, १२३, १०)। इस प्रकार उषा सूर्यकी पुत्री (दुहि-तर्दिव—१, ३०, २२ आदि) कही गई है परन्तु एक स्थलपर कवि उसे उसको 'प्रिया' बनानेसे भी नहीं चुका (१, ४६, १)। इस प्रकारके माता-पुत्र सम्बन्धका उदाहरण हमें पुराणोंमें नहीं मिलता।

०

ऋग्वेदमें विधवा, सती और नियोग : ५ :

कहते हैं कि ऋग्वेदका साहित्य, जैसा उसका समाज भी, पूर्ण विकसित स्थितिमें हमारे सामने खुलता है। इसमें सन्देह नहीं कि आजके हमारे समाजकी अनेक विभिन्न परिस्थितियाँ ऋग्वैदिक समाजमें जीवित थीं, अनेक तभी जन्मी थीं, परन्तु साथ ही कुछ ऐसी भी थीं जिनका अस्तित्व आज नहीं है और यदि है भी तो अज्ञात ।

ऋग्वेदमें विधवाओंके अस्तित्वके कुछ उदाहरण मिलते हैं, उनसे भी अधिक विधवा-विवाहके, कुछ सतीके भी और अनेक नियोगके, जिसका अन्त हिन्दू समाजमें आजसे पर्याप्त पूर्व हो गया था। हम यहाँ इन तीनोंकी स्थितिपर संक्षेप विचार करेंगे।

निःसन्देह विधवा सम्बन्धी उल्लेख ऋग्वेदमें बहुत नहीं हैं और जो हैं वे भी अस्पष्ट हैं। जो भी हो, इतना सन्देह रहित है कि समाजमें उसका स्थान था। सम्भवतः ऐसी विधवाएँ भी थीं जो आमरण विधवाएँ बनी रहती थीं यद्यपि स्वाभाविक ही लड़ाके पुरुषोंवाले उस युगमें विधवाओंकी संख्या अधिक नहीं रह सकती थी। एक स्थलपर स्पष्ट उल्लेख है—

"अश्विन्, तुम कृश और शयुकी रक्षा करो, तुम दोनों विधवा और अर्यवकी सहायता करो" (ऋ० १०, ४०, ८)। यह संकेत उन विधवाओंके प्रति है जो फिर विवाह नहीं करती थीं। "कस्ते मातरं विधवामचकृच्छयुं" (४, १८, १२) में भी उसी स्थितिका उल्लेख है। ऋषि जैसे इन्द्रसे पूछता है—मेरी माँको किसने विधवा बना दिया? दसवें मण्डलके मृत्यु-सूक्त (१८, ७) में समाजमें अविवाहिता विधवाओंके प्रति परोक्ष संकेत उपलब्ध है। स्थिति विशेष और अनुष्ठान सम्पन्न करनेके

लिए इसमें अविधवा नारियों (नारीरविधवाः) का उल्लेख हुआ है। इसमें अविधवा सपत्नियोंके जलूसका वर्णन है। लगता है कि आजकी ही भाँति, चाहे इस मात्रामें न सही, तब भी विधवाएँ अकल्याणी मानी जाती और अनुष्ठानोंसे पृथक् रखी जाती थीं। प्रसंग विवाहका है जिससे विधवाओंके दूर रखनेका दूरस्थ संकेत मिलता है। इस जलूसमें अविरल नारियाँ ही भाग ले सकती थीं। प्रकट है कि समाजमें तब अविवाहिता विधवाएँ वर्तमान थीं।

ऋग्वेदमें विधवा सम्बन्धी सामग्री, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, थोड़ी है। आर्य शत्रुओंके बीच रहते थे, उनकी अपनी जनसंख्या अपेक्षाकृत कम थी और अपनी रक्षाके लिए, विजयके लिए भी, उन्हें पुरुषोंकी आवश्यकता थी। इससे यह सम्भव न था कि शिशुजननकी आयु वाली नारियाँ उपेक्षित छोड दी जायँ और आमरण विधवा बनी रहें। जो अपने मृत पतिके प्रति आमरण सत्य निभाना चाहती थीं, और उनकी संख्या नितान्त कम थी, उन्हें छोड शेष सभी विधवाएँ अपना विवाह फिर कर लेती थीं। इसी कारण समाजमें उनकी संख्या अत्यन्त कम थी। लगता है कि विधवाएँ विधवा होते ही प्रायः सर्वदा शीघ्र अपने देवर अथवा पतिके निकटतम सम्बन्धीसे व्याह दी जाती थीं। ऊपर उद्धृत मृत्यु-सूक्त से यह स्पष्ट है। पतिकी मृत्युके बाद जब उसका शव जलाने या दफनानेके लिए श्मशान अथवा कब्रगाहमें ले जाया जाता था तब उसकी विधवा भी शवके साथ-साथ जाती थी। साथ ही उसके पतिके परिवारके पुरुष और पतिवती (अविधवा) नारियाँ भी जाती थीं। संस्कारार्थ उसे पतिके शवकी बगलमें लेटना पड़ता था। यह प्राचीनकालसे चले आते मृत्यु-संस्कारका एक अंग था। उसका विवेचन हम फिर करेंगे। कालके मारे (१०, १८, २–१) उस वीरके पास जब तक वह पड़ी रहती थी तब तक उसके सम्बन्धी अन्त्येष्टिकर्म (३) करते थे। इसी बीच पतिवती नारियाँ (नारीरविधवाः), अंजनयुक्त निरश्रु नेत्रोंवाली सपत्नियाँ, वस्त्राभूषण और

सुगन्धसे युक्त प्रसन्न वदन धधकती चिताके समीप जा उस नयी विधवाको नये जीवनके लिए सजाने लगती थी (७)। उसी समय कृत्योंके बीच ही उसका विवाह हो जाया करता था। चिता प्रज्वलित होनेसे पहले पुरोहित शवके पास लेटी विधवाको संबोधन कर कहता था—"उठ नारी, जीवलोकको लौट। वह, जिसके समक्ष तू पड़ी है, अब मर चुका है। तेरा पत्नीत्व अब तेरे इस पतिके साथ है जिसने तेरा कर पकड़ा है और प्रणयी-सा तुझे वरा है।" (८) मूल अत्यन्त शालीन है—

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सम्बभूथ॥

उसके पतिका भाई (देवर), जो उसे ब्याहता था, उस अवसरपर मृतकके हाथसे धनुष लेता हुआ कहता था—"मैं उसके मृत करसे धनुष लेकर धारण करता हूँ जिससे वह हमारी शक्ति और गौरव बने। तू वहाँ है यहाँ, और यहाँ हम वीर सारे विघ्न और शत्रुओंकी विजय करें"। (९) इस प्रकार मृत आर्य वीरका छोटा भाई न केवल धनुके प्रतीकसे 'जन' का नेतृत्व ग्रहण करता था वरन् मृतककी विधवासे विवाह भी कर लेता था। उदाहरण प्रमाणतः अभिजात राजन्यका है। यह महत्त्वका प्रसंग है कि धनुष लेते हुए वीर सावधि युद्ध और शत्रुओंका उल्लेख करता है। विधवाका तत्काल मृतक सामीप्यसे जीवलोकको लौट आना विशेष अर्थ रखता है। युद्धकी उस आपद्ग्रस्त दुनियामें पुरुषोंकी संख्या द्वारा ही रक्षा संभव थी। संख्या वीरजननी नारियोंसे ही संभव थी। शिशुजनन-आयुकी विधवाएँ समाजको निःसन्देह बड़ी मँहगी पड़ती। इससे आर्य विधवा होते ही उनसे विवाहकर प्रजनन-कार्यमें लग जाता था। कुछ आश्चर्य नहीं कि वधूको [illegible]र्वाद देता हुआ पुरोहित उससे "दस पुत्रों" की आशा करे, पतिको [illegible]ह्वाँ" बनाये।

[illegible] विधवासे तत्काल, संभवतः मृतककी अन्त्येष्टिसे [illegible] था। पता नहीं इस विधवा-विवाहके अवसर-

पर विवाहकी पूरी रीतियाँ सम्पन्न होती थी या नहीं पर कमसे कम इतना तो सच है कि विधवा शीघ्र चितासे उठ देवरका हाथ पकड़ लेती, और उसकी औरस पत्नी तत्काल बन जाती थी। लगता है, जैसे यह विवाह स्वयं मृतक-सस्कारका ही अग रहा हो। इसमें सन्देह नहीं कि यह प्रथा साधारणत क्रूर जान पडेगी कि विधवा मृतपतिके दग्ध होते ही दाम्पत्य सुख-भोगमें लीन हो जाय। विवाहकी यह कल्पना कुछ अजब नही कि जब-तब नारीको जघन्य अपराध करनेपर भी उतारू कर देती है। कुछ असम्भव न था कि पतिताएँ उससे विवाह करनेके लिए राहके काँटे पतिको सहसा हटा दें जिसके साथ पतिके जीवनकालमें प्रच्छन्न रूपसे वे रमण करती रही हों। उस स्वच्छन्द समाजमें, जब वधूका विशेषण विवाहके समय भी 'देवृकामा' (देवरकी कामना करनेवाली) था, ऐसा होजाना कुछ असम्भव न था। वस्तुत. इस प्रकारकी दुर्बलताएँ सब कालके समाजमें होती आई हैं। बाकी रही वह भावुकता कि पतिकी मृत्युके शीघ्र बाद विधवासे विवाह निष्ठुरता है तो उसका समाधान केवल यह कहकर किया जा सकता है कि ऋग्वैदिक आर्य जितना ही आपदाओंसे घिरा था उतना ही उनके तिरस्कारमें वह आमोदशील भी था। साथ ही उत्तर-कालीन वशजोंसे वह कही कम धर्मवादी था, कही अधिक लोकवादी। मृत्युपर वह प्रसन्न हँसता था, वह उसके जीवनमें सामान्य घटना थी। मृत्युका उपहास किये बगैर आर्यका जीना उस क्रूर संसारमें कठिन था। इसीसे शव-संस्कारके समय ऋषि कहता है—"हम नृत्य और हास्यके लिए यहाँ आये है।" (**प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः**—१०, १८, ३)। नित्य शत्रुओंसे घिरे वे उन्हें मारते उनसे मरते रहते थे, कुछ अजब नही कि अपने मृतकोंकी संख्या कम करने और जीवित लड़ाके वीरोंकी संख्या बढानेके लिए सद्योजाता विधवाको पत्नी बना वे प्रजनन कार्यमें जागरूक हो जाते हों। विपद् थी पर उनकी आवश्यकता उससे बडी थी।

विधवा विवाहका एक और प्रमाण दसवें मण्डलके ४० वें सूक्त (२) में मिलता है। ऋचा इस प्रकार है—

"अश्विन्, तुम सन्ध्या समय कहाँ रहते हो ? कहाँ प्रातःकाल रहते हो ? तुम्हारा निवास रात्रिमें कहाँ है ? तुम्हें घरकी ओर कौन लाता है ? कौन लाता है तुम्हें इस प्रकार जिस प्रकार विधवा देवरकी शय्याका आरोहण करती है, जिस प्रकार वधू वरकी ओर आकृष्ट होती है ?"

इस छन्दका संकेत उस सामान्य रीतिकी ओर है जिसमें देवर साधारणतः भाईके मरनेपर उसकी विधवासे विवाह कर लेता था। प्रमाण असंदिग्ध है। उसका घरेलू है, निकटकी घटनाकी परिचायक। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, पत्नी अपनी अविधवावस्थामें भी 'देवृकामा' कहलाती थी जिससे पतिविहीन होनेपर उसकी ओर उसके भावोंका प्रवाह स्वाभाविक था।

विवाहार्थ ले जायी जाती (मर्नाह'—१, १२४, ७,) अन्य विधवाओंका उल्लेख मिलता है। ऐसी विवाहिताओंको 'पुनर्भू' अर्थात् पुनर्जात कहा गया है। पतिके कहीं चले जानेपर भी पत्नी अपनेको विधवा मानकर फिरसे अपना विवाह कर सकती थी (ऋ० ६, ४९, ८)।

इसका प्रमाण स्पष्ट उपलब्ध नहीं कि विधवा-विवाहमें भी आवश्यक विधियाँ सम्पन्न होती थीं या देवरकी स्वीकृति मात्र विधवाको पत्नी बनानेके लिए पर्याप्त थी। प्रस्तुत प्रमाणमें तो वह सीधी चितासे उठा ली गई है। और उसका देवर उसे पत्नी रूपमें ग्रहण कर लेता है। उसी सिलसिलेमें उससे पुत्र उत्पन्न करनेकी बात भी कही गई है। जान पड़ता है कि विधवा-विवाहमें जनके लोगोंके सामने देवरका उसे स्वीकार मात्र कर लेना पर्याप्त था और उपस्थित लोग उसके साक्षी माने जाते थे।

साधारणतः विधवा-विवाह सती प्रथाका प्रश्न हल कर देता है। यह बड़े महत्त्वकी बात है कि ऋग्वेदके-से वृहद् ग्रन्थमें विधवाके चितारोहणका एक भी प्रमाण नहीं है। विधवाओंके तत्काल पत्नी बनकर समाजमें

दोबारा ममा जानेके कारण ऐसा होना स्वाभाविक ही है। ऋग्वेद १०, १८, ९ से फिर भी, कुछ लोगोंकी रायमें, ऐसी ध्वनि निकलती है कि एक समय कभी रहा होगा जब मृतकके साथ ही उसका धनुष, जो उसके हाथ से ले लिया जाता है, और उसकी विधवा जो उसकी बगलमें चितापे डाली जाती है, जला दी जाती थी। अथर्ववेदमें तो निःसन्देह विधवाके पतिके शवके साथ जलनेकी बात स्पष्टतः लिखी है। नृशास्त्रमें प्रमाणित है कि विधवा-दहन प्राचीन योद्धाओंके अन्त्येष्टि कर्मका एक आवश्यक अंग था। हाँ, उस स्थितिमें सती प्रथा ऋग्वैदिक समाजमें समसामयिक न मानी जाकर हिन्द-यूरोपीय कालकी सामाजिक रीति माननी होगी। अथर्ववेदके जिस मन्त्रका ऊपर हवाला दिया गया है वह इस प्रकार है (१८, ३, १)—

इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यत उपत्वा मर्त्य प्रेतम्।
धर्मं पुराणं अनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि॥

इससे एक बात तो बडी स्पष्टतया प्रमाणित है। वह यह कि सती प्रथा इसमें 'धर्म पुराणम्' कही गई है। इससे सिद्ध है कि एक जमाना था जब विधवा मृत पतिके शवके साथ चितापर जल मरती थी। अथर्ववेद उसी प्राचीन कालके 'धर्म पुराण' का संकेत करता है, परन्तु जान पड़ता है ऋग्वेदके समाजने कालान्तरमें (अथर्ववेदका वह संकेत ऋग्वैदिक समाजसे भी पूर्वकालकी ओर इशारा करता है) उस प्राचीन धर्मके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। जो सुपत्नियाँ सजकर चितारोहणके लिए विधवाका अन्त्य मण्डन करने आया करती थी वही अब नवविवाहके लिए उसे सजाने लगीं जिससे वह परलोकसे लौटकर नये सिरेसे जीवलोकमें प्रवेशकर 'पुनर्भू' कहलाई।

'आरोहन्तु योनिमग्रे'के सम्बन्धमें केगीका कहना है कि जरा-सी बेईमानीसे इसीका पाठान्तर ('आरोहन्तु योनिमग्ने') सती प्रथाको वैदिक प्रतिष्ठा दे सकता था। परन्तु जैसा हमने ऊपर संकेत किया है, पुत्र उत्पन्न

करनेकी आयुवाली विधवाओंकी समाजमें आवश्यकता थी और यह सम्भव न था कि उनका अन्त कर दिया जाय। फिर उनका जलाना जीवनशक्ति की बड़ी हानि भी थी क्योंकि राजाओं और पुरोहितों अथवा श्रीमानोंकी कुछ एक ही पत्नी नहीं, आर्य-अनार्य अनेकों होती थीं, और पतिकी मृत्युपर विधवाओंके जलानेका अर्थ था एक समूचे हरममें आग लगा देना, जब राष्ट्रको वीर प्रदान करनेवाली माताओंकी इतनी आवश्यकता थी। सती-दाह वस्तुतः एकपत्नी-स्थिति (ऐसा नहीं कि प्राचीनकालमें पत्नियोंके दलके दल अन्य समाजोंमें जलाये न गये हों), पतिकी प्रेमगत ईर्ष्या और नारीके अधिकारोंकी पतितावस्थाका परिणाम था। भारतीय इतिहासके पिछले स्तरोंमें समाजमें इन तीनों स्थितियोंका बोलबाला हुआ। परन्तु ऋग्वेदकालीन समाजमें स्थिति दूसरी थी, बहुपत्नीत्व साधारणतः उसमें प्रचलित था, पतिकी ईर्ष्याके स्थानपर उस पौरोहित्य युगमें स्वच्छन्द प्रणयका बाहुल्य था। (जार-जारिणियोंके उल्लेख उस वेदमें भरे पड़े हैं), नियोगकी प्रथा सदाचरणको खोखला और पतिकी ईर्ष्याका अन्त करनेको पर्याप्त थी (महाभारतकाल जो ऋग्वेदका ही उत्तर युग है नियोग और दुराचरणसे भरा था), और नारीके अधिकार अपेक्षाकृत सुरक्षित थे। अविवाहित विधवाएँ समाजमें वहीं रह जाती थीं जिनकी पुत्र प्रसव करने-की आयु बीत चुकी थी।

विवाहका लक्ष्य पुत्रोत्पत्ति द्वारा वंश कायम रखना और राष्ट्रको शक्तिशाली बनाना होनेके कारण नारी मातृ रूपमें ही विशेष महत्त्व रखती थी। उसके नारीत्वका चरम गौरव मातृत्वका था। पुत्रोत्पत्ति इतना आवश्यक, इतना महत्त्वपूर्ण, माना जाता था कि पतिकी क्लीवता, उसका चिरकालके लिए दूर चला जाना, लोप, अभाव या मृत्यु उस प्रजनन-कार्यमें किसी प्रकारका बाधक नहीं माना जाता था। जिस विधिसे इन विषम परिस्थितियोंमें भी वह पुत्रोत्पत्तिका कार्य जारी रखा जाता था उसे 'नियोग' कहते थे। इसका अर्थ था पुत्रोत्पत्तिके हेतु परपुरुष गमन अथवा

पत्नीका पतिसे भिन्न व्यक्ति द्वारा सन्तानोत्पादन । नियोग शब्दका प्रयोग उत्तरकालीन साहित्यमे हुआ है और वह ऋग्वेदमे सम्भवतः नही मिलता, परन्तु उस समाजमे उस प्रथाका प्रचलन प्रमाणतः पर्याप्त रूपसे जारी था। पुरुकुत्सानीने पतिके अन्यत्र बन्दी रहते समय पुत्र पाया था (ऋ० ४, ४२, ८-९) । उस संहितामे क्लीव पतियोंकी पत्नियोंके पतिभिन्न व्यक्तियों द्वारा सन्तान उत्पन्न करनेका उल्लेख अनेक बार हुआ है (वही, १, ११६, १३, ११७, २४, ६, ६२, ७; १०, ३९, ७, ६५, १२)। पुरधि वध्रिमतीने पतिकी क्लीवावस्थामे दूसरे द्वारा पुत्र उत्पन्न कराया। अश्विनीकुमारोके प्रति एक ही स्तुति इस प्रकार है—"तुम रथपर चढकर विमदके समीप गये और उसे पुरुमित्रकी कन्या प्रदान की । तुमने क्लीव की पत्नीके समीप जा उसे पुत्र प्रदान कर सुखी किया (१०, ३९, ७)। इसी प्रकार उन्होने एक अन्य क्लीवकी पत्नीको हिरण्यहस्त नामका पुत्र दिया (१, ११७, २४) ।

यद्यपि पतिका कोई बन्धु उसकी पत्नीके साथ नियोग कर सकता था, साधारणत देवर ही इस कार्यके लिए उपयुक्त समझा जाता था । जैसा हम ऊपर लिख चुके है, विधवाका विवाह भी अधिकतर उसीसे होता था । पत्नी अथवा वधू अपने विवाहके अवसरपर भी देवृकामा कही गई है । देवर वस्तुत दूसरा पति है जिससे, उत्तर कालमे स्खलनोंके कारण उसका भाभीसे सम्बन्ध पुत्रवत् कर देनेपर भी, आज तक दोनोंमें उत्तर भारतमे एक संदिग्ध सम्बन्ध बना रहा । दोनोंमें आज भी खुले मज़ाक चलते हैं और कुछ कौमोंमें तो भाभीके विधवा होनेपर देवरके साथ उसका सामान्यत- विवाह भी हो जाता है ।

ऋग्वैदिक युगमें बहुपत्नी-बहुपति विवाह

अभिजात, सामन्ती और सामरिक व्यवस्थामें बहुपत्नीकता सामान्य धर्म है। ऋग्वैदिक युग इसीका सम्मिलित रूप प्रस्तुत करता है। इन्द्र राजन्य, अभिजात श्रीमान् और उनके समीपवर्ती ऋषि-पुरोहित साधारणतः बहुपत्नीक होते थे। एक स्थलपर (ऋ० १,६२,११) उत्कण्ठित पतिसे उत्कण्ठिता पत्नियोंके (पत्नीरुशती) चिपट जानेकी उपमा दी गई है। संहितामें सपत्नियोंके स्पर्धाजनित कष्टसे लाचार पतिका सुन्दर चित्र खींचा है—'सब ओरसे सपत्नियोंकी तरह कुचलते हुए मुझे पीड़ित करते हैं' (सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः—वही, १,१०५,८,१०,३३,२)। दोनों ओरसे सपत्नियों द्वारा पीड़ित पतिकी यह दुर्दशा कष्टकर व्यंग प्रस्तुत करती है।

अनेक पति बहुपत्नियोंके सहवाससे उल्लसित होते थे। इन्द्र उन्हींमें था। अपनी अनेक पत्नियोंसे (जनिभिः) वह बड़ा सुख लाभ करता था। राजाओंका बहुपत्नीक (राजेव हि जनिभि—वही ७,१८,२) होना तो मानो अनिवार्य था। अन्यत्र अनेक पत्नियोंका समान पतिको प्यार करना लिखा है (वही १,७१,१)। संहिताके १,६२,१० का वक्तव्य इस प्रकार है—"सहस्रों पवित्र कार्यों के लिए वहने उसका वैसे मुँह जोहती है जैसे पत्नियाँ (पत्नी) और नारियाँ (जनय)।" इसी प्रकार इन्द्रके सम्बन्धमें कहा गया है कि उसने "सारे पुरों पर वैसे ही अधिकार कर लिया है जैसे एक ही समान पति (पतिरेकः समानो) सारी पत्नियोंपर (जनीरिव) अधिकार कर लेता है (वही, ७,२६,३)। एक स्थलपर (१०,४३,१) पतिका पत्नियों द्वारा आलिंगन (परिष्वजन्ते जनयो यथा

पतिसे) किये जानेकी उपमा दी गई है। एक सुन्दर उपमा दो पत्नियोंवाले पतिकी रथके दोनों धुरोंके बीच दबे अश्वसे दी गई है। दोनोंकी स्थिति कठिन होती है, इधरके बीच दबे घोड़ेकी भी, पत्नियोंके बीच सपत्नीक पतिकी भी (१०,१०१,११)। इसी प्रकार 'पतिर्जनीनाम्' (१०,८६,३२) पदमें भी उसी बहुपत्नीक पतिकी ओर संकेत है। ऐसा ही स्पष्ट उल्लेख ३,१,१० में भी है। सपत्नियोंका उल्लेख ३,६,४ में भी हुआ है। इसी प्रकार १,५९,४ में वैश्वानरको अनेक पत्नियोंका जिक्र है। दिवाके पर मे अनेक 'मोदमाना' वधुओंका इन्द्रके लिए उड़ना स्पष्टतः लिखा है—
उपप्रक्षे वृषणो मोदमाना दिवस्पथा वध्वो यन्त्यच्छ (५,४७,६)। सुन्दर वेणियों वाली अनेक कुमारियाँ देवताका आलिंगन करती हैं (१,१४०,८)। 'सपत्नी' (सौत) शब्दका प्रयोग संहिताके अनेक छन्दोंमें (३,१,१०,६,४,१, १०५,८,१०, १४५,१२.५; १५९,५) हुआ है।

बहुपत्नीकका सबसे महत्त्वपूर्ण प्रमाण दसवें मण्डलके १४५ वें और १५९ वें सूक्तोंमें हुआ है। इनमें पहलेका नाम ही है उपनिषत्सपत्नी-बाधनम्, जो सौतको नीचा दिखानेका मन्त्र है। इन्द्राणी स्वयं इस सूक्तकी ऋषि है और मन्त्र द्वारा इन्द्रके ऊपर सपत्नियोंका प्रभाव नष्ट कर अपना प्रतिष्ठित करना चाहती है। उसका वक्तव्य इस प्रकार है—

"अत्यन्त शक्तिशाली इस पौधको भूमिमे खोदती हूँ। इससे सपत्नी बाँधी जाती है, पत्नीपर अधिकार किया जाता है। (१)

"देवताओंके भेजे, बड़े पत्तों वाले कल्याणकर विजयी पौध, तू सपत्नी-को दूर कर, मेरे पतिको सर्वथा मेरा बना। (२)

"हे सबल, मैं सबला हूँ; सबलासे सबला, और वह मेरी सपत्नी अबलासे अबला है, सर्वथा निम्नगा। (३)

"मैं उसका नाम नहीं लेती, वह इस जनमें निष्ठा करे, हम सपत्नीसे दूर सुदूर भागते हैं। (४)

"मैं विजयिनी हूँ, और तू भी विजयी है, विजय हम दोनोंके पक्षमें है, दोनों सपत्नीको परास्त करेंगे। (५)

"मैंने तुझ विजयीको (सभवतः इन्द्रको) जीत लिया है, तुझे शक्ति-मंत्र द्वारा जकड लिया है। जैसे गाय बछड़ेकी ओर दौड़ती है, तेरा मन भी वैसे ही मेरी ओर दौड़े। नीचे दौड़ते हुए जलकी भाँति तू मेरी ओर दौड़।"(६)

दूसरे सूक्तमें, जिसका हवाला ऊपर दिया जा चुका है, इन्द्राणी शची पौलोमी नामसे उस डाले मन्त्रका प्रभाव प्रकाशित करती है। प्रमाणतः सपत्नियोंका नाश हो चुका है और इन्द्रपर उसका एकाधिराज स्थापित है। सूक्त इस प्रकार है—

"इधर सूर्य आकाशकी मूर्धापर उठा इधर मेरा भाग्य चोटीपर चढ़ा। मैंने अपने स्वामीको जीत लिया है। (१)

"मैं केतु हूँ, मैं मूर्धा हूँ, शक्तिमती स्वामिनी मैं हूँ। मैं विजयिनी हूँ, मेरा स्वामी मेरे वशमें है। (२)

"मेरे पुत्र शत्रुघ्न हैं, मेरी कन्या अधिरानी है, मैं विजयिनी हूँ। स्वामीके ऊपर मेरा मन्त्र अधिष्ठित है। (३)

"देवो, जिस हविसे इन्द्र शक्ति धारण करता है, विजयी होता है, मैंने ही प्रस्तुत की है। मुझे प्रत्येक सपत्नीसे मुक्त करो। (४)

"सपत्नियोंका नाश करने वाली मात्र पत्नी, विजयिनी, उन अन्य अबला नारियोंका तेज मैंने छीन लिया है। (५)

"मैंने अपनी इन सपत्नियोंको परास्त कर दिया है जिससे मैं इस वीर (इन्द्र) और जनोंपर अधिकार रख सकूँ।"(६)

प्रकट है कि बहुपत्नीक व्यवस्थामें परिवार प्रायः सग्गर और कलह-की क्रीडाभूमि हो जाता होगा। सपत्नीको नष्ट करने और पतिपर उसका

प्रभाव कम करनेके लिए जन्तर-मन्तर, झाड़-फूँकका सहारा लिया जाता होगा। ऊपरके दोनों सूक्तोंमें इन्द्राणीने जमीनसे सपत्नी नष्ट करने वाली औषधि (पौधा) निकालकर उसके नाशके लिए मन्त्रका अनुष्ठान किया है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि राजा, श्रीमान् और आढ्य पुरोहित बहुपत्नीक होते थे। संहितामें अनार्योंके भी बहुपत्नीक होनेके उल्लेख मिलते हैं (१,६२, ११,७१,१;१०४, ३,६;१०५,८; ११२, १९; १८६, ७,७, १८, २,२६, ३,१०,४१, १;१०१, ११)। राजाओंका तो जैसे बाकायदा हरम होता था जिसमें उनकी विवाहिता पत्नियोंके साथ अविवाहिता वधुएँ (जिनसे वे जब चाहते विवाह कर सकते थे) और रखैलें भी रहती थीं। ७, १८, २, की उपमासे प्रकट है कि इंद्र अपनी पत्नियोंमें वैसे ही रहता था जैसे राजा (**राजेव हि जानिभिः**)। उत्तरवैदिक साहित्यसे प्रकट है कि राजाके हरममें कमसे कम चार प्रकारकी रानियाँ होती थीं—महिषी (पटरानी), परिवृक्ती (षड्यंत्रादिसे शक्ति धारण करने वाली), वावाता (राजाकी प्रिया) और पालागली (राजनीतिक कारणोंसे विवाहिता, सभासदों व रानियों आदिकी संबंधिनी जिन्हें राजा महलमें डाल लेता था)। इन चारोंके द्वारा धार्मिक अनुष्ठानोंका हवाला ब्राह्मणोंमें मिलता है। जाहिर है कि इनमें परस्पर द्वेष चलता रहता होगा, जैसा इन्द्राणीके सूक्त भी प्रमाणित करते हैं, और पत्नियाँ अपने पुत्रको राज्याधिकार दिलानेके भी प्रयत्न और षड्यन्त्र करती रहती होंगी।

संहितासे प्रमाणित है कि राजा पुरुरवाके उर्वशीके अतिरिक्त अन्य पत्नियाँ (क्षोणिभिः) भी थीं (१०,९५,९)। पुराणोंसे भी इसकी पुष्टि होती है। कालिदासने भी अपनी 'विक्रमोर्वशी' में उस राजाको अनेक पत्नियोंका पति बनाया है। इसी 'क्षोणि' शब्दका प्रयोग उस इन्द्रके लिए भी हुआ है (२,१६,३) जिसकी अभितृप्ति नारियोंसे नहीं हो पाती। ऊपर महिषीका उल्लेख हो चुका है। उसका अर्थ है प्रधान रानी, जिसने

अन्य रानियोंका होना स्वाभाविक है। महिषी शब्दका प्रयोग भी संहितामें अनेक बार (५,२,२,३७, ३ आदि) हुआ है।

राजाओंके अतिरिक्त ऋषियोंमें भी बहुविवाहकी प्रथा थी। कक्षीवान्ने रोमशा और घोषा दो राजकुमारियोंको ब्याहा था (१,१२६, ३; १, ५१, १३)। इसी प्रकार प्राचीन ऋषि च्यवन अथवा च्यवानने भी वृद्धावस्थामें अनेक पत्नियों (१, ११६, १०, ५, ७४, ५, १, ११७, १३, ११८, ६; ७ ६८, ६,७१, ५, १०, ३९, ४) को ब्याह कर दुर्दशा झेली थी। कक्षीवान्, औशिज, कवष अथवा वत्स दासी-माताओंसे जन्मे थे। ये निश्चय औरस पत्नीके अतिरिक्त रखैलोंकी भाँति उनके ऋषि-पिताओंके पास रही होंगी क्योंकि एकपत्नी ऋषिके अनार्या ब्याहनेका एक प्रमाण भी ऋग्वेदमें नहीं है। अनार्या भार्याएँ सदा आर्या पत्नीसे अतिरिक्त होती थीं जो या तो विवाहके साथ ही द्वितीया वधूके रूपमें आती थीं अथवा ऋषियोंको उदार दाताओं द्वारा दानमें मिलती थीं।

यहाँ विवाहार्थ प्रस्तुत दास-कन्याओंपर दो शब्द लिख देना समीचीन होगा। यह तो स्पष्ट है कि उनके आर्योंके साथ विधिवत् विवाहका प्रमाण ऋग्वेदमें नहीं मिलता। आर्योंके सारे कार्य मन्त्रानुष्ठान द्वारा सम्पन्न होते थे, इससे विधिवत् धर्माचरणके योग्य दासी-पत्नियाँ न समझी जानेके कारण निश्चय परिवारमें उनका स्थान रखैलिनों (उपपत्नियों) का रहा होगा। लगता है, पिछले रजवाड़ोंकी भाँति विवाहके ही समय प्रमाणतः पत्नीकी आमरण सेवाके लिए पत्नीके साथ ही वे आर्यवरको प्रदान कर दी जाती थीं और उनकी संज्ञा भी पत्नीकी ही तरह 'वधू' होती थी (१, १२६, ३,५, ४७, ६, ६, २७, ८,८, १९, ३६,६८, १७)। इस संज्ञाकी विवाहिता पत्नीकी ही भाँति संभवतः उन्हें अनेक अधिकार मिल जाते थे। उनका यह नाम सार्थक तभी हो सकता था जब आवश्यकतावश उन्हें औरस पत्नी बन सकनेकी संभावना हो। आर्यवरको विवाहके अवसरपर ही 'वधू' रूपमें प्रदान की गई होनेसे उनका स्थान

प्रभाव कम करनेके लिए जन्तर-मन्तर, झाड़-फूँकका सहारा लिया जाता होगा। ऊपरके दोनों सूक्तोंमे इन्द्राणीने जमीनसे सपत्नी नष्ट करने वाली औषधि (पौधा) निकालकर उसके नाशके लिए मन्त्रका अनुष्ठान किया है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि राजा, श्रीमान् और आढ्य पुरोहित बहुपत्नीक होते थे। संहितामे अनार्योंके भी बहुपत्नीक होनेके उल्लेख मिलते है (१,६२, ११;७१,१,१०४, ३,६;१०५,८; ११२, १९; १८६, ७,७, १८, २,२६, ३,१०;४१, १;१०१, ११)। राजाओंका तो अंतः वाकायदा हरम होता था जिसमे उनकी विवाहिता पत्नियोंके साथ अविवाहिता वधुएँ (जिनसे वे जब चाहते विवाह कर सकते थे) और रखैलें भी रहती थी। ७, १८, २, की उपमासे प्रकट है कि इंद्र अपनी पत्नियोंमें वैसे ही रहता था जैसे राजा (राजेव हि जानिभिः)। उत्तरवैदिक साहित्यसे प्रकट है कि राजाके हरममें कमसे कम चार प्रकारकी रानियाँ होती थी—महिषी (पटरानी), परिवृक्ती (षड्यंत्रादिसे शक्ति धारण करने वाली), वावाता (राजाकी प्रिया) और पालागली (राजनीतिक कारणोंसे विवाहिता, सभासदों व रानियों आदिकी संबंधिनी जिन्हें राजा महलमें डाल लेता था)। इन चारोंके द्वारा धार्मिक अनुष्ठानोंका हवाला ब्राह्मणोंमें मिलता है। जाहिर है कि इनमें परस्पर द्वेष चलता रहता होगा, जैसा इन्द्राणीके सूक्त भी प्रमाणित करते हैं, और पत्नियाँ अपने पुत्रोंको राज्याधिकार दिलानेके भी प्रयत्न और षड्यन्त्र करती रहती होंगी।

संहितासे प्रमाणित है कि राजा पुरुरवाके उर्वशीके अतिरिक्त अन्य पत्नियाँ (क्षोणिभिः) भी थी (१०,९५,९)। पुराणोंमे भी इसकी पुष्टि होती है। कालिदासने भी अपनी 'विक्रमोर्वशी' में उस राजाको अनेक पत्नियोंका पति बनाया है। इसी 'क्षोणि' शब्दका प्रयोग उस इन्द्रके लिए भी हुआ है (२,१६,३) जिसकी अभितृप्ति नारियोंसे नही हो पाती। ऊपर महिषीका उल्लेख हो चुका है। उसका अर्थ है प्रधान रानी, जिसने

अन्य रानियोंका होना स्वाभाविक है। महिषी शब्दका प्रयोग भी संहितामें अनेक बार (५,२,२;३७, ३ आदि) हुआ है।

राजाओंके अतिरिक्त ऋषियोंमें भी बहुविवाहकी प्रथा थी। कक्षीवान्‌ने रोमशा और घोषा दो राजकुमारियोंको ब्याहा था (१,१२६, ३, १, ५१, १३)। इसी प्रकार प्राचीन ऋषि च्यवन अथवा च्यवानने भी वृद्धावस्थामें अनेक पत्नियों (१, ११६, १०, ५, ७४, ५, १, ११७, १३, ११८, ६; ७ ६८, ६,७१, ५, १०, ३९, ४) को ब्याह कर दुर्दशा झेली थी। कक्षीवान्, औशिज, कवष अथवा वत्स दासी-माताओंसे जन्मे थे। ये निश्चय औरस पत्नीके अतिरिक्त रखैलोंकी भाँति उनके ऋषि-पिताओं के पास रही होंगी क्योंकि एकपत्नी ऋषिके अनार्या ब्याहनेका एक प्रमाण भी ऋग्वेदमें नहीं है। अनार्या भार्याएँ सदा आर्या पत्नीसे अतिरिक्त होती थी जो या तो विवाहके साथ ही द्वितीया वधूके रूपमें आती थी अथवा ऋषियोंको उदार दानाओं द्वारा दानमें मिलती थी।

यहाँ विवाहार्थ प्रस्तुत दास-कन्याओंपर दो शब्द लिख देना समीचीन होगा। यह तो स्पष्ट है कि उनके आर्योंके साथ विधिवत् विवाहका प्रमाण ऋग्वेदमें नहीं मिलता। आर्योंके सारे कार्य मन्त्रानुष्ठान द्वारा सम्पन्न होते थे, इससे विधिवत् धर्माचरणके योग्य दासी-पत्नियाँ न समझी जानेके कारण निश्चय परिवारमें उनका स्थान रखैलिनों (उपपत्नियों) का रहा होगा। लगता है, पिछले रजवाड़ोंकी भाँति विवाहके ही समय प्रमाणत. पत्नीकी आमरण सेवाके लिए पत्नीके साथ ही वे आर्यवरको प्रदान कर दी जाती थी और उनकी सज्ञा भी पत्नीकी ही तरह 'वधू' होती थी (१, १२६, ३,५, ४७, ६, ६, २३, ८, ८, १९, ३६,६८, १७)। इस सज्ञाकी विवाहिता पत्नीकी ही भाँति सम्भवत उन्हें अनेक अधिकार मिल जाते थे। उनका यह नाम सार्थक तभी हो सकता था जब आवश्यकतावश उन्हें औरस पत्नी बन सकनेकी सम्भावना हो। आर्यवरको विवाहके अवसरपर ही 'वधू' रूपमें प्रदान की गई होनेसे उनका स्थान

पत्नीवत् हो जाता था, जिससे पति उनके साथ यथासमय निःशंक पतिवत् आचरण कर सकता था और पुत्रवती होनेपर तत्काल उनका पद विवाहिता पत्नीके समकक्ष हो जाता था वरना कक्षीवान्, औशिज, कवष आदि ऋषियों की माताओंको अगम्यगा अथवा अनादृता माननेकी कष्टकल्पना करनी होगी। बहुपत्नी विवाहकी यह प्रथा वधू रूपमें पुरोहितों, ऋषियों आदि-को दानमें देनेकी रीतिसे पर्याप्त प्रचलित रही होगी। गाय, घोड़े, ऊँटके साथ ही वधुओंके रथ भर-भर दिये जानेका उल्लेख मिलता है (६, २७, ८८, ६८, १७)। ऋग्वेद ८, १९, ३६ (५, ४७, ६ भी) के अनुसार राजा त्रसदस्युने सोभरि काण्वको 'वधू' रूपमें ५० दास-कन्याएँ दी थीं। स्वनय भावयव्यकी कन्या रोमशाके साथ विवाहमें कक्षीवान्को रथ भरकर वधुएँ दहेजमें मिली थीं (स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दशरथासो अस्थुः— १, २६, ३, और देखिए ७, १८, २२)। इन उदाहरणोंसे प्रकट है कि चाहे एकपत्नीत्व साधारण जनताका धर्म रहा हो, शक्तिमानों, समृद्धों और अभिजात्योंमें बहुपत्नी-विवाह छाये रहा है। सामरिक जीवनमें जब अधिकाधिक संख्यामें शत्रु-नारियाँ लूटी जाती थीं, उनका उपयोग पत्नियों या रखैलोंके रूपमें होना स्वाभाविक और अनिवार्य था।

बहुपति विवाहपर भी विद्वानोंमें कुछ कथोपकथन हुए हैं। यहाँ उस दिशामें प्रकाश डालना भी सार्थक होगा। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रसंगमें ऋग्वेदमें पर्याप्त स्पष्ट प्रमाण नहीं हैं यद्यपि कुछ सामग्री ऐसी निश्चय है जो उस दिशामें संकेत करती है। अधिकतर तो इसी कारण निष्कर्षोंपर निर्भर करना पड़ता है। और ये निःसन्देह अकाट्य नहीं होते। फिर भी उनसे इतना स्पष्ट हो जाता है कि ग्रन्थ किसी-न-किसी रूपमें किसी-न-किसी मात्रामें बहुपतित्व सहन कर सकता है और ऋषि उस स्थितिका अनुमान कर सकते हैं। यह स्वयं उस स्थितिकी आंशिक रूपमें स्थापना है।

साधारणतः तो विद्वानोंमें यह धारणा है कि बहुपति-विवाह अनार्य

थीं परन्तु जो प्रमाण ऋग्वेदमें उपलब्ध हैं और जिनका उल्लेख हम ने करेंगे उनसे प्रकट है कि यह रीति आर्योंमें भी सर्वथा अनजानी न थी। र भी यहां पाठकोंको सावधान कर देना आवश्यक है कि प्रमाण अधिक-धुंधले और परोक्ष हैं जिनसे वे सर्वथा निश्चयात्मक नहीं हो पाते। रका अधिकतर उपमाओं-अलंकारोंमें प्रच्छन्न रहना भी अनुमानात्मकताको दिखाई बढ़ा देता है। पहले तो इस प्रकारके प्रमाणोंकी संख्या तीन-चार है यद्यपि उनका प्रयोग दो-दो तीन-तीन बार हुआ है। इनका प्रयोग न वर्गके देवताओंके सम्बन्धमें हुआ है जिनका सम्बन्ध प्राकृतिक तत्त्वोंसे। वे हैं अश्विन् (अश्विनीकुमार), मरुत् और विश्वेदेवा। इनमेंसे पहले न तो प्रकृतिके स्पष्ट अवयव हैं और उनका परस्पर भी प्रायः पता म्बन्ध है। किन्तु चिकित्सक अश्विन् प्रातः सायंकी गोधूलि अथवा सम्बन्धी नक्षत्र हैं। ये युगल प्राणी हैं और उनका सम्बन्ध स्वाभाविक ो सूर्य और चन्द्रमासे है। वे चन्द्रमा (सोम) के सहचर हैं और उसकी ओरसे सूर्यकी दुहिता सूर्याको जीत लेते हैं। अनेक बार सूर्याके वरोंके रूपमें, उसे रथपर बिठा ले जाते हुए, और स्वयंवरमें उसके जीतनेके लिए—सम्भवतः सोमकी ओरसे—रथ-धावन प्रतियोगितामें भाग लेते हुए उनका वर्णन हुआ है। सूर्यकी दुहिता उनसे आकृष्ट उनके रथमें चढ़ती हुई (१, ११८, ५) बताई गई है। अन्यत्र उसका उन्हें पतिरूपमें वरण करना लिखा है (पतित्व योषा वृणीत "युवां पतीयु—१, ११६, ५)। यहां कुमारीका दो पति एक साथ वरण करना स्पष्ट है। परन्तु यह याद रखनेकी बात है कि अश्विन् जुड़वे देवता हैं जिनकी स्थिति सर्वथा एक व्यक्तिकी है। सूर्यकी दुहिता सूर्या सोमको ब्याही है जो वस्तुतः चन्द्रमामें आश्रय करनेवाली सूर्यकी प्रभा है जो प्रातः सायं गोधूलि (अथवा उसके देवता अश्विन्) द्वारा अपने आश्रय (सोम-चन्द्र) तक पहुंचती है। वर वस्तुतः सोम है। इसे १०, ८५, ९ और स्पष्ट कर देता है। यह मन्त्र सूर्या-विवाहका है जिसमें पति अथवा वर सोम कहा गया

है और अश्विन् केवल उसके सहवाल हैं। विवाह सूर्याका वहाँ सोमके साथ ही होता है, अश्विनोंके साथ नहीं।

मरुत् इन्द्रके सैनिक हैं। उनके सम्बन्धमें ऋग्वेदका एक वक्तव्य इस प्रकार है—"शालीना युवतीको युवाओंने अपने रथपर बिठा लिया" (**आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम्** (१, १६७, ६)। इससे पहलेकी ऋचामें एक (साधारणी) पत्नीका मरुतों द्वारा मुक्त होनेका संकेत है—

परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः।
न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः॥ (४)

वैसे ही ऋचा ५ मे रोदसीका मरुतोंके प्रति और सूर्याका अश्विनोंके प्रति अनुरक्त होना लिखा है। इसी प्रकार मरुतोके प्रति ऋषिका उद्गार है—"दूर जाओ, वीरो, अकेली पत्नीके वर, दूर जाओ" (**परा वीरास एतन मर्यासो भद्रजानयः**—५, ६१, ४)। जैसे कवि अश्विनोंमेंसे एकको नहीं सोच सकता, मरुतोको भी अकेला नही सोच सकता और उनमें अकेली बसनेवाली (बादलोकी प्रिया) रोदसी (बिजली) को उनकी भार्या मान लेना स्वाभाविक ही है।

विश्वेदेवाः स्पष्ट ही अनेक देवताओके दल है। उनके सबधका वक्तव्य प्राय. निश्चयात्मक है—"एक ही नारीके साथ पक्षधर अश्वोंपर चढे हुए दोनों मार्गमें यात्रीकी भाँति जाते है (**विभिर्द्वा चरत एकया सह प्र प्रवासेव वसतः**—८, २९, ८)। इसमें एकके बाद एक, पाण्डवोंकी भाँति, पत्नीके साथ रहनेकी ध्वनि है। महत्त्वकी बात यह है कि समयके विचार से महाभारत और इस मन्त्रके कालमें बहुत अन्तर नहीं है। संहितामें एक ही नारीके अनेक पतियों और ससुरोके सबधका उल्लेख निम्नलिखित प्रसगोंमें हुआ है यद्यपि सदर्भ संदिग्ध और अस्पष्ट है—७,३३, १३; ८, १७,७; १०,८५,३७-३८, १०, ९५, १२।

करना होगा। हमें प्राय. सभीके कुछ उदाहरण मालूम हैं। कुन्ती और माद्रीने अपने प्रकृत पति पाण्डुके रहते सूर्य, धर्म, वायु, अश्विनीकुमार आदिसे पुत्र जने थे, कुछ पहले भाग्नकुरी पुत्रवधुओंने भी। निश्चय ये उदाहरण नियोगके हैं, परन्तु नियोग द्वारा चाहे जितने कम समयके लिए पुरुष पत्याचरण करता हो स्थान उसका पतिका ही है। फिर पाँच पाण्डवों का एक द्रौपदीसे विवाह उसीको पुष्ट करता है। महाभारतमें इसे संमान्य बनानेका काफी प्रयत्न हुआ है परन्तु उससे समाधान हो नहीं पाता, विशेष कर जब हम पाण्डुके हिमालययात्राको देखते हैं जहाँ तिब्बतमें सदासे बहुपति विवाहकी प्रथा प्रचलित रही है, जिसका उल्लेख वात्स्यायनने अपने 'गोयूथिकम्' सूत्रमें किया है, और जो आज भी अनेकांशमें वहाँ कायम है। हाँ, यह माननेमें कोई हठधर्मी नहीं होनी चाहिए कि बहुपति-प्रथाकी ओर सम्भवत ऋग्वेदका संकेत समसामयिक समाजके प्रति न होकर अति प्राचीनके प्रति है, यद्यपि उससे स्थितिमें कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता।

संस्कृतके नाटक

कालिदासने नाटकको 'शान्त चाक्षुष यज्ञ' (शान्तं क्रतुं चाक्षुष) कहा है। इस 'प्रयोगप्रधान' (प्रयोगप्रधानं हि नाट्यशास्त्र—मालविका० पृ० १७) कलामें भारत कबसे प्रवीण रहा है यह कहना तो निश्चय कठिन है पर इसे स्वीकार करना प्राय सहज है कि अभिनयकी परम्परा सहस्राब्दियों प्राचीन है।

भरतके 'नाट्यशास्त्र' में नाटकके आरम्भका परम्परागत दृष्टिकोण दिया हुआ है—

> जग्राह पाठ्यं ऋग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च।
> यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥ (१, १७)

"ऋग्वेदसे पाठ्य, सामवेदसे गान, यजुर्वेदसे अभिनय और अथर्ववेदसे रस लेकर" ब्रह्माने पाँचवें—नाट्य-वेद—की रचना की। नाट्यशास्त्रके पहले अध्यायमें इस परम्परासे सम्बन्धित कथा इसी प्रकार दी हुई है—मानवोंको दुखी देख इन्द्रादि देवताओंने ब्रह्मासे चारों वेदोंसे भिन्न किसी ऐसे वेदका निर्माण करनेकी प्रार्थना की जिससे संहिताओंके साधारण अनधिकारी स्त्री, शूद्रादिकोंका मनोरंजन हो। परिणामस्वरूप इस प्रकार वेदकी रचनाकर ब्रह्माने उसके प्रयोगका कार्य पुत्रों सहित भरत मुनिको सौंपा। पहले यह प्रयोग 'भारती', 'सात्त्वती' और 'आरभटी' वृत्तिमें शुरू हुआ, फिर ब्रह्माने भरत मुनिसे 'कौशिकी' वृत्तिका प्रयोग करनेको कहा। परन्तु चूँकि उसके लिए स्त्री पात्रोंका होना अनिवार्य था इससे ब्रह्माने मंजुकेशी, सुकेशी आदि अप्सराओंको गिरज नारदादि

गन्धर्वोंके साथ भरत मुनिको सौंपा। मुनिने नाटकका पहला प्रयोग इन्द्रके ध्वजोत्सवमें किया। इन्द्रकी आज्ञासे विश्वकर्माने नाट्यगृह बनाया। फिर तो एकके बाद एक अनेक नाटक खेले गये। 'अमृतमन्थन' (समवकार), 'त्रिपुर-दाह' (डिम) उनमें विशिष्ट थे। कालिदासने भी उस परम्पराको भरतमुनि और उनके 'अष्टरसाश्रय' तथा 'ललिताभिनय' (नाट्य-शास्त्र, अध्याय ६-१०) के प्रसंगोंका उल्लेख कर ध्वनित किया है—

मुनिना भरतेन यः प्रयोगो
भवतीष्वष्टरसाश्रयो निबद्धः।
ललिताभिनयं तदद्य भर्ता
मरुतां द्रष्टुमना सलोकपालः॥ (विक्र० २,१७)

स्वयं भरतके नाट्यशास्त्रका रचनाकाल तीसरी सदी ईसवीसे पीछे नहीं रखा जा सकता। पाँचवी सदीके कालिदासने उनका उल्लेख अत्यन्त श्रद्धापूर्वक किया है जिससे उसकी प्राचीनता प्रकट होती है। कुछ अजब नहीं कि यह शास्त्र और भी प्राचीन हो, क्योंकि साहित्यिक परम्परा यह भी है कि भरतका शास्त्र उनके सूत्रोंपर अवलम्बित है, और सूत्र निश्चय और प्राचीन थे।

कालिदासने अपने पहलेके नाट्यकारोंमें महान् भास, सौमिल्ल और कविपुत्रका उल्लेख किया है, पर निश्चय उनकी शक्ति मानते हुए भी महाकविने विशेष आदर और महिमा भरतको 'मुनि' कह कर दी है। प्रकट है कि कालिदास भरतको इन नाट्यकारोंसे पूर्वका मानते हैं। इनमें सौमिल्ल और कविपुत्रका काल तो जाना हुआ नहीं है पर भासका समय सन्दिग्ध होकर भी साधारणतः तीसरी सदी ईसवी माना जाता है, वैसे वह काल भरत मुनिकी भाँति ही ई० पू० तीसरी सदी तक अनेक लोग मानते हैं। कुछ अजब नहीं जो भरतके नाट्यशास्त्रके कमसे कम कुछ अंश अश्वघोष और भाससे प्राचीन हों। उस स्थितिमें उन्हें हमें पहली सदी ईसवीसे पूर्व ही रखना होगा। फिर स्वयं भास और अश्वघोषकी रचनाएँ

शैली और सौन्दर्यमें इतनी प्रौढ और निखरी हुई हैं कि उनको संस्कृत साहित्यकी प्रारम्भिक नाटयकृतियाँ किसी प्रकार नहीं कहा जा सकता। इससे उनका विकासकाल भारतीय नाटकके प्रारम्भका समय और पूर्व फेंक देगा। साथ ही नाटयशास्त्र स्वयं प्रस्तुत कृतियोंको सामने रख कर ही रचा गया होगा। सिद्धान्त (आलोचना आदि सभी) सदा प्रयोगके बाद आविष्कृत होता है। उन दशामें निःसन्देह नाटयकृतियोंकी नाटयशास्त्रसे पूर्व स्थिति माननी होगी। और प्राचीन साहित्यमें इस ओर पर्याप्त संकेत विद्यमान है।

ई० पू० पाँचवीं सदीके वैयाकरण पाणिनिने अपनी अष्टाध्यायी (४, ३, ११०) में शिलाली और कृशाश्वके नटसूत्रोंका उल्लेख किया है। कौटिल्यके 'अर्थशास्त्र'में 'कुशीलव' शब्दका प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ अभिनेता होता है। इस शब्दका प्रयोग मनुने भी अपनी स्मृतिमें किया है, अभिनेताके ही अर्थमें, जिससे नट, नर्तक आदिका भी अर्थ लगाया जा सकता है। मनुस्मृतिका रचनाकाल शुंग-युग (ई० पू० दूसरी सदी) माना जाता है जिससे वह कृति और पतञ्जलिका 'महाभाष्य' पुष्यमित्र शुंगके समकालीन ठहरते हैं। इस महाभाष्यमें दो नाटकों—कंसवध और बलिबन्ध—का उल्लेख हुआ है। साथ ही भाष्यकारने अभिनेताओंके वर्ण-लेपन और तीन प्रकारके अभिनेताओंका उल्लेख किया है। रामायण और महाभारतके स्पष्ट संकेत भी उस दिशामें हुए हैं। रामायणने तो 'नाटक' शब्दका ही प्रयोग किया है और महाभारत (३, ३०, २३) काष्ठमयी नारीनायकका उल्लेख करता है। हरिवंशमें तो कृष्णके वंशधरों द्वारा नाटक खेले जानेका स्पष्ट वर्णन मिलता है।

यह प्रसंग हमें भारतीय (संस्कृत) नाटकके मूलके सम्बन्धमें भी विचार करनेको बाध्य करता है, विशेषकर इस कारण कि देशी-विदेशी विद्वानोंमें इस दिशामें पर्याप्त चर्चा हुई है। कुछ लोगोंने नाटकका आरम्भ विष्णु-पूजाके आधारसे माना है, कुछने पुतलियोंके नाचसे। कुछ उसका

मूल वेदोंमें देखते हैं, कुछ सर्वथा ग्रीक रंग-व्यवस्थामें। ऐसे भी विद्वान् हैं जो नाटकका आरम्भ मृत पूर्वजोंकी पूजा और छाया-नाटकोंसे सम्बन्धित मानते हैं। ये सारे दृष्टिकोण समान महत्त्वके नहीं हैं। सही है कि छाया नाटकका प्रभाव असाधारण रहा है और भारतसे चीन तक, तिब्बतसे हिंदेशिया तक वह प्रचलित रहा है, अनेकांशमें आज भी है। पर प्रकट है कि उसे नाटकका आरम्भ नहीं माना जा सकता क्योंकि वह स्वयं एक प्रकारका नाटक है और उसे मूल मानकर फिर उसके मूलकी भी खोज करनी होगी। इसमें और दृष्टिकोण तो गौण हैं और उनका संकेत वस्तुतः नाटकीय परम्पराके विकासमें उनके सहायक होनेकी ओर है, नाटकका मूल होनेकी ओर कदापि नहीं। विचारणीय दृष्टिकोण केवल दो हैं—ग्रीक रंग-व्यवस्था और पुतलियोंका नाच।

संस्कृतके नाटकोंका आरम्भ, अन्त, रंग-निर्देश, यवनिका, विदूषक, प्रतिनायक आदिका प्रयोग और सीतावेंगा गुफाके ग्रीक मंचानुकृतिके आधारपर ग्रीक नाटक-शैलीके प्रति उनका ऋणी होना कहा जाता है। निश्चय विचार आधारहीन है, ऐसा नहीं कहा जा सकता, पर इस दृष्टिकोणको लेकर काफी हठधर्मीका परिचय दिया गया है। विदेशी पण्डितोंने इस दिशामें तर्कसे कम और ज़िद्दसे अधिक काम लिया है। इसके विपरीत भारतीय पण्डितोंने भी हठका आचरण किया है जो भारतीय नाटकों पर किसी प्रकारका विदेशी प्रभाव नहीं मानते। पर जैसे आज भी हमारे साहित्य और रंगमंचको संसारके साहित्य और रंगमंच प्रभावित कर रहे हैं वैसे ही सम्बन्ध होने पर एकको सदा दूसरेका लाभ हुआ है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। सही तो यह है कि भारतीय नाटकों और ग्रीक नाटकोंमें अन्तर अधिक हैं, समानता कम। 'देश-कालकी एकता'में, रंगमंचके रूप-विधानमें, नाटकोंके 'कामिक' और 'ट्रैजिक' रूपमें इतना अन्तर है कि संस्कृतके नाटकोंका उद्गम ग्रीक नाटकोंको बताना सर्वथा अनुचित होगा। यह भी सही है कि सन्त क्रिसोस्तमने सन् ११७ ई०

पुत्तलिकाका वर्णन किया है। इतना फिर भी है कि केवल इसीके आधार पर नाटकका आरम्भ मानना भी उचित नही होगा। इससे इतना निश्चय सिद्ध हो जाता है कि नाटकके प्राय: सभी प्रारम्भिक साधन पुतलीके नाचने प्रस्तुत कर दिये थे। उसे ऋग्वेदके संवादात्मक अनेक स्थलोंसे विशेष सहायता मिली होगी। यम-यमी, सरमा-पणियाँ, पुरुरवा-उर्वशी, शची-वृषाकपि आदिके अनेक स्थल उस वेदमें है जो प्रौढ 'डायलाग'का कार्य कर सकते थे। साथ ही इन्हें अनेक प्रकारकी लीलाओं, विष्णुकृत आदिसे भी सहायता मिली होगी। रंगमच खड़ा हो गया।

२

संस्कृत नाटकका स्वरूप

संस्कृतके नाटकको भी काव्यका अंग माना गया है। काव्यके दो भेद है—श्रव्य और दृश्य। श्रव्य काव्य केवल कर्णसुखद होता है, दृश्यकाव्य नाटक है जिससे कानो और नेत्रो दोनोंको सुख होता है। उमीसे उसकी विशिष्टता भी घोषित की गई है—काव्येषु नाटकं रम्यम्।

सगीत, नर्तन, गायन और वादन तीनोंके समाहारको कहते है। पर सगीतके साथ अभिनयका सबंध कर नाटक अथवा दृश्य-काव्यने दर्शकोंको मुग्ध कर लिया। इसकी सर्वग्राहिताको ही लक्ष्य कर भरत मुनिने नाट्य-शास्त्रमें कहा है कि ऐसा कोई ज्ञान नही, शिल्प, विद्या, कला नहीं, योग और कर्म नही जो नाटकमे न हो।

> न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
> न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते ॥१,११४॥

सस्कृतके नाटकोंमें सबसे अधिक जोर रसबोध और रसात्मकता पर दिया गया है। नाट्य नियमों-उपनियमोंमें वे पर्याप्त बंधे रहे

है। उनका दुःखान्त होना अनुचित माना गया है। जन-कल्याण उनका इष्ट है इससे सावधि दुःखमय यथार्थसे दूर हट वे देखनेवालोंका कल्पित सुखी संसारसे साक्षात् कराते हैं। यथार्थ संभवतः कष्टकर है जिसका यथास्थित रूप देखनेवालोंमें केवल अवसाद और मायूसी पैदा करेगा। इससे उस आदर्श 'यूटोपियन' संसारको ही रूपायित करना उन्हें इष्ट है जिसे देखकर मनको ढाढ़स बँधे। इसीसे शुद्ध ग्रीक नाटकोंके रूपमें भारतीय नाटक-क्षेत्रमें 'ट्रैजेडी' भी नहीं है। हाँ, 'विप्रलंभ-शृङ्गार' में इतनी करुणा संचित हो जाती है कि स्वतन्त्र 'ट्रैजेडी' की सारी कमी एक साथ पूरी हो जाय। इससे शोकपर्यवसायी न होकर भी उनमें गहरी वेदनाकी अनुभूति रहती है। इस प्रकार 'कामेडी' या सुखपर्यवसायीका शुद्धरूप भी हमारे यहाँ नहीं मिलता। केवल अन्त निश्चय इस प्रकारके नाटकोंका कल्याणकर अथवा सुखद होता है। इससे उनमें युद्ध, रक्तपात, मृत्यु आदि रंगमंचपर नहीं दिखाये जाते। हास्य होता है पर घटिया किस्मका, अधिकतर भोजन सम्बन्धी हास्यकी स्थितियाँ उत्पन्न करके एक ही प्रकारका व्यक्ति—विदूषक जो सदा ब्राह्मण होता है—सारे नाटकोंमें समान रूपसे पेटूपन द्वारा दर्शकोंको हँसानेका प्रयत्न करता है। संस्कृतका केवल एक नाटक—मृच्छकटिक—सही दृष्टिसे 'कामेडी' कहा जा सकता है। वैसे संस्कृत नाटकका परिहास असफल है।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, नाटकका प्रत्येक अंग नियमों द्वारा बाँध दिया गया है जिनका उल्लंघन नहीं किया जा सकता। नायक, उपनायक, विदूषक, नायिका आदि सबका स्वरूप निश्चित होता है। कौन किस प्रकारकी भाषाका प्रयोग करेगा, किस वर्गका व्यक्ति कौन-सी 'भूमिका' कर सकता है—सब कुछ पहलेसे स्थिर किया जा चुका है। नारी, शूद्र, विदूषक आदि सदा प्राकृतका प्रयोग करते हैं। यह भी अधिकतर निश्चित होता है कि कौन किस प्राकृतका प्रयोग करे। उच्चकोटिकी ललनाएँ ललितपदीय महाराष्ट्री प्राकृत बोलती हैं। साधारणतः वे, बच्चे और

संस्कृतमें नाटकका शास्त्रीय नाम 'रूपक' है, नाटक तो रूपकके ही एक भेदका नाम है। साधारणतः उसके दो प्रधान भेद हैं, मुख्य (रूपक) और गौण (उपरूपक), और इनके शास्त्रकारके अनुसार भिन्न-भिन्न उपभेद हैं। अपने 'साहित्यदर्पण' में विश्वनाथने रूपकके दस और उपरूपकके अठारह भेद गिनाये हैं, जो इस प्रकार हैं—

रूपक—१–नाटक (जैसे कालिदासका अभिज्ञानशाकुन्तल), २–प्रकरण (भवभूतिका मालतीमाधव), ३–भाण (वत्सराजका कर्पूरचरित), ४–व्यायोग (भासका मध्यमव्यायोग), ५–समवकार (वत्सराजका समुद्रमथन), ६–डिम (वत्सराजका त्रिपुरदाह), ७–ईहामृग (वत्सराजका रुक्मिणीहरण), ८–अंक अथवा उत्सृष्टिकांक (शर्मिष्ठा-ययाति), ९–वीथी (मालविका), और १०–प्रहसन (महेन्द्रविक्रमवर्मनका मत्तविलास)।

उपरूपक—१–नाटिका (श्रीहर्षकी रत्नावली), २–त्रोटक (कालिदासकी विक्रमोर्वशीय), ३–गोष्ठी (रैवतमदनिका), ४–सट्टक (राजशेखरकी कर्पूरमंजरी), ५–नाट्यरासक (विलासवती), ६–प्रस्थान (शृंगारतिलक), ७–उल्लाप्य (देवीमहादेव), ८–काव्य (यादवोदय), ९–प्रेंखण (वालिवध), १०–रासक (मेनकाहित), ११–संलापक (मायाकापालिक), १२–श्रीगदित (क्रीडारसातल), १३–शिल्पक (कनकवतीमाधव), १४–विलासिका (उदाहरण अनुपलब्ध), १५–दुर्मल्लिका (बिन्दुमती), १६–प्रकरणिका (उदाहरण अनुपलब्ध), १७–हल्लीश (केलिरैवतक), और १८–भणिका (कामदत्ता)। (जिन कृतियोंके रचयिताओंके नाम कोष्ठकोंमें दिये हुए हैं वे प्रकाशित और उपलब्ध हैं, जिनके नाट्यकारके नाम नहीं दिये हुए हैं वे कृतियाँ आज उपलब्ध नहीं। जिन उपरूपकोंके उदाहरण नहीं दिये गये हैं उनके उदाहरण विश्वनाथने भी नहीं दिये।)

रूपक है। उल्लाप्यमें एक या तीन अंक होते हैं। इसमें एक दिव्य उदात्त नायक और चार नायिकाएँ रहती हैं। काव्य एक अंकका हास्यप्रधान उपरूपक है। इसमें स्त्री ही नायकका कार्य करती है। प्रेंखण सूत्रधार रहित हीन नायक युक्त एकांकी है। रासक मूर्ख नायक युक्त एकांकी है। संलापक तीन-चार अंकोंका होता है। उसका नायक पाखण्डी होता है। श्रीगदित प्रसिद्ध संविधानक वाला एकांकी है। नायक उसका उदात्त होता है। शिल्पकका नायक ब्राह्मण होता है। अंक उसमें चार होते हैं, रस शान्त और हास्य नहीं होते। विलासिका शृङ्गार प्रधान एकांकी है। इसमें नायिका नहीं होती, जिससे इसकी संज्ञा 'विनायिका' भी है। नायक इसका हीन होता है। दुर्मल्लिकाका नायक भी हीन होता है। इसमें अंक चार होते हैं। प्रकरणिका या प्रकरणीका नायक सार्थवाह और नायिका भी सदृश कुलकी होती है। अंक इसमें भी चार होते हैं। हल्लीश एकांकी उपरूपक है। इसमें सात-आठ या दस स्त्री पात्र होते हैं। भाणिका भी एकांकी है। उसकी नायिका उदात्त होती है।

३

नाट्यकार और उनके नाटक

संस्कृतके नाटककारों और उनकी कृतियोंकी समीक्षा तो यहाँ संभव नहीं पर उनमेंसे प्रधानका संक्षिप्त परिचय दे देना शायद उपादेय होगा। यहाँ हम केवल तेरह-चौदह नाटककारों और उनकी रचनाओंका उल्लेख करेंगे। वे हैं, अश्वघोष, भास, शूद्रक, कालिदास, विशाखदत्त, हर्ष, महेन्द्रविक्रम, भवभूति, भट्टनारायण, मुरारि, राजशेखर, क्षेमीश्वर, दामोदरमिश्र और कृष्णमिश्र।

यदि भासका समय निश्चय पूर्वक पहली सदी ईसवीके बाद रखना

यहाँ इन भेदोंकी संक्षिप्त व्याख्या कर देना उचित होगा। नाटकमें पाँचसे दस तक अक होते है और इसका कथा-प्रबन्ध (सविधानक) कोई इतिहास-प्रसिद्ध कथानक रहता है। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, इसमें पाँच सधियाँ होती हैं, जिनकी प्रधान कथाका उन्नयन सहायक कथाएं करते हैं। इसका नायक धीरोदात्त विख्यात पराक्रमी राजर्षि होता है, कभी-कभी दिव्य भी। इसका प्रधान रस वीर या शृगारका होता है। दस अकोके नाटकको 'महानाटक' कहते हैं, जैसे 'हनुमन्नाटक'। प्रकरणका कथानक लौकिक होता है। कल्पित नायकका प्रख्यात होना आवश्यक नही। अक संख्याका बन्धन नही है पर प्रायः प्रकरणमें दस अक तक होते है। भाण एक ही अंकमें धूर्त-चरित प्रस्तुत करता है। व्यायोगमें भी एक ही अक होता है। समवकारमें अंक तीन होते है और उसका आमुख नाटकका-सा होता है। डिममे चार अक होते हैं और वह व्यायोगकी ही भाँति हास्य-शृङ्गार प्रधान होता है। ईहामृगमें भी चार अक होते है और उसका कथानक दिव्य-लौकिक मिश्रित होता है। अक एकाकी होता है। उसका स्थायी रस करुण है। वीथी भी भाणवत् एकाकी होता है। उसका प्रधान रस शृङ्गार है। प्रहसन भी हास्य प्रधान एकाकी है।

नाटिका स्त्रीपात्र बहुल चार अकोकी होती है। नायक धीर-ललित राजा होता है। त्रोटक पाँचसे नौ अको तकका होता है और उसके प्रत्येक अकमें विदूषकका प्रवेश होता है। गोष्ठी एकाकी होती है जिसमें नौ-दस पुरुष पात्र और पाँच-छः स्त्री पात्र रहते है। सट्टक केवल प्राकृत भाषाका उपरूपक है। उसकी एक विशेषता यह भी है कि उसमे अकके स्थानमें 'जवनिका' होती है। जवनिका प्रमाणतः अंककी ही परिमाण है और इसमें प्रत्येक जवनिका (अक) के बाद पर्दा गिरता है। जवनिका (यवनिका) ग्रीक पर्देकी याद दिलाती है। नाट्यरासक उदात्त नायक और हास्य प्रधान एकाकी है। प्रस्थान नायक-नायिका दास-दासियों वाला दो अकोका उप

रूपक है। उल्लाप्यमें एक या तीन अंक होते हैं। इसमें एक दिव्य उदात्त नायक और चार नायिकाएँ रहती हैं। काव्य एक अंकका हास्यप्रधान उपरूपक है। इसमें स्त्री ही नायकका कार्य करती है। प्रेंखण सूत्रधार रहित हीन नायक युक्त एकांकी है। रासक मूर्ख नायक युक्त एकांकी है। संलापक तीन-चार अंकोंका होता है। उसका नायक पाखण्डी होता है। श्रीगदित प्रसिद्ध सविधानक वाला एकांकी है। नायक उसका उदात्त होता है। शिल्पकका नायक ब्राह्मण होता है। अंक उसमें चार होते हैं, रस शान्त और हास्य नहीं होते। विलासिका शृङ्गार प्रधान एकांकी है। इसमें नायिका नहीं होती, जिससे इसकी संज्ञा 'विनायिका' भी है। नायक इसका हीन होता है। दुर्मल्लिकाका नायक भी हीन होता है। इसमें अंक चार होते हैं। प्रकरणिका या प्रकरणीका नायक सार्थवाह और नायिका भी सदृश कुलकी होती है। अंक इसमें भी चार होते हैं। हल्लीश एकांकी उपरूपक है। इसमें सात-आठ या दस स्त्री पात्र होते हैं। भाणिका भी एकांकी है। उसकी नायिका उदात्त होती है।

३

नाट्यकार और उनके नाटक

संस्कृतके नाटककारों और उनकी कृतियोंकी समीक्षा तो यहाँ सम्भव नहीं पर उनमेंसे प्रधानका संक्षिप्त परिचय दे देना शायद उपादेय होगा। यहाँ हम केवल तेरह-चौदह नाटककारों और उनकी रचनाओंका उल्लेख करेंगे। वे हैं, अश्वघोष, भास, शूद्रक, कालिदास, विशाखदत्त, हर्ष, महेन्द्र-विक्रम, भवभूति, भट्टनारायण, मुरारि, राजशेखर, क्षेमीश्वर, दामोदरमिश्र और कृष्णमिश्र।

यदि भासका समय निश्चय पूर्वक पहली सदी ईसवीके बाद रक्खा

जा सके तो सस्कृतका पहला जाना हुआ नाट्यकार बौद्ध महाकवि और दार्शनिक अश्वघोष था। वह अभी तक केवल दार्शनिक और काव्यकारके रूपमे जाना जाता था। पर कुछ साल हुए जब सर आरेल स्टाइनने मध्य-एशियामे तुर्फानकी रेतसे उसकी रचना 'सारिपुत्र प्रकरण' खोद निकाली तबसे उसकी ख्याति नाट्यकारके रूपमे भी हुई। यह प्रकरण सारिपुत्र और मौद्गलायनके बौद्धधर्ममे दीक्षित होनेका प्रसग नौ अंकोंमें प्रस्तुत करता है। अभाग्यवश इसके अन्तिम अश ही प्राप्त हो सके। यह ताडपत्रों पर लिखा है और साधारणत. अन्य कृतियोंके विपरीत इसपर रचयिताका नाम भी लिखा था जिसे लूडर्सने पढा। यह प्रकरण रचना-कौशलकी दृष्टिसे पर्याप्त प्रौढ है। अश्वघोषके काव्य 'बुद्धचरित,' 'सौन्दरनन्द' और गाथा-ग्रन्थ 'सूत्रालकार' प्रसिद्ध है।

अश्वघोष ब्राह्मण था जो बौद्ध हो गया था। उसकी माताका नाम सुवर्णाक्षी था। वह कुषाणराज कनिष्कका समकालीन था। कहते है कि कनिष्कने पाटलिपुत्र (पटना) पर धावा कर उसका बलपूर्वक हरण कर लिया और उसे कश्मीर-पुरुषपुर ले गया। कश्मीरमें पहली सदी ईसवीमे होनेवाली बौद्ध सगीतिमे उसने भी भाग लिया। उसका स्वर बडा मधुर था। काव्य और नाटक दोनों रूपमे वह सम्भवत. कालिदासका प्रेरक था।

भास सस्कृतके प्रख्यात नाटककारोंमे गिना जाता है। कालिदास सौमिल्ल और कविपुत्रके साथ उसे भी अपने मालविकाग्निमित्रमें 'प्रथित-यशस्' कहकर सराहा है। अलकारशास्त्रो और सुभाषितोंमें भी बार-बार उसका उल्लेख हुआ है पर अभी हाल तक उसकी कोई रचना उपलब्ध न थी। एकाएक सन् १९१२ ई० मे महामहोपाध्याय गणपति शास्त्रीने हमें तेरह नाटकोंका सग्रह लगा जिसे उन्होंने भासके नामसे प्रकाशित किया। बस भास सस्कृत साहित्यके जिज्ञासुओंके लिए उलझी समस्या बन गया। कारण कि कुछ विद्वानोंने तो उन नाटकोंको सर्वथा भासका मान लिया,

कुछने उन्हें उनका माननेसे सर्वथा इनकार कर दिया। कुछ ऐसे भी हैं जो उन्हें भासका ही मानते हैं पर सम्पादित और संरक्षित रूपमें। जो भी हो, दो बातें इस सम्बन्धमें सही जान पड़ती हैं—एक तो यह कि उनका रचयिता एक ही जन है, दूसरी यह कि वे नाटक कालिदासके नाटकोंसे प्राचीन हैं।

भासके नाटक सुललित वैदर्भी शैलीमें लिखे हुए हैं और सरल होते हुए भी उनमें अद्भुत गति और शक्ति है। उनकी नाटकीयता इतना साहित्यिक टेकनीककी परवाह नहीं करती। इन तेरहोंके नाम ये हैं—१–प्रतिमा, २–अभिषेक, ३–मध्यम-व्यायोग, ४–दूत-घटोत्कच, ५–कर्ण-भार, ६–ऊरुभंग, ७–दूतवाक्य, ८–पंचरात्र, ९–बालचरित, १०–स्वप्न-वासवदत्ता, ११–प्रतिज्ञायौगन्धरायण, १२–चारुदत्त, १३–अविमारक।

इन नाटकोंकी कथावस्तु रामायण, महाभारत, हरिवंश और पुराणों तथा गुणाढ्यकी बृहत्कथासे ली गई है। इस प्रकार ये तीन वर्गके हैं। पहले दो रामायण-वर्गके हैं, अगले सात महाभारत, हरिवंश और पुराण-वर्गके और शेष चार बृहत्कथा-वर्गके। इनकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है—प्रतिमा सात अंकोंमें लिखा नाटक है। उसका कथानक दशरथकी मृत्युसे शुरू होकर रामके वनसे लौटने पर समाप्त होता है। अभिषेक भी ६ अंकोंका नाटक ही है जिसका विषय रामका राज्याभिषेक है।

मध्यम-व्यायोग एकांकी व्यायोग है जो चरित्र-चित्रणके लिए पर्याप्त सराहा गया है। उसमें मध्य पाण्डव (भीम) के प्रति हिडिम्बाका प्रेम निरूपित हुआ है। दूत-घटोत्कच भी एकांकी व्यायोग ही है। उसमें अभिमन्यु वधके बाद घटोत्कच दूत बनकर कौरवोंको बताता है कि अर्जुन उनके दण्डके लिए उद्यत है। व्यायोग कर्णभारमें इन्द्र द्वारा कर्णके कवच और कुण्डल चुरानेकी घटना है। ऊरुभंग एकांकी अंक है जिसमें भीम और दुर्योधनका गदायुद्ध और दुर्योधनकी जाँघका तोड़ा जाना अंकित है। दूत-

वायय भी व्यायोग है। उसमे कृष्ण पाण्डवोंका दूत बनकर दुर्योधनके पास जाते है। वह उन्हें भूमि देनेसे इनकार करता और कृष्णको बन्दी बनाने का असफल प्रयत्न करता है। पंचरात्र तीन अंकोंका समवकार है। उसमें द्रोणाचार्य दुर्योधनका यज्ञ कराते और दक्षिणामें पाण्डवोंके लिए आधा राज्य माँगते है। दुर्योधन देनेके लिए इस शर्त पर राजी होता है कि अज्ञातवासी पाण्डव पाँच रातोंके भीतर प्रकट हो जायँ। बालचरितमें कंस-को मारने तककी कृष्णके बालपनकी अनेक कथाएँ हैं। यह पाँच अंकोंमे प्रस्तुत नाटक है और इसकी कथाएँ हरिवंश तथा पुराणोंसे ली गई हैं।

स्वप्नवासवदत्ता ६ अंकोंमें समाप्त नाटक है। कथा उसकी ऐतिहासिक है और गुणाढ्यकी बृहत्कथासे ली गई है। कौशाम्बीके वत्सराज उदयनका विवाह उसका मंत्री यौगन्धरायण राजनीतिक अर्थसाधनके लिए मगधराज दर्शककी भगिनी पद्मावतीसे कराता है। इस अर्थ वह झूठ प्रकाशित कर देता है कि उदयनकी पहली पत्नी वासवदत्ता आगमें जल-कर मर गई है। वस्तुत वह छिपे वेशमे उसे पद्मावतीके पास ही रख देता है। नाटकीयता और चरित्रचित्रणकी दृष्टिसे स्वप्नवासवदत्ता सुन्दर कृति है और भासकी रचनाओंमे सर्वश्रेष्ठ। प्रतिज्ञायौगन्धरायण भी नाटक ही है। उसकी कथा स्वप्नवासवदत्ताकी कथासे पहले की है। उसमे उदयन कृत्रिम गजके धोखेसे पकडकर उज्जैनी ले जाया जाता है पर यौगन्धरायणकी बुद्धिसे अवन्तीके राजा चण्डप्रद्योत महासेनकी कन्या वासव-दत्ताको लेकर वत्स भाग आता है। यौगन्धरायण द्वारा उदयनकी मानसे की हुई राजाको बन्धमुक्त कराने वाली प्रतिज्ञा पूरी होती है। हाथीपर उदयन और वासवदत्ताका भागना शुंगकाल (दूसरी सदी ईसवी पूर्व) के मिट्टीके एक ठीकरेपर अंकित है, जो कौशाम्बीमे मिला है। चारुदत्त चार अंकोमे प्राप्त असमाप्त प्रकरण है जिसमें ब्राह्मण चारुदत्त और वारागना वसन्तसेनाका प्रेम निरूपित है। शूद्रकका मृच्छकटिक इसी

प्रकरणपर आधारित है। अविमारक ६ अंकोंका नाटक है। उसमें राजकुमारी कुरंगी और राजकुमार विष्णुसेन (अविमारक) का प्रेम और प्रयोग अंकित है। पिछली चारों कृतियोंकी कथाएँ कथासरित्सागरमें मिलती हैं।

भास कौन था, कहाँका रहने वाला था, कब हुआ—यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। वैदर्भी शैली प्रयोग करनेके कारण उसे कुछ लोगोंने मालवा, कुछने दक्षिणका रहने वाला माना है। साधारणतः उसे कालिदासका पूर्ववर्ती तीसरी सदी ईसवीका माना जाता है, पर वह और पूर्वका भी हो सकता है।

शूद्रकका काल निश्चित करना और भी कठिन है यद्यपि उसका उल्लेख संस्कृत साहित्यमें अनेक स्थलोंपर हुआ है। साधारणतः उसे प्रसिद्ध प्रकरण मृच्छकटिकका रचयिता मानते हैं। कुछ लोगोंने काव्यादर्शमें उद्धृत एक श्लोकके आधारपर दण्डीको ही इस प्रकरणका नाटककार माना है। पर वह श्लोक चूँकि अब हालके मिले भासकी कृतियाँ चारदत्त और बालचरितमें भी है, स्पष्ट है कि उसका कर्ता कोई और है। मृच्छकटिकका कथानक वही है जो चारदत्तका है। कालिदासने भास आदिका नाम तो लिया है पर शूद्रकका नहीं यद्यपि यह आवश्यक नहीं था कि वे सबका ही नाम लें। पर उनके इस मौनने निश्चय शूद्रकके समयके संबंधमें सन्देह बढ़ा दिया है। ठीक कहा नहीं जा सकता कि शूद्रक कालिदासके पहलेका था या पीछेका। यदि पहिलेका हो तो उससे थोड़ा ही पहलेका होना चाहिए क्योंकि उसकी कृति भासकी कृतिपर आधारित है। मृच्छकटिकके आरम्भमें उसे राजा और अनेक शास्त्रोंका पण्डित कहा गया है। उसने अश्वमेध किया और एकसौ दस वर्षकी आयुमें पुत्रको राज सौंप चितारोहण किया। उसका नाम कादम्बरी, राजतरंगिणी, कथासरित्सागर और स्कन्द पुराणमें भी मिलता है। कुछ हस्तलिपियोंमें उसे शालिवाहनका मन्त्री कहा गया है जिसने उसे पीछे

प्रतिष्ठानका राजा बना दिया। इन बातोंसे उसे आभीरराज शिवदत्त मानते हैं। डा० कोनोवकी समझमें उसीके पुत्र ईश्वरसेनने आभीरोंका राज कर २४८–४९ ई० का चेदि संवत् चलाया। प्रकरण दस अंकोंमें अद्भुत मनोरंजकताके साथ चारुदत्त और वसन्तसेनाका प्रेम प्रकाशित करता है। इस प्रकरणने अनेक नाट्यशास्त्रीय मर्यादाओंको तोड़ दिया है। यह हास्यरस प्रधान है और उस दृष्टिसे भारतीय नाटकोंमें थोड़े 'कामेडी'के निदर्शन हैं। इसमें समकालीन समाजका अच्छा स्थापन हुआ है।

कालिदासका समय पाँचवीं सदी ईसवी है। उस महाकविकी रचनाओंका सविस्तर उल्लेख पृथक् करेंगे। इससे उसके परवर्ती नाटकोंकी चर्चा यहाँ समीचीन होगी। उसके बादके नाटककारोंमें प्रधान हैं विशाखदत्त, हर्ष, महेन्द्रविक्रम, भवभूति, कृष्ण मिश्र। पहले विशाखदत्त।

विशाखदत्तका काल कुछ लोगोंने उसकी रचना 'मुद्राराक्षस' में उल्लिखित चन्द्रग्रहण (१,६) के आधारपर दिसम्बर २,८६ ई० माना है, जब वह ग्रहण लगा था। परन्तु पाटलिपुत्रके वर्णन, बौद्धोंके प्रति निर्देश और नान्दी श्लोक, प्रयुक्त श्लेष (पृथ्वीकी वराह द्वारा रक्षा—उदयगिरिकी गुफामें चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके अभिलेखके साथ ही पृथ्वीकी रक्षा करते वराहकी मूर्ति उत्कीर्ण है—चन्द्रगुप्त भी कहींसे मालवाका उद्धार कर वहाँ गया था) आदिसे वह चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्यके काफी निकटवर्ती ही जान पड़ता है। नाटककी भूमिकामें उसे वटेश्वरदत्तका पौत्र और महाराज पृथुका पुत्र कहा गया है। कुछ आश्चर्य नहीं जो वह चन्द्रगुप्तका कोई सामन्त राजा रहा हो। जो भी हो, प्रस्तुत सामग्रीसे उसका समय निश्चित रूपसे नहीं स्थापित किया जा सकता। उसका मुद्राराक्षस सात अंकोंमें समाप्त नाटक है। कथावस्तु उसकी राजनीतिक है। स्पष्ट है कि नाटककार कूटनीतिका आचार्य था। इस प्रकारकी रचनाओंमें मुद्राराक्षस संसारके साहित्यमें बेजोड़ है। उसकी घटनाओंका पहलेसे

उटकल नहीं लगाया जा सकता। षड्यंत्र और कूटनीति जैसे कृतिकारकी उँगलियोंपर नाचते हैं। षड्यन्त्रके दाँव-पेंच नन्दोंके मन्त्री राक्षस और चन्द्रगुप्त मौर्यके मंत्री और अर्थशास्त्रके रचयिता चाणक्यके बीच चलते हैं। अन्तमें नन्दोंका विध्वंस कर चाणक्य राक्षसको चन्द्रगुप्तके प्रति अनुरक्त कर लेता है। कालिदास और भवभूतिकी शैली और शालीनता तो विशाखदत्तमें नहीं है पर उसीकी मेधा थी जिसने संस्कृतको इतना अद्भुत राजनीतिक नाटक प्रदान किया।

हर्ष (६०६ ई०–६४७ ई०) थानेश्वर और कन्नौजका राजा था। नागानन्द, रत्नावली और प्रियदर्शिका उसीकी कृतियाँ मानी जाती हैं। बाणभट्टने उसका 'हर्षचरित' नामसे चरित लिखा है। कुछ लोगोंका तो विश्वास है कि हर्ष नामसे प्रसिद्ध नाटकोंका रचयिता भी बाण ही है। पर बाणकी रचनाओं—हर्षचरित और कादम्बरी—और इनकी शैलीमें असाधारण विरोध है। रचनाएँ हर्षकी ही हैं। हर्ष समुद्रगुप्त और भोजकेसे विद्याव्यसनी राजाओंके वर्गका था। वह बौद्ध था और पाँच अङ्कोंमें समाप्त उसका नाटक नागानन्द विद्याधरोंके राजा जीमूतवाहनका सर्पके स्थानपर गरुडके प्रति आत्मबलिदान निरूपित करता है। रत्नावली चार अङ्ककी नाटिका है जिसमें वत्सराज उदयन और सिंहलकी राजदुहिता रत्नावलीका प्रेम स्थापित है। प्रियदर्शिका भी चार अङ्कोंकी नाटिका ही है। उसका कथानक भी उदयनसे सम्बन्ध रखता है। उसमें राजा दृढवर्मन्की कन्या प्रियदर्शिका और उदयनका प्रेम सम्बन्ध निरूपित हुआ है। रत्नावली और प्रियदर्शिका दोनोंपर कालिदासके मालविकाग्निमित्रका प्रभाव स्पष्ट लक्षित है।

सातवीं सदीके पहले चरणमें महेन्द्रविक्रम वर्मानि अपना प्रसिद्ध प्रहसन 'मत्तविलास' लिखा। वह काँची नरेश सिंहविष्णुवर्माका पुत्र और स्वयं पल्लव नृपति था। 'मत्तविलास' उसका विरुद भी था। उसका प्रहसन प्रहसनोंमें सबसे प्राचीन है। उसके कुछ पात्र संस्कृत भी बोलते हैं

और उसमे कापालिक, पाशुपत, बौद्ध भिक्षुओं आदिकी अच्छी हँसी उड़ाई गई है।

भवभूतिका नाम सस्कृत साहित्यमे बडे आदरसे लिया जाता है। नाटक के क्षेत्रमे उसका स्थान कालिदासके बाद ही है। कुछ लोगोने तो भावों और वर्णनकी शालीनतामे उसे कालिदाससे भी बढकर माना है। कल्हणने अपनी राजतरगिणीमे उसे कन्नौजके राजा यशोवर्मन्‌का सभा-कवि माना है। यशोवर्मन् ७३६ ई० के लगभग हुआ। गौड़वहोके रचयिता वाक्‌पतिराज ने भी भवभूतिका उल्लेख किया है। मालतीमाधवके एक श्लोकसे लगता है कि अपने जीवनकालमें उसे आदर नही मिला और उसने अपने समकालीनोको चुनौती दी कि 'मेरा यह प्रयत्न तुम्हारे लिए नही, उन समानधर्मा मनीषियोके लिए है जो भविष्यमे जन्मेंगे, क्योकि काल और पृथ्वीकी कोई सीमा नही। भवभूतिकी आशा फली और आनेवाले संसारने उसकी कृतियोको सराहा। उसकी भाषा और शैली बडी प्रौढ और शक्तिमती है, चरित्रचित्रण उसका अपूर्व है। करुणरसका विशेष उद्घाटयिता होता हुआ भी उसने वीर और अद्‌भुत रसोंके प्रवाहमे अपने महान् पूर्ववर्तियोंको नगण्य कर दिया। उसकी रीति गौडी है। सस्कृत साहित्यमे उसकी रचनाएँ अमर है।

उसकी तीन रचनाएँ है—महावीरचरित, उत्तररामचरित और मालतीमाधव। इनमेसे पहली दो सात-सात अकोंके नाटक है और तीसरी रचना मालतीमाधव दस अकोंका प्रकरण है। महावीरचरित सम्भवत उसने सबसे पहले लिखा। इसका कथानक रामायणसे लिया गया है और रामका वीर चरित प्रस्तुत करता है। इसमे कविने अनेक नई भावनाओंका सृजन किया है। उत्तररामचरित उसकी कृतियोंमें सर्वश्रेष्ठ है और संस्कृत साहित्यके अमर रत्नोमें गिना जाता है। इसमे रामके सीतात्याग और अन्तमे दोनोके मिलनकी कथा बड़े करुण और शालीन रीतिसे रूपायित

हुई है। मालतीमाधव भवभूतिकी सबसे पीछेकी रचना है। उसमें मालती और माधवकी प्रेम-कथा है।

भट्टनारायण सम्भवतः आठवीं सदी ईसवीका है। उसका ६ अंकोंका नाटक 'वेणीसंहार' महाभारतकी कथापर आश्रित है। भीम उसमें दुःशासनको मारकर द्रौपदीकी वेणी बाँधता है। निरूपण और नाट्य टेक्नीकमें पिछले नाट्यकारोंमें भट्टनारायण अद्वितीय है। वीररस प्रकट करनेमें वह विशेष समर्थ है। उसकी कृतिके पहले तीन अंकोंमें बड़ी गतिशीलता है, उत्साह उनका प्रधान भाव है।

मुरारिने अपने सात अंकोंके नाटक अनर्घराघवमें रामकी उत्तरकथा फिर निरूपित की पर भवभूतिकी ऊँचाइयाँ औरोंकी ही भाँति उससे भी परे रह गईं। वह नवीं सदीके आरम्भमें हुआ।

राजशेखर कन्नौजके राजा महेन्द्रपाल (८९३–९०७ ई०) का गुरु और सभाश्रयी था। उसकी 'काव्यमीमांसा' आज भी आलोचना शास्त्रकी 'टेक्स्ट-बुक' बनी हुई है। उसने दो नाटक 'बालरामायण' और 'बालभारत' लिखे, एक सट्टक कर्पूरमंजरी और एक नाटिका विद्धशालभंजिका। इनमें पहला दस अंकोंमें प्रस्तुत रामकथा है। दूसरा, जिसके केवल दो अंक आज उपलब्ध हैं, असमाप्त है। कर्पूरमंजरी चार अंकोंमें प्राकृतमें लिखी है। विद्धशालभंजिका भी चार अंकोंमें है। राजशेखरकी शैली बोझिल और कृत्रिम है।

क्षेमीश्वर दसवीं सदीके आरम्भमें हुआ। उसने कन्नौजके राजा महीपालके लिए पाँच अंकोंमें अपना चण्डकौशिक नामका नाटक लिखा। कथानक सत्य-हरिश्चन्द्र और ऋषि विश्वामित्रकी प्रसिद्ध कथा है। नाटककारकी शैली कृत्रिम है।

दामोदरमिश्रने अपना हनुमन्नाटक (महानाटक) ग्यारहवीं सदीमें लिखा। उस नाटकके तीन पाठ मिलते हैं। एकमें नौ, दूसरेमें दस और

तीसरेमे चौदह अंक है। कथानक, जैसा नामसे प्रकट है, रामायणसे लिया हुआ है। कवि छन्दकारितामे कुशल है।

कृष्णमिश्र चौदहवी सदीमे हुआ। उसका प्रबोधचन्द्रोदय छः अंकोंमे प्रस्तुत नाटक है। सम्भवत यही एक नाटक संस्कृत साहित्यमे है जिसमें शान्तरसका निर्वाह हुआ है। यह लाक्षणिक रूपक है और इसके पात्र विवेक, मनस्, बुद्धि आदि हैं। शैली इसकी सरल है।

नाटकोंकी यह तालिका प्रमाणतः यहीं समाप्त नहीं होती। पिछले युगमे भी सस्कृतमे नाटक लिखे जाते रहे जो आज भी हमें उपलब्ध हैं, पर कुछ तो स्थानाभावसे कुछ उनकी सामान्यताके कारण हम यहाँ उनको उद्धृत नही कर रहे है। प्रधान नाटक वही हैं जो ऊपर दिये गये हैं।

४

कालिदास

कालिदास सस्कृत साहित्यकी श्री और शालीनता है। उसका यश स्वदेशकी सीमाओंको लाँघकर विश्वव्यापी हुआ। वह महाकवि केवल भारतका नही ससारका है। उसकी भारती पिछले डेढ हजार वर्षोंसे साधारण पाठकों, रसिकों और आलोचकोंको समान रूपसे आह्लादित करती रही है। जैसे उसका काव्य बेजोड़ है वैसे ही उसके नाटक भी अनुपम है। उसकी रचनाएँ अभिज्ञान शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय और मालविकाग्निमित्र (नाटक), और रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत और ऋतुसंहार (काव्य) हैं। कुछ लोग काव्यों और नाटकोंको दो कालिदासोंकी कृतियाँ मानते है, पर निःसन्देह ये काव्य और नाटक दोनो ही एक ही हाथके सँवारे है।

कालिदास कहाँ हुए, कब हुए, सभी सन्दिग्ध है। इसकी महानता और लोकप्रियताका परिणाम यह हुआ कि अनेक पिछले कालके संस्कृत कवियोंने भी 'कालिदास' नाम ग्रहण कर लिये जिससे यह कठिनाई और बढ़ गई है। ८ ८ कालिदासोंके नाम मिलते है। परन्तु कठिनाई चाहे जितनी हो एक बात प्रमाणित होने देर नही लगती, वह यह कि, जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, चारो काव्यों और तीनों नाटकोंके कर्ता एक ही कालिदास है। यह कौन है, कब हुआ, इसकी चर्चा उसकी कृतियोंपर विचार करनेसे पूर्व करेंगे। पहले कालिदासका जन्मस्थान।

इस महाकविकी लोकप्रियताके कारण विविध प्रान्तवासियोंने उसे विभिन्न प्रान्तोंका रहनेवाला बनाया है। बगाल, मालवा और कश्मीर तीनोंको महाकविका जन्मस्थान बनानेका प्रयत्न किया गया है। इसमे बंगालका दावा तो नि सन्देह अकारण है, पर मालवा और कश्मीर दोनोंके प्रति कालिदासने नि सन्देह विशेष आत्मीयता दिखाई है। मेघदूतमे मेघको उत्तर भेजते हुए भी उसने बरबस राह मोड उज्जैनीकी ओर भेज दिया है और महाकाल तथा नगरका विमुग्ध वर्णन किया है। मेघदूतका प्रवासी *यक्ष रहता भी कही उधर ही है, यद्यपि प्रकृत निवासी वह कश्मीरका है।* परन्तु कश्मीरके प्रति कविकी आत्मीयता मालवासे कही अधिक है। कुमार-सम्भवकी सारी कथा और मेघदूतका उत्तर भाग हिमालयसे सम्बन्ध रखते है। विक्रमोर्वशीयके चौथे और अभिज्ञान शाकुन्तलके सातवे अंककी भूमि हिमालयमे ही है। इसी प्रकार रघुवशके पहले, दूसरे और चौथे सर्गोके अनेकाश हिमालयसे ही सम्बन्धित है। उस पर्वतका वर्णन करते कालिदास थकते नही। अधिक सम्भव यही है कि कालिदास कश्मीरमे जन्मे थे और किसी कारण उनको अपनी मातृभूमि छोडनी पडी थी। फिर वह लौट पाये या नही, कहना कठिन है, यद्यपि मेघदूतके कुछ प्रक्षिप्त श्लोको द्वारा उनके स्वदेश लौटनेकी ओर सकेत किया गया है, पर वस्तुत उनके पिछले दिनो-

में उनकी ख्याति इतनी हुई होगी कि आगे और अन्य प्रान्तोंमें फैल गई होगी।

यदि हम कालिदासको चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यका समकालीन और उनकी सभाके रत्नोंमेंसे एक मानें तब मालवामें वर्णित रहनेका प्रश्न संदिग्ध नहीं रह जाता। चन्द्रगुप्त द्वितीयकी दूसरी राजधानी, मालवा और सौराष्ट्र गुजरातके शकोंको निकाल देनेके, उज्जैनी हो गई थी। फिर तो उज्जैनीमें कालिदासका चन्द्रगुप्तकी सभामें रहना स्वाभाविक हो जाता है। लगता है कि इस प्रकार महाकविके दो प्रिय स्थान थे—जन्मके कश्मीर और विशेष निवासके मालवा।

कालिदास आरम्भमें मूर्ख थे और पत्नीके सम्मुख हास्यास्पद होकर अन्यत्र चले गये, फिर कालीके वरदानसे कुशल होकर लौटे और काव्यों और नाटकोंकी रचना की—इस प्रकारकी दन्तकथाएँ और जनश्रुतियाँ विशेष महत्त्व नहीं रखतीं। उनपर विचार करना भी अनावश्यक है।

अब कालिदासका काल। इस विषयपर मैंने अपनी पुस्तक 'इण्डिया इन कालिदास', परिशिष्ट ए में विशेष विस्तारसे विचार किया है। यहाँ हम केवल संक्षेपमें महाकविकी सम्भावित तिथिके प्रमाण प्रस्तुत करेंगे। हम केवल उन प्रमाणोंको लेते हैं जिनका, एकाधको छोड़, कभी उपयोग नहीं किया गया है। ये कालिदासकी चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य और कुमारगुप्तके साथ समकालीनता स्थापित कर लेते हैं। नीचेके दो पहले प्रमाण औरोंने भी प्रयुक्त किये हैं।

गुप्त सम्राटोंके अभिलेखों और कालिदासकी भाषामें अमित समानता है। कई बार तो दोनोंमें समान पद तक व्यवहृत हुए हैं। कुछ विद्वानोंने इस दिशामें पर्याप्त परिश्रम करके एकता प्रतिष्ठित कर दी है। डा० एफ० डब्ल्यू० टामसने उन अनन्त पदोंकी ओर संकेत किया है जो गुप् धातुसे बनते हैं। संभवतः गुप्तोंकी सरक्षताके कारण ये शब्द कविको विशेष

प्रिय हो गये। गुप्तकालीन सामाजिक, धार्मिक, रसात्मक, कलात्मक स्थितिका कवि द्वारा वर्णित दशाने अद्भुत साम्य है। सिक्कोंकी भाषा सम्बन्धी एक समानता इस प्रकार है। गुप्तोंके सिक्कोंके पद—समरशत-वितलविजयो जितरिपुर् अजितो दिवं जयति, राजाधिराजः पृथिवीं वि-जित्वा दिवं जयत्याहृतवाजिमेधः, क्षितिमवजित्य सुचरितैर्दिवं जयति विक्रमादित्य —कविके 'पुरा सप्तद्वीप जयति वसुधामप्रतिरथः' से कितना मिलते हैं? गुप्तोंके सिक्कोंपर बने मयूराश्रयी कार्तिकेय सम्भवत उनके कुलदेवता थे। कालिदासने कुमार और स्कन्दका बार-बार उल्लेख किया है और लगता है, कविने सिक्कोंकी मूर्तिको ही अपने पद 'मयूरपृष्ठाश्रयिणा गुहेन' में उतार दिया है।

कविके ग्रन्थोंका जीवन अत्यन्त शान्त और समृद्ध है। वह समृद्धि कला और साहित्यके नहन् व्यसन, जनताकी सामाजिक और आर्थिक सम्पन्नता उदारशासित राज्यमें ही सम्भव हो सकते थे। गुप्तोंका शासन प्राय उसी ओर सकेत करता है।

गुप्त अभिलेखों और चीनी यात्री फाह्यानके भ्रमण-वृत्तान्तसे प्रमाणित गुप्त सम्राटोंकी धार्मिक सहिष्णुता कालिदासके ग्रन्थोंकी भी प्राण-वायु है। जिन पौराणिक आख्यानों और विश्वासोंका कालिदासने इतना उपयोग किया है उनका अभिग्रथन गुप्तकालमें ही हुआ था। हिन्दू प्रतिमाओंकी प्रचुरता कालिदासके ग्रन्थों और गुप्तकालकी समान विशेषता है। गुप्त युगमें (कुषाण) यक्षों और बुद्धकी प्रतिमाएँ अनन्त हैं। कालिदासके ग्रन्थोंमें यक्षोंके उल्लेख भरे पडे हैं।

कालिदास वात्स्यायनके बाद ही हुआ होगा क्योंकि अपने शृङ्गारिक स्थलोंपर प्राय आँख मीचकर वह वात्स्यायनके काममूत्रोंका उपयोग करता है। परम्पराके अनुसार कालिदासको किसी विक्रमादित्यका सम-कालीन होना चाहिए। तीसरी सदीके बाद और स्कन्दगुप्त (अन्य विक्रमा-

दित्य) के पहले हम केवल एक ही विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीयको जानते हैं, जो ४०० ई० में समासीन है।

कालिदास 'जामित्र' (लग्न) अर्थात् ग्रीक शब्द 'डायामेट्रान्' को जानते हैं। इस प्रकारके शब्दोंका प्रचलन पहली सदी ईसवीमें हुआ था। इनको देशमें जानकारी होनेके लिए कुछ समय लगा होगा।

हूणोंको रघु (रघु० सर्ग ४) उनके ही देश वंक्षुतीरवर्ती वाह्लीक (बल्हीक) में पराजित करता है। ये यहाँ ४२५ ई० के लगभग थे, जब ईरानी नृपति बहरामगोरसे हारनेपर उनके देश और ईरानके बीचकी सीमा वंक्षु नदी बना ली गई थी। मेहरौली स्तंभलेखके अनुसार वाह्लीककी चन्द्रगुप्त द्वितीयने सचमुच ही विजय की। रघुवंश सम्भवतः ४२५ के शीघ्र ही बादमें लिखा गया। कविका शायद वह अन्तिम ग्रन्थ था।

यहाँ कुछ भास्कर्यके प्रमाण भी दिये जाते हैं—

कालिदासने शाकुन्तलमें भरतकी सटी उँगलियों (जालग्रथितांगुलिः करः) का उल्लेख किया है। सटी उँगलियोंवाली प्रतिमाओंकी संख्या नितान्त न्यून है। जो है वे भी केवल गुप्तकालकी हैं। लखनऊ म्यूजियमके गुप्तकालीन मातकुअर बुद्ध के दोनों हाथोंकी उँगलियाँ 'जालग्रथित' हैं। इस प्रकारकी प्रायः ९ और मूर्तियाँ मुझे लखनऊ संग्रहालयमें मिलीं, जो सभी गुप्तकालकी हैं। कला और साहित्यमें समान कालमें समान अभिप्राय (मोटिफ) ही प्रयुक्त होते रहे हैं।

कालिदासने गंगा-यमुनाकी चमरवाहिनी मूर्तियोंका उल्लेख किया है। कलामें इस प्रकारकी चमरधारिणी गंगा-यमुना-मूर्तियोंका आरम्भ पिछले कुषाण-काल (तीसरी सदी ईसवी) और गुप्तकालके आरम्भमें हुआ। मथुरा और लखनऊके संग्रहालयोंमें उस कालकी ऐसी मूर्तियाँ हैं। समुद्रगुप्तके व्याघ्रलांछित सिक्कोंके पीछे गंगाकी मूर्ति उत्कीर्ण है।

प्राक्कुषाण–मूर्तियोंका 'छत्र' पीछे प्रतिमाओंके 'प्रभामंडल'के रूपमे विकसित हुआ। कुषाण-कालमे वह सर्वथा सादा था, अनुत्कीर्ण। बाद, गुप्तकालमे इसकी भूमि अनेक रूपों और रश्मिबाणोंकी रेखाओंसे भर दी गई। इस विशिष्ट 'मोटिफ' का उल्लेख विकासके अनुकूल ही केवल 'प्रभामण्डल'के स्थानपर कविने 'स्फुरत्प्रभामण्डल' शब्दसे किया है। निश्चय प्रभामण्डलमे अब अन्धकारमे कौंधनेवाली प्रकाशरश्मियोंका स्फुरण होने लगा था।

कालिदासने कुमारसम्भवमे शिवकी समाधिका वर्णन किया है जो कुषाण-कालीन वीरासनासीन बुद्ध-प्रतिमाओंसे मिलता है। कुषाणकालीन ये प्रतिमाएँ कविके सामने थी।

इन प्रमाणोंसे सिद्ध हो जायगा कि कालिदास गुप्तकालीन थे। कवि के ग्रंथोंका प्रशान्त जीवन स्कन्दगुप्तके शासन और कुमारगुप्तके अन्तिम दिनोंसे पहले ही समाप्त हो जाता है। तभी पुष्यमित्र और हूणोंकी विपद् साकार हुई थी। इस प्रकार चूँकि पुष्यमित्रोंके साथ युद्ध ४५० ई० मे हुआ, कालिदासके जीवनकी निचली सीमा ४४९ ई० होगी।

परन्तु यदि कविने कुमार और स्कन्दगुप्त दोनोंका प्रच्छन्न रूपसे उल्लेख किया है तब सभव है उसने स्कन्दगुप्तका जन्म देखा हो। कविने बहुत लिखा है और निश्चय उसका रचना-काल पर्याप्त लम्बा रहा होगा। यदि वह अस्सी वर्ष तक जिया तो, अगर हम उसकी मृत्यु ४४५ ई० के लगभग मानें तो, उसका जन्म ३६५ ई० के लगभग ठहरता है। सभव है उसका जन्म समुद्रगुप्तके शासनकालमे हुआ हो और उसने चन्द्रगुप्त द्वितीयका समूचा शासन-काल और कुमारगुप्तके शासनकालका अधिकतर भाग देखा हो। उसने उस दशामे स्कन्दगुप्तका जन्म भी देखा होगा क्योंकि पुष्यमित्रोंको हराते समय ४५० ई०मे स्कन्द कमसे कम २० वर्ष-का अवश्य रहा होगा। यदि कविने अपना रचना-काल अपने पचीसवे वर्ष मे आरम्भ किया तब ऋतुसहारकी रचना ३९० ई०मे शुरू हो गई होगी।

तारानाथने इसके स्थानपर 'वर्णप्रेक्षा' पाठ मानकर इसका अर्थ अभिनेताओंके मुस्ताने या श्रृंगारादि करनेका कमरा (ग्रीन-रूम) किया है।

रंगमंचकी व्यवस्थाका भी कालिदासके नाटकोंसे कुछ पता चलता है। 'नेपथ्यपरिगता'से पर्दाका संकेत मिलता है। तिरस्करिणी शब्दका व्यवहार पर्देके अर्थमें हुआ है। 'मर्तुम्'से एकसे अधिक, और लपेटे जाने वाले, पर्दोका निर्देश स्पष्ट है। **'प्रविशति आसनस्थो राजा'** निर्देश तभी सार्थक होगा जब पर्देके पीछे राजा पहलेसे ही आ बैठता हो और पर्दा उठाने पर **'आसनस्थ'** दिखाया जा सके।

रंगमंचके योग्य विविध वस्त्रोंका भी प्रबन्ध रहता था जो पात्रके अनुसार बदलते रहते थे। परिव्राजिका, अभिसारिका, आखेट, यवनी, मानिनी, विरहिणी, राजा, प्रतीहार आदि सभीके अपने अपने वेश थे और उनके लिए अपने अपने वस्त्र। ऐसे रंगमंचपर कालिदासके नाटक खेले गये।

वे नाटक थे अभिज्ञान शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय और मालविकाग्निमित्र। अभिज्ञान शाकुन्तलकी देशी-विदेशी विद्वानों और रंगमंचके विशेषज्ञोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। गेटे उस नाटकसे सर्वस्व पा गया था। काव्यकी उसमें अद्भुत छटा है, प्रकृतिसे अविकल साहचर्य। भाषाकी सादगी, भावोंकी कोमलता, चित्रणकी अभिरामता, कारुण्यका अकन सभी अपनी पराकाष्ठापर है। सात अंकोंका नाटक है। कथानक महाभारतसे लिया गया है पर महाभारतका लम्पट नायक धर्मामिनका कुशल अधिष्ठाता बन जाता है। इसमें दुष्यन्त और शकुन्तलाको प्रणय-वर्णन है। शकुन्तलाका अपनी साथिनों, लताद्रुमों, मृगादिकोंसे अद्भुत स्नेह है। नाटककी चार प्रकारकी हस्तलिपियां है—६ बँगला, देवनागरी, कश्मीरी और दाक्षिणात्य। बँगला वाली प्रतिमें औरोंसे २०-२५ श्लोक अधिक हैं।

विक्रमोर्वशीय पाँच अंकोंका त्रोटक है। मूल कथा ऋग्वेद (१०, ९५) में है, वैसे महाभारतमें भी मिलती है। पुरूरवा और उर्वशीके प्रेम और

राजशेखर, शारदातनय, सर्वानन्द, सागरनन्दी, रामचन्द्र और गुणचन्द्र, कौमुदीमहोत्सव और शाकुन्तलव्याख्या।

इनमें से कुछ के स्थल यहाँ उद्धृत कर देना अनुचित न होगा—

प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य—

—कालिदास, मालविकाग्निमित्र, अङ्क १।

प्रतिज्ञायौगन्धरायणके 'अनेन मम भ्राता हतो, अनेन मम पिता, अनेन मम गुरो' का काव्यालंकार, ४, ४०-४७ में स्पष्टतर उद्धरण—

हतोऽनेन मम भ्राता मम पुत्रः पिता मम।
मातुलो भागिनेयश्च रुषा संरब्धचेतसः ॥४४॥

—भामह।

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

—हर्षचरित।

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता ॥

—दण्डी, काव्यादर्श, २, २२६ (चारुदत्त, बालचरित)।

'यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्'

—प्रतिज्ञा० से वामन, काव्यालंकार, ५, २।

यासां बलिर्भवति मद्गृहदेहलीनां
हंसैश्च सारसगणैश्च विलुप्तपूर्वः।
तास्वेव पूर्वबलिरूढयवाङ्कुरासु
बीजाञ्जलिः पतति कीटमुखावलीढः ॥

शरच्छशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन भामिनि।
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम ॥

—वही, ४, ३, (स्वप्नवासवदत्तम्)।

भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥
—सूक्तिमुक्तावलीमें उद्धृत राजशेखर ।

भासम्मि जलणमित्ते कन्ती देवे अजस्स रहुआरे ।
सोबन्धवे अबन्धम्मि हारियन्दे अ आणन्दो ॥
—गउडवहो (वैदग्ध्यवर्णनम्) ।

"क्वचित् क्रीडा यथा स्वप्नवासवदत्तायाम्"
—अभिनवभारती, गायकवाड ओ० सी० ।

तत एव विक्रमोर्वशीयस्वप्नवासवदत्ता (त्ते) नाटकमिति व्यवहरन्ति ।
—वही ५, १७ ।

महाकविना भासेनापि स्वप्नप्रबन्ध उक्तः—

त्रेतायुगं तद्धि न मैथिली सा
रामस्य रागपदवी मृदु चास्य चेतः ।
लब्ध्वा जनस्य यदि रावणमस्य काय
प्रोत्कृत्य तन्न तिलशो न वितृप्तिगामी ॥
—वही पृ० ३२० ।

स्वप्नवासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः । पद्मावतीरहितं च तदवनोक्य तस्या एव शयने सुष्वाप । वासवदत्तां च स्वप्नवदस्वप्ने ददर्श । स्वप्नायमानश्च वासवदत्तामाबभाषे । स्वप्नशब्देन चेह स्वापो वः स्वप्नदर्शनं वा स्वप्नायित वा विवक्षितम् ।
—भोजदेव, शृंगारप्रकाश ।

शौनकमिव बन्धुमती कुमारमविमारकं कुरङ्गीव ।
अर्हति कीर्तिमतीयं कान्त कल्याणवर्माणम् ॥
—कौमुदीमहोत्सव, २, १५, ५, ९ ।

चारदत्ते पुनः सूत्रधारस्यापि प्राकृतम्
—शाकुन्तलव्याख्या ।

भासके एक श्लोक—यत्र ग्रामं—का पूर्वार्ध कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें भी मिलता है, पर लगता है कि यह श्लोक दोनोंने अन्यत्रसे, किसी पूर्ववर्ती साहित्यसे लिया है। ऐसा न माननेसे एक विकट प्रश्न यह हो जाता कि भासको एक कौटिल्यके भी पूर्व मान ईसा पूर्व चौथी सदीमें रखना पड़ता जो अब कई विरोधी प्रमाणोंके कारण सम्भव नहीं। उनका समय अश्वघोषके पश्चात् और कालिदासके पूर्व प्रायः दूसरी-तीसरी सदी ईसवीमें होना चाहिए।

भासका नाम संस्कृत साहित्यके प्रेमियों और विद्वानोंमें इतना जाना हुआ होनेके कारण उनकी कृतियोंको पानेकी भूख सभीको थी और जैसे ही महामहोपाध्याय गणपति शास्त्रीने इन तेरह नाटकोंकी सम्प्राप्तिकी सूचना दी, पण्डितोंने झट उन्हें भासकी कृति मानकर स्वीकार कर लिया। पर जैसे ही प्रारम्भिक उत्साह कम हुआ और आलोचनाकी पैनी आँखोंसे नाटक देखे-विचारे जाने लगे वैसे ही शंकाएँ बढ़ीं और झट विद्वानोंमें इस प्रश्नपर परस्परविरोधी दो दल बन गये। एक दल उनका था जो सर्वथा इन कृतियोंको भासकी रचनाएँ मानने लगे, जैसे गणपति शास्त्री, डाक्टर कीथ आदि, दूसरे उनका जिन्होंने उन्हें भासकी रचना माननेमें आपत्ति की, जैसे सिल्वाँ लेवी, विन्टर्निस्, मोर्गेनस्टेर्ने, सुक्थंकर आदि। एक तीसरा वर्ग ऐसे विद्वानोंका भी निकल आया जिसने इन्हें भासकी रचनाएँ आंशिक रूपमें ही माना।

अभाग्यवश इन नाटकोंके प्रवेशकमें अथवा हस्तलिपिके ही किसी भागमें भासका नाम लिखा नहीं मिला जो विशेष अस्वीकृतिका कारण बन गया। इनको भासकी कृति माननेवालोंने साधारणतः नीचे लिखा तर्क प्रस्तुत किया—

(१) इन सभी नाटकोंका आरम्भ 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति' निर्देशसे होता है। इसके विरुद्ध पीछेके "क्लासिकल" नाटकोंमें पहले 'नान्दी' श्लोक होता है फिर 'नान्द्यन्ते' आदि निर्देश। कहते हैं कि भासकी इसी विशि-

इनका उल्लेख—कि उनके नाटक सूत्रधारके प्रवेशसे आरम्भ होते हैं—बाणने अपने इस श्लोकमें किया है—

> सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
> सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

(२) भूमिका भागको सर्वत्र इनमें 'स्थापना' कहा गया है । 'क्लासिकल' नाटकोंमें इसके विरुद्ध भूमिकाके लिए 'प्रस्तावना' शब्दका प्रयोग हुआ है ।

(३) क्लासिकल नाटकोंके विपरीत इनकी 'स्थापना' में नाटक या नाटककारका नाम नहीं मिलता जिससे यह विचार उठा कि शायद ये नाटक क्लासिकल नाटकोंसे पूर्वके हैं ।

(४) भरतवाक्यका सर्वत्र इसी आशीर्वचनसे अन्त होता है कि हमारे नृपति अखिल पृथ्वीपर शासन करें ।

(५) इन नाटकोंमें परस्पर वस्तु-गठनमें समानता है और अनेक प्रारम्भिक श्लोकोंमें मुद्रालंकारके अनुसार प्रधान पात्रोंके नाम गिना दिये गये हैं जो 'क्लासिकल' परिपाटीसे भिन्न शैली है । अधिकतर इनकी वर्णन-शैली भी समान है ।

(६) इनमेंसे कमसे कम एक (स्वप्नवासवदत्ता) कृतिको राजशेखरने भासका माना है । इसमें इस संग्रहकी रचनाएँ भी, जो शैली, रसानुशासन, भाषा, भावादिमें परस्पर समान हैं, उसी कविकी होंगी ।

(७) अनेक अलंकारशास्त्रियोंने अपने ग्रन्थोंमें इन कृतियोंसे उद्धरण दिये हैं, जो इस संग्रहमें हैं । उदाहरणार्थ वामनने स्वप्नवासवदत्ता, प्रतिज्ञायौगन्धरायण और चारुदत्तसे उद्धरण दिये हैं, भामहने भी प्रतिज्ञायौगन्धरायणके स्थलको चुना है, दण्डीने बालचरित्र और चारुदत्तके 'लिम्पतीव' आदिक श्लोकका उल्लेख किया है, इसी प्रकार अभिनवगुप्तने अपनी 'नाट्यवेदवृत्ति' में स्वप्नवासवदत्ताका उल्लेख किया है,

यद्यपि अपने 'ध्वन्यालोकालोचन' में उसने स्वप्नवासवदत्ताके जिस श्लोकका उल्लेख किया है वह प्रस्तुत संग्रहमें नही है। इन प्रमाणोंके अतिरिक्त छन्दोंका प्रयोग भी इनका, क्लासिकलके विपरीत, अपना है। अधिकतर इनमें वीर श्लोकका व्यवहार हुआ है। साथ ही पाणिनीय व्याकरणके अनुबन्धोंकी अवमानना और प्राकृतोंका इनका असाधारण व्यवहार भी इन्हें क्लासिकल नाटकोंसे पूर्वकी कृतियाँ सिद्ध करते हैं। डा० मैक्स लिन्देनोने इस दिशामें काफी प्रकाश डाला है। इनकी प्राचीनता घोषित करते हुए उन्होंने भरतके 'नाट्यशास्त्र' के प्रति इनकी अवमाननाकी ओर भी सकेत किया है।

इन प्रमाणोंके विरुद्ध गणपति शास्त्रीके इस संग्रहकी कृतियोंको भासकी रचना न माननेवाले वर्णन भी अपना पर्याप्त प्रबल तर्क प्रस्तुत किया है, जो इस प्रकार है। उसका कहना है कि नाटकोमें नाम रचयिताका इस कारण नही दिया गया कि इनके लिखनेवाले साहित्यिक चोर थे जिसमे जान-बूझकर उन्होंने नाटककारके नाम नही दिये। सूत्रधार सम्बन्धी वाणके श्लोकके विषयमें उसका कहना है कि वह किसी विशेषताकी ओर सकेत नही करता और उस निर्दोष साधारण कथनसे यह विशेष अर्थ निकालना अनुचित है क्योंकि क्लासिकल नाटकोंको भी 'सूत्रधारकृतारम्भ' कहनेमे किसी प्रकारकी आपत्ति नही हो सकती। वस्तुतः यह रंगानुशासन दाक्षिणात्य पाण्डुलिपियोंकी विशेषता है न कि क्लासिकल नाटकोंसे पूर्वका होनेका प्रमाण।

राम पिशारोटीने पहले वर्गके प्रमाणोके विरुद्ध एक अत्यन्त मनोरजक स्थितिकी ओर सकेत किया। उन्होंने बताया कि ये नाटक केरलके परम्परायिक अभिनेताओंके सकलन हैं। इन अभिनेताओ (चक्यारो) की परम्परा यह है कि ये कभी समूचा नाटक नही खेलते, बल्कि कभी वे एक नाटकसे दृश्य चुन लेते हैं कभी दूसरेसे, और अपने प्रत्येक खेलके लिए उनका समान परिचय होता है। कुछ आश्चर्य नही कि इनकी

प्रस्तावनाएँ बादमें लिखी गईं और प्रधान दृश्य मूलवत् या घटा बढ़ाकर आवश्यकताके अनुकूल कर लिये गये, जिसमें समान रूपसे सम्पादित होनेके कारण उनमें शैली, भाषा, वस्तु-गठन, रंग-निर्देश आदिकी परस्पर समानता बनी रही। अलंकारशास्त्रियोंके उद्धरण भी अनेक बार सर्वथा इन रचनाओंमें या उनके प्रामाणिक स्थलोंमें नहीं मिलते। फिर यह भी सम्भव है कि प्राकृतोंकी शैली कालिक विकाससे इतना सम्बन्ध न रखती हो जितना स्थानीय विभिन्नतासे, जिस कारण वह क्लासिकल नाटकोंकी प्राकृतोंसे भिन्न हो सकती है, कुछ पूर्वकालिक होनेसे नहीं। प्रोफेसर विन्टरनित्स इन कारणोंसे इन रचनाओंको भासका नहीं मानते।

डा० कीथको भास सम्बन्धी यह दृष्टिकोण मान्य नहीं। वे इन नाटकोंको भासकी ही कृतियाँ मानते हैं। उनका कहना है कि इस प्रश्नका इतना महत्त्व नहीं कि वे कृतियाँ भासकी हैं या नहीं? उत्तर इस बातका चाहिए कि ये सारी रचनाएँ एक ही व्यक्तिकी हैं या नहीं? और इसका कि वह व्यक्ति मृच्छकटिक और कालिदासका पूर्ववर्ती है या नहीं? 'मृच्छकटिक' का इसलिए कि शूद्रककी यह कृति भासके 'चारुदत्त'का ही सम्भवतः बृहत्तर संस्करण है। और ये दोनों ही प्रश्न प्रायः अनुकूलार्थमें प्रतिपादित होते हैं। इन नाटकोंको भासके माननेके विरोधी स्वयं मोर्गेन्स्टेर्नेने यह स्वीकार किया है कि 'चारुदत्त' 'मृच्छकटिक' का पूर्ववर्ती है।

इसमें सन्देह नहीं कि स्वयं कालिदासके वक्तव्य—प्रथितयशसा भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां—के अतिरिक्त यूरोपीय पण्डितों—मैक्स लिन्देनो, नोबल आदि—के संस्करण समीक्षणोंसे यह प्रमाणित है कि भास सम्बन्धी इन कृतियोंके प्राकृत अश्वघोष और कालिदासके बीच कालकी हैं और कि 'चारुदत्त' निश्चय 'मृच्छकटिक' से पुराना है (नोबल)।

यह सही है कि कुछ उद्धरण गणपति शास्त्रीवाले संस्करणमें सर्वत्र नहीं मिलता पर आखिर पाठभेद भी तो होते हैं। स्वयं कालिदासकी कृतियोंमें परस्पर संस्करण भेदसे इतने पाठभेद हैं कि अनेक बार तो वर्षों उनपर

प्रसगमे भासका नाम लिया। अस्तु, उपलब्ध 'स्वप्नवासवदत्ता' को ही भासका प्रसिद्ध नाटक मानना चाहिए। हाँ, उसकी सर्वथा मूल स्थितिमे सदियोंके व्यवहारने यदि पाठ भेदकर अन्तर कर डाला हो तो कुछ अजब नहीं, स्वाभाविक ही है।

यह भी जब तब कहा जाता है कि सम्भव है एक ही बड़े नाटकके दोनो प्रतिज्ञायौगन्धरायण और स्वप्नवासवदत्ता, पूर्व और पर भाग हो। सही, प्रतिज्ञायौगन्धरायणमे स्वप्नवासवदत्ताके पहलेकी घटना दी हुई है (उसमे छद्मगजके धोखेसे वत्सराज उदयन अवन्तीनरेश प्रद्योतका बन्दी हो जाता है और मन्त्रिवर यौगन्धरायणके प्रणके अनुकूल प्रद्योत-कन्या वासवदत्ताको कौशाम्बी ले भागता है। स्वप्नवासवदत्तामे उसके बाद मगधराज दर्शककी भगिनी पद्मावतीसे उदयनके विवाहकी कथा है और वह विवाह वासवदत्ताके जल मरनेके भ्रममे सपन्न होता है), पर इसी कारण यह अनिवार्य तर्क नहीं हो सकता कि दोनो कृतियाँ एकके ही योग हो। उदयनकी कथा साहित्यमे इतनी प्रसिद्ध और लोकप्रिय थी कि उस प्रसगको अनेक रचनाएँ जानी हुई है। आजके युगमे भी एक ही साहित्यकारने दो-दो बार उदयनपर लिखा है। स्वय इन पक्तियोके लेखकने अनेक बार वत्सराजके प्रसगपर कहानी, निबन्ध आदि लिखे है। इससे यह माननेमे कोई दोष नहीं कि स्वप्नवासवदत्ता और प्रतिज्ञायौगन्धरायण दोनो स्वतन्त्र कृतियाँ है और दोनो ही महाकवि भासकी है।

भासके ये गणपति शास्त्रीवाले तेरह नाटक निम्नलिखित है—१–स्वप्नवासवदत्ता, २–प्रतिज्ञायौगन्धरायण, ३–अविमारक, ४–चारुदत्त, ५–प्रतिमा, ६–अभिषेक, ७–पचरात्र, ८–दूतवाक्य, ९–मध्यमव्यायोग, १०–दूतघटोत्कच, ११–कर्णभार, १२–ऊरुभग और १३–बालचरित्र।

इनमेसे पहले सातकी कथाएँ सम्भवत 'बृहत्कथा' से ली गई है, यद्यपि प्रतिज्ञायौगन्धरायण और स्वप्नवासवदत्ताकी कथा अत्यन्त लोकप्रिय रही होगी। चारुदत्तकी तो थी ही जिससे छोटे नाटकसे तृप्त न होकर पर-

वर्ती शूद्रकने उसीके आधारपर, उसीके नायक-नायिका पात्र-कथा लेकर मृच्छकटिकका बड़ा नाटक लिखा। ५ और ६ की कथा रामायणसे ली गई है। ७ से १२ की महाभारतसे और १३ की कृष्णचरित सम्बन्धी किसी पुराणसे।

स्पष्ट है कि सफल कलावन्त भासने रामायण, महाभारत, पुराण और लोकप्रचलित प्रसगोंको और अधिक लोकप्रिय करनेके लिए उन्हें रंगमंच-पर उतार दिया। इनमें स्वप्नवासवदत्ता, प्रतिज्ञायौगन्धरायण और चारुदत्त मुझे बहुत प्रिय हैं। अविमारक अलौकिक होनेके कारण इतना आकृष्ट नही करता। रामायण और महाभारतकी कथाएँ अधिकतर जानी हुई हैं।

बौद्ध-चीनी दन्तकथाएँ

बौद्धों और चीनियों दोनोंकी अपनी-अपनी गाथाएं, अपने-अपने पुराण और अपनी-अपनी दन्तकथाएं हैं। पौराणिक कथाओंमें ज्यादातर ऐसी घटनाओंका बयान होता है जिनमें संसारकी सृष्टि और स्वर्ग तथा उसके देवताओंका ज़िक्र होता है। ऐसी कथाओंमें अनेक बार देवता स्वर्गसे उतरकर आदमियोंसे मिलते-जुलते हैं और उनके दुःख-सुखमें शरीक होते हैं। अनेक बार तो आदमी खुद इतना महान् हो जाता है कि स्वयं देवता ही स्वर्गसे उतरकर उसके इर्द-गिर्द फिरने लगते हैं और अनुचरोंकी तरह उसकी सेवा करने लगते हैं। गौतम बुद्ध इसी तरहके एक व्यक्ति थे जो आदमी होकर भी देवताओंसे बढ़ गये और बौद्ध कथाओंमें स्वयं देवता उनकी पूजा करने लग गये।

दन्तकथाओंमें ऐसी घटनाएं होती हैं जिनके बयानमें देवता और मनुष्य, राक्षस और पशु सभी मिल-जुलकर कहानी बनाते हैं। ये दन्तकथाएँ लोककथाओंका रूप धारण कर लेती हैं और इन्सानका हिया फैलकर अपने भीतर जानवरों तकको समेट लेता है। अनेक चीनी कथाओंमें इस प्रकार के जीवनका बयान आज भी सुरक्षित है।

पहले हम बौद्ध पौराणिक कथाओंकी बात कहेंगे फिर चीनी दन्त-कथाओंकी। मामूली तौरपर हिन्दू और बौद्ध-पौराणिक कथाओंमें कोई खास फर्क नहीं है। बौद्धोंने हिन्दुओंके समूचे देवी-देवता अपना लिये, भेद बस इतना रहा कि जहां हिन्दुओंके देवता अपनी जगहपर खुदमुख्तार और महान् रहे वहां बौद्ध कथाओंमें जाकर वे भगवान् बुद्धके परिचर और सेवक हो गये। उनकी पूजा करना ही और उनके महान् कार्योंके

सामने सिर झुकाना ही उनका काम हो गया। देवराज इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, यक्षराज कुवेर आदि सभी बुद्धके सेवक बने और सब जगह उनकी मूर्तियाँ बुद्धकी सेवा करती हुई बनाई गईं।

बुद्धके जीवनसे सम्बन्ध रखने वाली अनेक घटनाओका कुछ ऐसा चमत्कारी और जादूभरा बयान मिलता है कि घटनाएँ अलौकिक बन जाती हैं। बुद्धकी जन्मभूमि कपिलवस्तुके बसनेके पहले कपिल मुनिका आसमानमे जाकर घड़ेके जलसे नगरकी सीमा बनाना, शाक्योंकी उस राजधानीके सम्बन्धमे एक पुराण ही है जिसका जिक्र आजसे दो हजार साल पहले महाकवि अश्वघोषने अपने 'बुद्धचरित' मे किया। इसी प्रकार बौद्ध कथाओमे लिखा है कि गौतमकी माताने उनके जन्मसे पहले सपना देखा कि एक सफेद हाथी उनकी कोखमें प्रवेश कर रहा है। इस कहानीको इतना महत्त्व दिया गया है कि बौद्धोंकी कलामे अनेक जगह सोई हुई रानीके शरीरमे प्रवेश करते सफेद हाथीकी मूर्ति बनाई गई है। लुम्बिनीके जंगलमे शाल पेड़की डाली पकड़े खडी मायाकी कमरसे गौतम-का पैदा होना, पैदा होते ही उनका सात कदम चलना और कदम-कदम पर कमलके फूलका उगकर उनके चरणोंको अपने ऊपर लेना, और इन्द्र, ब्रह्मा आदि देवताओका झट नये जन्मे बालकको आकर उठा लेना पौराणिक विश्वासकी ओर ही इशारा करता है। इसी प्रकार बुद्धका तावतिंश नामक स्वर्गको आना-जाना और वहाँ अपनी माता मायाको बौद्ध धर्मका उपदेश देना, श्रावस्तीमे अपने रूपको हजार जगह उत्पन्न कर देना, कामदेवका प्रलोभन और अपनी सेनासे बुद्धपर हमला या बार-बार देवताओंका बुद्धकी वन्दना करना उसी पुराणके अंग हैं जिनका निर्माण सभी मजहबोंने किया है और जो आम जनताके विश्वास या अंधविश्वासकी चीज बन गये हैं। पर इनसे भी महत्त्वके बौद्ध पुराण, बुद्धके जन्मकी वे कथाएँ हैं जो जातक कहलाती हैं और जिनकी संख्या करीब साढ़े पाँच सौ है। ये कथाएँ स्वयं बुद्धके ही मुँहमे रखी गई हैं

और उन्होंने ही बहानीके रूपमें उनको कहा है। जातक कथाओंका कहना है कि भगवान् बुद्ध गौतम बुद्धके रूपमें प्रकट होनेके पहले करीब ५५० बार जन्म लेकर समाजकी सेवा कर चुके थे। इन जातक कथाओंमें, जो बौद्ध धर्मके वास्तविक पुराण हैं, उनको कभी हाथी, कभी बन्दर, कभी हिरन आदिके रूपमें पैदा होकर अपने त्याग, परोपकार और बलिदानसे दुनियाका कल्याण करता बताया गया है। सियालके लिए नीचे हम उन्हीं कथाओंमेंसे एकका बयान देते हैं। उसका नाम "रोहन्तमिग" जातक है। इसमें दिखाया यह गया है कि किस तरह चित्त-मृगने आफतमें भी अपने बड़े भाई सोन-मृगका साथ न छोड़ा, किस तरह जानवर तक कभी-कभी इन्सानसे बढ़कर इन्सानियतका काम करता है। कहानी इस प्रकार है—

शास्ता (बुद्ध) ने कहा—"पहले जमानेमें बनारसमें ब्रह्मदत्त राज करता था। उसकी पटरानीका नाम खेमा था। उस समय बुद्ध हिमालयमें मृग होकर पैदा हुए। रंग उनका अत्यन्त सुन्दर था, बिल्कुल सोने जैसा, जिससे उनका नाम ही सोन-मृग पड़ गया था। सोन-मृगका छोटा भाई चित्त-मृग भी उसीका-सा सुनहरे रंगका था और उसी रंगकी उसकी एक छोटी बहिन थी जिसका नाम सुनन्दा था। सोन-मृग मृगोंका राजा था, नाम उसका रोहंत था। वह रोहन्त हिमालय पर्वतमालाकी दो मालाएँ लाँघकर तीसरीमें अपने नामके ही रोहंत तालाबके पास अस्सी हजार मृगोंका राजा बनकर रहता था और अपने बूढ़े और अंधे माता-पिताकी सेवा करता था। बनारससे थोड़ी ही दूरपर निषादोंका एक छोटा-सा गाँव था जहाँके एक निषादके बेटेने हिमालयके उस रोहंत मृगको देख लिया। मरते समय गाँव लौटकर उसने अपने बेटेसे कहा—तात, जहाँ हम शिकार करते हैं वहाँ सोनेके रंगका एक मृग रहता है। अगर राजा पूछे तो बता देना।

एक दिन रानी खेमाने सपना देखा कि सोनेके रंगका मृग सोनेके

आसनपर बैठा सुनहरी घंटियोंकी आवाजकी तरह मधुर स्वरमें उसे धर्मका उपदेश दे रहा था और वह साधु-साधु कहती उपदेश सुन रही थी। धर्मकी कथा बगैर खत्म किये ही सोन-मृग उठकर चला गया था और रानी 'मृगको पकड़ो ! मृगको पकड़ो !' कहती हुई जाग पड़ी थी। उसकी दासियाँ रानीकी चिल्लाहट सुनकर हँसती हुई बोलीं—"घरके दरवाजे और खिड़कियाँ अच्छी तरह बन्द हैं, हवा तकके लिए जगह नहीं और देवी ऐसे समय घरके भीतर मृग पकड़वाती हैं !" रानीने जब जाना कि यह कोरा सपना था तब उसने यह सोचकर कि राजा उसका सपना सुनकर हँसेगा, उसने छल पूर्वक कहा कि मुझे दोहद (गर्भ) उत्पन्न हुआ है और मैं सोन-मृगका उपदेश सुनना चाहती हूँ। राजाने सोन-मृगका नाम तक न सुना था, पर रानीने जब इच्छा पूरी न होनेपर मरनेकी धमकी दी तब राजाने मन्त्रियों और ब्राह्मणोंको बुलाकर पूछा। जब उन्होंने उसे बताया कि हाँ सोनेका मृग होता है, और है, तब राजाने शिकारियोंको बुलाकर पूछा कि किसीने सोन-मृग देखा या सुना है ? तब निषादोंके गाँव वाले शिकारीके बेटेने पिताकी बात राजाके सामने दोहरा दी। तब राजाने उसे 'मित्र' कहा, खर्चके लिए धन दिया और विश्वास दिलाया कि सोन-मृग लानेपर वह उसका बड़ा सत्कार करेगा। शिकारी बोला, "देव अगर उसे न ला सका तो उसका चमड़ा लाऊँगा, जो उसे भी न ला सका तो उसके बाल लाऊँगा, चिन्ता न करो।"

फिर वह अपने घरके लोगोंसे विदा ले वहाँ जा पहुँचा जहाँ हिमालयमें रोहन्त सरके किनारे मृगराज सोन-मृग अपने भाई-बहन, माता-पिता और दूसरे मृगोंके साथ रहता था। उस मृगको देखकर शिकारी सोचने लगा कि किस जगह जाल बाँधनेसे मैं उसे फँसा सकूँगा ? फिर मृगोंके पानी पीनेकी जगहको इस लायक समझकर उसने वहीं चमड़ेकी मजबूत रस्सी बाँट खूँटियोंपर जाल ताना। अगले दिन अस्सी हजार मृगोंके साथ आहार लेने और पानी पीने सोन-मृग तालाबके किनारे पहुँचा। पर जालमें

सहसा फँसकर बँध गया। तब उसने सोचा कि अगर मैं बँध जानेकी बात कहता हूँ तो मृगोंका दल बिना पानी पिये ही डरकर भाग जायगा। सो अपनेको वशमें कर जाल फँसा हुआ भी वह पानी पीता-सा मुँह बनाये खड़ा रहा। जब उसके अस्सी हज़ार मृग पानी पीकर ऊपर पहुँच गये तब उसने बन्धन तोड़नेकी तीन बार कोशिश की। पहली बार चमड़ा छिड़ गया, दूसरी बार मांस कट गया और तीसरी बार नसोंके कट जानेसे जाल हड्डीमें जा लगा। जब वह जाल तोड़ न सका तब उसने पकड़े जानेकी आवाज़ की और मृग तीन हिस्सोंमें बँटकर भागे। उधर चित्त-मृगने जब भाईको भागते मृगोंमें न देखा तब वह लौटा और जालमें फँसे रोहन्तके पास जा पहुँचा। रोहन्तने उसे अपने खतरेकी जगह बताते हुए कहा कि हे चित्तक, ये मृगोंके झुण्ड मरनेके डरसे भागे जा रहे हैं। तू भी जा। शंका मत कर। वे तेरे साथ जीते रहेंगे।

चित्तक बोला—हे रोहन्त, मैं नहीं जानेका। मेरा हिया खिंचा जाता है। मैं तुझे नहीं छोड़नेका। उसके बदले चाहे अपने प्राण ही छोड़ दूँगा।

रोहत बोला—वे हमारे अन्धे माता-पिता सेवकके न रहनेसे निश्चय मर जाएँगे। तू जा, शंका मत कर। वे तेरे साथ जिएँगे।

पर चित्त-मृगने उसकी बात न मानी और दायीं ओर उसे सहारा देता हुआ उसकी बगलमें जा खड़ा हुआ। उधर सुतना नामकी बहनने जब मृगोंमें अपने भाइयोंको न देखा तब वह भी लौटी और उनके पास जा पहुँची। उसे देख रोहन्तने कहा—हे भीरु, भाग जा। मैं फंदेके बन्धनमें बंधा हूँ। तू भी चली जा। शंका मत कर। वे तेरे साथ जिएँगे।

पर बहिनने भी भागना मंजूर न किया और वह रोहन्तके बायीं ओर सहारा देती हुई जा खड़ी हुई।

शिकारी आँख-कान लगाये देख सुन रहा था। अब उसने जाना कि मृगराज बँध गया। झट कछनी काछ हथियार ले वह मृगको मारनेके लिए

चला। उसे आता देखकर भी चित्त-मृग भागा नही। हाँ, सुतनाको कुछ भय हो आया और वह कुछ झिझकी। फिर यह सोचकर कि भाइयोको छोड़ कहाँ जाऊँगी, वह भी प्राणोंका मोह तज अपनी जगह बनी रही, मरनेके लिए रुक गई। शिकारीने जब तीनोंको एक साथ खड़े देखा तब दोस्ताना तौरपर उन्हे एक कोखमे जने भाइयोंकी तरह मान सोचा—मृगराज तो रज्जु-बन्धनमे बँधा है पर ये दोनों लज्जा और भयके बन्धनसे बँधे हैं, ये भला इसके कौन लगते है ? सो उसने पूछा—ये मृग तेरे कौन लगते हैं भला जो आज़ाद होते हुए भी बँधे हुएके पास खड़े हैं, जो प्यारी जिन्दगीके लिए भी तुझे तजनेको तैयार नही ?

रोहंतने उत्तर दिया—शिकारी, ये मेरे सहोदर भाई-बहन हैं जो अपनी जान बचानेके लिए भी मुझे तजना नही चाहते।

शिकारीका मन वैसे ही कोमल था, अब रोहंतकी बात सुनकर और भी कोमल हो गया। तब चित्त-मृगने उसके मनकी कोमलताको भाँपकर कहा—"मित्र शिकारी, तू इस मृगराजको निरा हिरन ही मत समझ। यह अस्सी हजार मृगोंका राजा है, सदाचारी है, सब जीवोंके प्रति दयावान है, अन्धे बूढ़े माता-पिताको पालता हैं, अगर तू इस तरहके धर्मात्माको मारेगा तो इसका ही नही, इसके माता-पिता, मुझे और बहन इन पाँच जनोको मारनेवाला होगा। इससे मेरे भाईको जीवनदान दे हम पाँचोंको जीवनदान देनेवाला कहलाओ।

चित्त-मृगकी बात सुन शिकारी बोला—"स्वामी डरें नही। मैं माता-पिताको पालनेवाले मृगको छोडता हूँ। इस महामृगको आज़ाद देखकर माता-पिता सुखी हों!"

फिर शिकारी सोचने लगा—"राजाका दिया ऐश्वर्य भला मेरा क्या करेगा ? अगर मैं इस मृगराजको मारूँ तो जमीन फट जायेगी, मुझपर बिजली गिर पडेगी। छोड़ता हूँ इसे।" और रोहंतके पास पहुँच खूँटी उखाड उसने चमडेकी रस्सी काट दी। फिर उसने मृगराजको उठा पानीके

पास ले जाकर लिटा बाद कोमल चित्तसे धीरे धीरे बन्धन खोल अंगोंसे नसें, मांससे मांस और चमड़ेसे चमड़ा उसने मिलाया। फिर पानीसे रक्तको धोकर मृगराजपर उसने दोनोंका हाथ बार-बार फेरा। यह देख शील-मृगने प्रसन्न हो कहा—शिकारी, जैसे मैं आज महामृगको मुक्त देखकर सुखी हूँ वैसे ही अपने रिश्तेदारोंके साथ तू भी सुखी हो।

तब रोहनने शिकारीसे अपनेको पकड़नेका कारण पूछा—शिकारी बोला—स्वामी मुझे तुमसे प्रयोजन नहीं है। राजाकी पटरानी खेमा तुमसे धर्मका उपदेश सुनना चाहती है। उसीके लिए राजाके हुक्मसे मैंने तुझे पकड़ा था।

रोहन बोला—दोस्त, अगर ऐसा है तो मुझे छोड़कर बड़ी चालकी है। आ मुझे राजाके पास ले चल, मैं रानीको उपदेश करूँगा।

शिकारी बोला—स्वामी राजाओंका स्वभाव कठोर होता है, कौन जाने क्या हो। मुझे राजाके दिये ऐश्वर्यसे काम नहीं। तू जहाँ चाहे चला जा।

रोहनने सोचा, मुझे और हाथ आये ऐश्वर्यको छोड़कर यह बड़ा त्याग कर रहा है कुछ ऐसा करूँ जिससे इसका काम भी बने और उससे बोला—'प्रिय, मेरी पीठपर हाथ तो फेर।" शिकारीने उसपर जो हाथ फेरा तो हाथ सुनहरे बालोंसे भर गया। शिकारीने पूछा—"स्वामी, इन बालोंका क्या करूँ?" रोहन बोला—" कहना, ये उस सोन-मृगके बाल हैं, और मेरी गाथाओंसे तुम्ही उपदेश जायगा।" फिर उसने और उसे विदा किया। परिक्रमा की और चार किया। ये तीनों जन लेकर माता-पिताके पास था, कैसे मुक्त हुआ?

शान्त हो गया। राजाने खुश होकर शिकारीको बड़ी दौलत देते हुए कहा—शिकारी, मैं तुझे सौ तरकस देता हूँ, बड़े कीमती मणिकुण्डल देता हूँ, फूलकी शोभावाला चौकोर पलंग देता हूँ, दो एक-जैसी पत्नियाँ देता हूँ, सौ गाएँ और बैल देता हूँ। शिकारी, तूने मेरा बहुत उपकार किया है। अब मैं धर्मके मुताबिक राज करूँगा। तू भी, शिकारी, अब हिरन पकड़नेवाला यह पापका काम छोड़ दे, खेती, व्यापार, ऋण-दान आदिसे अपने कुनबेका पेट भर।

शिकारी बोला—देव, मुझे गृहस्थीसे क्या काम? मुझे तो प्रव्रजित (भिक्षु) होनेकी आज्ञा दें।

और आज्ञा पाकर राजाका दिया हुआ धन बेटे और स्त्रीको सौंप हिमालय जा वह ब्रह्मलोक-गामी हुआ। राजाने भी सोन-मृगके उपदेशके अनुसार चलकर स्वर्ग पाया। वह उपदेश हज़ार साल चला।

इस प्रकार कथा समाप्तकर बुद्ध बोले—उस समय शिकारी छन्न था, राजा सारिपुत्र, रानी खेमा भिक्षुणी, माता-पिता महाराज-कुल, सुनता उप्पल-वण्णा, चित्त मृग आनन्द, अस्सी हज़ार मृगसमूह शाक्यगण और रोहन मृगराज तो मैं ही था।

चीनी पौराणिक विश्वासमें देवताओंका स्थान अपौरुषेय है जिस तरह हम यूनानी या भारतीय देवताओंको मनुष्योंसे मिलते-जुलते, राग-द्वेष करते, लड़ने-भिड़ने पाते हैं उसी तरह चीनी विश्वासमें देवताओंका स्थान नहीं है। देवता देवता है, आदमी आदमी, यद्यपि बिलकुल ऐसा नहीं कि दोनोंके बीच कभी सम्पर्क होता ही न हो। मामूली तौरपर आकाश और पृथ्वी देवताओं और आदमियों या समूची सृष्टिके जनक-जननी हैं। आकाशका देवता सारे चीनी देवताओंमें प्रधान है और उसके विशाल मंदिर पीकिंग आदि नगरोंमें बने हुए हैं। उसकी पूजाके लिए ऊँची सीढ़ीदार बेदी बनी रहती है जिसपर बड़े पुराने जमानेसे पूजा होती चली आयी है। चीनके सम्राट् भी अपनी राजगद्दी उसी देवताकी

प्रसन्न हो गया। राजाने खुश होकर शिकारीको बड़ी दौलत देते हुए कहा—शिकारी, मैं तुझे सौ तरकश देता हूँ, बड़े कीमती मणिकुण्डल देता हूँ, फूलोंकी शोभावाला चौकोर पलंग देता हूँ, दो एक-जैसी पत्नियाँ देता हूँ, सौ गाएँ और बैल देता हूँ। शिकारी, तूने मेरा बहुत उपकार किया है। अब मैं धर्मके मुताबिक राज करूँगा। तू भी, शिकारी, अब हिरन पकड़नेवाला यह पापका काम छोड़ दे, खेती, व्यापार, ऋण-दान आदिसे अपने कुनबेका पेट भर।

शिकारी बोला—देव, मुझे गृहस्थीसे क्या काम? मुझे तो प्रव्रजित (भिक्षु) होनेकी आज्ञा दें।

और आज्ञा पाकर राजाका दिया हुआ धन बेटे और स्त्रीको सौंप हिमालय जा वह ब्रह्मलोक-गामी हुआ। राजाने भी सोन-मृगके उपदेशके अनुसार चलकर स्वर्ग पाया। वह उपदेश हजार साल चला।

इस प्रकार कथा समाप्तकर बुद्ध बोले—उस समय शिकारी छन्न था, राजा सारिपुत्र, रानी खेमा भिक्षुणी, माता-पिता महाराज-कुल, सुनना उप्पलवण्णा, चित्त-मृग आनन्द, अस्सी हजार मृगसमूह शाक्यगण और रोहन मृगराज तो मैं ही था।

चीनी पौराणिक विश्वासमें देवताओंका स्थान अपौरुषेय है जिस तरह हम यूनानी या भारतीय देवताओंको मनुष्योंसे मिलते-जुलते, राग-द्वेष करते, लड़ते-भिड़ते पाते हैं उसी तरह चीनी विश्वासमें देवताओंका स्थान नहीं है। देवता देवता है, आदमी आदमी, यद्यपि बिलकुल ऐसा नहीं कि दोनोंके बीच कभी सम्पर्क होता ही न हो। मामूली तौरपर आकाश और पृथ्वी देवताओं और आदमियों या समूची सृष्टिके जनक-जननी हैं। आकाशका देवता सारे चीनी देवताओंमें प्रधान है और उसके विशाल मंदिर पीकिंग आदि नगरोंमें बने हुए हैं। उसकी पूजाके लिए ऊँची सीढ़ीदार वेदी बनी रहती है जिसपर बड़े पुराने जमानेसे पूजा होती चली आयी है। चीनके सम्राट् भी अपनी राजगद्दी उसी देवताकी

कृपामे पाते थे, ऐसा जन-विश्वास था, और अभी हाल तक राजाओंका अभिषेक उसी वेदीके पास होता रहा है। चीनके राजा अपनेको आकाश देवताके ही वंशज मानते थे और उनकी उपाधियोंमें प्रधान उपाधि "आकाशका बेटा" हुआ करती थी। आज भी पीकिंगके मन्दिरों और संग्रहालयोंमें उस देवताकी पूजाके लिए हजारों वर्ष पुराने पीतल और काँसेके हंडे और कलसे रखे हुए हैं।

चीनके जन-विश्वास और पौराणिक कथाओंमे भी जल-प्रलयकी बाबुली कहानी जीवित है। पर उससे भी अधिक महत्त्वका जन-विश्वास उस अजगरपर केंद्रित है जो कभी सारे चीनमें पूजा जाता था। बाबुली, असीरी और ऋग्वैदिक आर्योके साहित्यमें जिस अप्सू या वृत्रका बयान आता है वह भी चीनी अजदहेकी तरह ही लम्बी पूँछ वाला साँप या अजगर है, जो अकालका राक्षस माना गया है और जो जलके सारे सोतोंपर कुण्डली मारकर सूखा पैदा करता है। उसे फिर मारदुक या इन्द्र वज्रसे मारकर जलके सोत खोल देता है और खेत लहलहा उठते है। परन्तु चीनी अजदहा अकालका देव नही कल्याणका देवता है और गणेशकी तरह शुभ माना जाता है। बर्तनों और मन्दिरोंपर, भवनों और इमारतोंपर, सभी चीजोंपर उसके एकसे एक चमत्कारी चित्र और मूरतें बनी होती हैं।

चीनी देवताओं और इनकी कथाओंके अलावा लोकमें प्रसिद्ध ऐसी कहानियाँ भी हैं जो आदमी और दूसरे जीवों या प्रकृतिकी शक्तियोंके बीच सम्बन्ध स्थापित करती हैं। इस तरहकी एक कहानी शिकारी 'ई' की है जो नीचे दी जाती है—

बहुत दिनोंकी बात है चीन देशमें "ई" नामका एक शिकारी रहता था। उसका निशाना बड़ा अचूक था। तीर फेंककर वह निशानेकी ओर घोड़ा तेज़ीसे दौड़ाता क्योंकि वह जानता था कि उसका निशाना कभी चूकेगा नहीं।

एक बार चीनपर एक आफत आ गई। आसमानमे अचानक दस सूरज

एक साथ निकल आये। दसों सूरज जमीनकी छातीपर आग उगलने लगे। पेड़-पौधे जल उठे, पशु-पक्षी तबाह हो गये और लगा कि आदमीकी जाति ही दुनियासे मिट जायगी। शिकारी "ई" बड़ी चिन्तामें पड़ गया। वह सोचने लगा कि चीनकी जनताको दस-दस सूर्योंसे कैसे बचाया जाय। जब कोई सूरत समझमें न आई तब उसके गुस्सेका पारा ऊँचा चढ़ गया। उसने एकाएक अपना धनुष चढ़ा लिया और तरकससे दस तीर निकाले। एकके बाद एक उसने दसों तीरोंसे दसों सूरजोंपर वार किया। तीरोंकी सनसनाहटसे जैसे बाजेकी आवाज होने लगी और हवाको चीरकर तीर भी सूरजोंके गोलोंमें जा लगे। फिर क्या था जैसे फूलके गुब्बारे बैठ जाते हैं वैसे ही नवों सूरज मद्धिम सितारोंकी तरह धुंधले और कमजोर हो गये।

बस दसवाँ सूरज किसी तरह बच गया, क्योंकि दसवाँ तीर तनिक चूक गया था। घबराया हुआ वह सूरज डरके मारे बँसवाड़ीके पीछे जा छिपा, जमीनपर भयानक अँधेरा छा गया और गर्मी कुछ ऐसी गायब हुई कि लोग सर्दीसे ठिठुर-ठिठुरकर मरने लगे। यह एक नयी आफत आई। संसारको गर्मी और उजेला भी चाहिए और उजेला सूरज ही दिया करता है जो अब भागकर बाँसोंके पीछे जा छिपा था। शिकारी "ई" बड़ी चिन्तामें पड़ गया। क्योंकि वह समझता था कि उसने दसों सूरजोंको बरबाद कर दिया है।

उधर छिपे हुए सूरजने यह सोचकर कि शिकारी 'ई' चला गया होगा बाँसोंके पीछेसे सिर उठाकर बड़ी होशियारीसे झाँका। शिकारी "ई" को अब भी खड़ा देख सूरज घबड़ाकर फिर बाँसोंकी ओट हो गया। पर शिकारीने अब चैनकी साँस ली क्योंकि एक सूरज अभी बच रहा था, जिससे दुनियाकी रक्षा हो सकती। शिकारी "ई" खुशी-खुशी अपने घर चला गया और सूरज धीरे-धीरे डरा-डरा बाँसोंके पीछेसे निकला। दुनिया-के लोगोंको नई जिन्दगी मिली।

पर, कहते हैं, शिकारी 'ई' का डर अब भी सूरजके दिलमें बना हुआ है। इसीसे २४ घंटे आसमानमें चमकते रहनेकी उसे हिम्मत नहीं होती। सुबह पूरबमें निकलकर वह सीधा पच्छिमकी ओर भागता है और शाम होते-होते वह फिर बंसवारीकी ओट जा छिपता है, जिससे रात होती है।

यही राज है रात और दिनका। पहले सदा दिन ही रहता था पर जबसे सूरजके दिलमें शिकारी 'ई' का डर समाया तबसे दिन और रात दोनों होने लगे।

हिमालयकी व्युत्पत्ति

: १० :

करोड़ों साल हुए, दक्षिण भारत एक ओर अफ्रीका, दूसरी ओर आस्ट्रेलियासे मिला हुआ था। पानीका वह अटूट विस्तार हिन्द महासागरपर छाया था, दक्खिनी अमेरिका तक। उधर उत्तरमें न केवल उत्तर भारत बल्कि प्राय सारा हिमालय और एशियाके अधिकतर भाग जलमग्न थे। उत्तर सागरकी फेनिल लहरें टूटती थीं। तब हिमालय न था।

एकाएक एक दिन पृथ्वीके गर्भमें कुछ हुआ, जलजला आया, जमीन सिकुड़ी और फैली, सिकुड़ी और फैली। उसकी ऊपरी सतहका सहसा कायापलट हो गया। दक्खिनमें समुन्दर उठा। उसने भारत, अफ्रीका और आस्ट्रेलियाको जल द्वारा बाँट दिया। उसी भूकम्पने उत्तरको ऊपर फेंका। सहसा हिमालयकी उत्तुङ्ग शृङ्खलाएँ सागरसे उठकर नंगी हो गईं। उसकी वह एवरेस्ट आसमान चूमने लगी जिसकी अभीकी रूमानी विजयकी गूँज आज भी हवामें भरी है। साथ ही उसके उत्तर और दक्खिनमें भी समुन्दरने मैदान उगल दिये। हिमकी श्वेत हरी धाराओंसे गिरिराजने उन्हें सम्पन्न किया।

वहीं गिरिराज हिमालय कालान्तरमें मनुष्यकी प्रेरणा और आकर्षणका केन्द्र बना। उसके हिमधवल शिखरोंपर सूरजने सोना बिखेरा, चाँदने चाँदी। मनुष्यकी कल्पना अपने वैभवसे उसे सनाथ करने लगी। वह हिमालय भय, सौन्दर्य, वैराग्यका अपने मानव-दर्शकोंमें संचार करने लगा। इन्सानने उसे विलासमें खोजा, मृत्युमें पाया। उसकी गहरी कन्दराओं और आदिम जंगलोंमें उसने अभिमत सत्यके दर्शन किये। उसकी चोटियोंपर अमरोंकी अलका बसाई। प्रणय-विह्वल कामुक किन्नर-किन्नरियोंको

रागसे व्वनित किया, प्रेयमियोंको मेघदूत भेजे। शिवके घनीभूत सं
अट्टहासने उसके मस्तकका तुषार-मण्डन किया, देव-वनिताएँ बर्फी
चिकनी चट्टानोंके दरपनमें उसकी छवि निहारने लगीं। तीसरे नयनकी
आगसे जलते-जलते भी कामने जो अपना अमोघ शर फेंका तो असुर-
राज शिवका मन डोल गया, कैलास और गंधमादनके कन-कनमें उन्माद
जागा।

भारतीय विचारोंके अनुसार हिमालयका विस्तार पूरबमें पश्चिम
समुद्रसे समुद्र तक है। कालिदास कहते हैं—अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवात्मा
हिमालयो नाम नगाधिराजः। पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या
इव मानदण्डः॥ उत्तर दिशामें गिरिराज हिमालय है जो पूर्व और पश्चिम
के समुद्रोंमें प्रवेश करता हुआ पृथ्वीके मापदण्ड-सा स्थित है। इस
प्रकार हिमालय प्राचीनोंकी रायमें भारतकी उत्तरी भौगोलिक और राज-
नीतिक आदर्श सीमा प्रस्तुत करता था। परन्तु साधारण तौरसे हिमाल-
का यह मान संसारके भौगोलिकोंको मान्य नहीं है। उन्होंने उसका
१५०० मील लम्बा विस्तार पश्चिममें गिलगित और पूरबमें ब्रह्मपुत्र
तक माना है। इस प्रकार हिन्दुकुश हिमालयकी शृङ्खलासे बाहर है।
भारतीय परिभाषाके अनुसार पश्चिममें हिन्दुकुशके अलावा ईरानी पठार-
का एक भाग और पूरबमें बर्माके भी कुछ हिस्से शामिल होते। इस
१५०० मील लम्बे पहाड़ी सिलसिलेकी चौड़ाई करीब ४०० मील है।
हिमालयकी ६ श्रेणियाँ हैं जो पामीरकी गाँठसे निकलकर पूरबकी ओर
जञ्जीरोंकी तरह बढ़ती गई हैं। ज्यों-ज्यों ये श्रेणियाँ पूरबकी ओर बढ़ी
गई हैं त्यों-त्यों इनकी ऊँचाई भी बढ़ती गई है। एवरेस्ट जो उनकी सबसे
ऊँची चोटी है, इसी पूर्वी शृङ्खलामें है। हाँ, गाडविन आस्टिनकी दूसरी
आसमानचुम्बी चोटी जरूर पश्चिममें है।

इन श्रेणियोंका एक अन्दाज इस प्रकार है। इनकी सबसे उत्तरी श्रेणी
कराकुरम पहाड़ोंकी है जो तिब्बती पठारकी ऊँची मुण्डेर बनाती है। इसी

श्रेणी कराकोरम या मुजदाग पहाड़ोंकी है, सिन्धुनदके उद्गमके उत्तरमे। इस शृंखलाका मध्यम भाग अत्यन्त आकर्षक है। यहीं वह प्रसिद्ध जोरकुल झील है जिससे गमारकी चार बड़ी नदियाँ निकलकर सोना उगलनेवाली जमीनको सींचती है। उत्तरकी ओरसे उस आमू दरिया या वक्षुका निकास है जिसे अरब वक्षाब कहते थे, जो बगा, बलख, बदख्शांको सरसब्ज करती मध्यएशियाके मैदानोंमे रेंगती अरब सागरमे गिरती है। उसके तटवर्ती वह्लीकमे केसरके खेत है जिनकी फूली क्यारियोंमे लोट-लोट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके घोड़ोंने अपने अयाल लाल कर लिये थे। उसी झीलसे पूर्वकी ओर ब्रह्मपुत्र निकलता है जिसके बहावकी राहमे कामरूपका जादूका देश है। लोक-कल्पना वहाँ वह नारीराज स्थापित करती है जहाँकी नारियोंको प्रिय पुरुषको भेड़ा बना रखनेका इष्ट था। पश्चिममे सिन्धु नदी कश्मीरकी ऊँचाइयोंसे उत्तर पजाबको उर्वर करती है और दक्खिनमे गगा मध्यदेशको अपने स्पर्शसे पावन।

हिमालयकी तीसरी शृंखला लद्दाखका निर्माण करती है, सिन्धुके उत्तर-दक्खिन दोनो ओर जस्कर हिमालयकी प्रधान पर्वतमाला है। उसका मस्तक बर्फीली चोटियोंसे चमकता रहता है। उसीकी चोटियाँ गगोत्रीसे नन्दादेवी तक निमलाके पहाड़ोंसे दीखती है। पीर पजाल या धौलाधरकी श्रेणी बाहरी हिमालयमें पड़ती है जो उसकी पाँचवीं शृंखला है। निचले हिमालयमें इसकी अन्तिम और छठी पर्वतमाला है जिसमे सिवालिकका विस्तार है। दौरानके ख्यालसे हम इस पन्द्रह सौ मील लम्बी पर्वतश्रेणीको और भी अधिक सुगम तरीकेसे बाँट सकते है। अगर हम इसके चार भाग करें तो उनकी गणना इस प्रकार होगी—(१) पजाब-हिमालय ३५० मील, (२) कुमायूँ-हिमालय २०० मील, (३) नेपाल-हिमालय ५०० मील और (४) आसाम-हिमालय ४५० मील।

पजाब-हिमालयका विस्तार गिलगितसे सतलज तक है। इसमे अधिकतर २० हजार फुटसे कम ही ऊँची चोटियाँ है। पर नगापर्वत इसी

भारतीय हिमालयमें कोई गिरि-शिखर ऐसा नहीं जो कैलासकी सुन्दरता पा सके। कालिदासने उसे स्फटिकका बना कहा है। गौरीशंकरका नाम भारतीय साहित्यमें बारबार आता है। साधारणतः यह माना जाता था कि गौरीशंकर हिमालयकी सबसे ऊँची चोटी है। अनेक उसीको एवरेस्ट मानते हैं। परन्तु अब कैप्टेन उडके मापसे प्रमाणित हो गया है कि गौरीशंकर एवरेस्टसे प्रायः साढ़े पाँच हजार फुट नीची दूसरी चोटी है। गंधमादनकी चर्चा संस्कृत साहित्यमें शंकरके विहारके संबंधमें अनेक बार हुई है। पुराण तो इन विहारोंके वर्णनसे भरे पड़े हैं। हिन्दू भौगोलिकोंने उसे कैलासका ही एक भाग माना है। कालिकापुराण इसे कैलास पर्वतका दक्षिणी भाग मानता है। महाभारत और वराहपुराणमें इसी अंचलमें बदरिकाश्रमका होना भी लिखा है। मार्कण्डेय और स्कन्दपुराण गन्धमादनको गढ़वालके पहाड़ोंका वह भाग मानते हैं जिनसे होकर अलकनन्दा बहती है। कालिदासने उसे कैलासका ही एक अंग माना है, जिससे होकर उनकी रायमें मन्दाकिनी और जाह्नवी बहती है।

हिमालयका वर्णन और दर्शन सदासे भारतीयोंको प्रिय रहा है। महाभारतके वीर पाण्डव अन्तमें इसी पर्वतमालामें गलकर शान्तिलाभ करने गये थे। संस्कृतके कवियोंमें इस पर्वतमालाके सौंदर्य-पानकी विशेष कमजोरी रही है। कालिदास तो जैसे अपने ग्रंथोंमें बार-बार इस शैलराजकी ओर लौट पड़ते हैं। कुमारसम्भवकी सारी कथा हिमालयमें ही घटित होती है। उत्तरमेघ भी इसी पर्वतका वर्णन करता है। विक्रमोर्वशीयका चौथा और अभिज्ञान शाकुन्तलका सातवाँ अंक हिमालयसे ही तात्पर्य रखते हैं। रघुवंशके पहले, दूसरे और चौथे सर्गोंमें भी उसी गिरिराजका बखान है।

कालिदासके हिमालय वर्णनका संक्षेपमें उल्लेख अनुचित न होगा। पर्वतकी मेखलामें संचरण करते मेघोंकी शीतल छायाका आनन्द

ले गिद्ध वर्षा और आँधीसे उद्वेजित ऊपरकी शिलाओंपर धूपका सेवन करते हैं। भोजपत्रोंसे रह-रहकर मर-मर ध्वनि उठती है। पवन बाँसके रंध्रोंमें सरसरा कर वशी ध्वनि उत्पन्न करता है जिससे किन्नरियोके गानेको सहायता मिलती है। गगामीकरोंमे लदी शीतल वायु यात्रियोका मार्गश्रम दूर करती है। नमेरु वृक्षकी घनी छायामें बैठे कस्तूरीमृगके नाभिके स्पर्शसे शिलाएँ गमक उठती हैं। सरल द्रुमोके परस्पर घर्षणसे सहसा दावाग्नि प्रज्वलित हो उठती है। रात्रिके समय वनस्पतियाँ तैलहीन प्रदीपोंका रूप धारण करती हैं। हिमालयकी शृंखलामें एक ओर क्रौंचरन्ध्र है जिसे परशुरामने अपनी शक्तिकी परीक्षाके लिए वाणसे भेद द्वार-सा प्रस्तुत कर दिया था। उसीकी पृष्ठभूमिमें हालके कटे हाथी दाँतकी तरह तुषारमण्डित कैलास है जिसकी दर्पणकायामें देवागनाएँ अपनी छवि निहारती हैं। हिमालयकी शालीनता उन चमरी गायोके गमनागमनसे बढ जाती है जिनकी पूँछ सम्राटोंको उनके चमर-लाछन प्रदान करती हैं। हाथियोंके झुण्ड सदा सर्वत्र देवदारुके जगलोमे फिरा करते हैं। उनके संघर्षणसे सरल वृक्ष छिल जाते है और उनके दूधकी गधसे वातावरण गमक उठता है। कवि पर्वतके 'शिलीभूतहिम' और 'तुषारसघातशिलाओं' का वर्णन करते नही अघाता।

मिस्र और पश्चिमी एशियाके साहित्य और जन-विश्वास : ११ :

सभी प्राचीन सभ्य और असभ्य जातियोंके अपने-अपने विश्वास हैं। विश्वास वे अधिकतर काल्पनिक हैं और धर्म या भयसे सम्बन्ध रखते हैं। आदमी अपनी जिन्दगीको ही दुनियाकी जाहिर और छिपी चीजों और ताकतोंका प्रतीक मानता है और उसीके मुताबिक वह अपने विश्वास गढ़ता जाता है, उसीके मुताबिक वह अपने देवता सिरजता जाता है।

प्राय. सभी जातियोंके प्राचीन देवता इसानकी ही तरह हाथ-पैर वाले, नाक-मुँह-आँखो वाले जीव हैं जो चल-फिरते, काम करते, मरते-मारते हैं, खाते-पीते और बोलते हैं, सुनते-सूँघते और देखते हैं। आदमीकी ही तरह उन्हे भी प्यार और गुस्सा आता है, वे भी उसी की तरह सोते-जागते हैं, सुदर-असुन्दर होते हैं। उसीकी तरह उनमे आपसी बैर और प्यार होते हैं, उसीकी तरह वे आपसमे जग भी करते हैं। गरज कि आदमी अपने ही रूपमे अपने देवताको सिरजना-सँवारना है।

जीनेकी लालसा इन्सानकी इतनी प्रबल है कि वह मरनेके बाद भी एक नई जिन्दगी जीना चाहता है, चाहे वह जिन्दगी स्वर्गकी हो चाहे नरककी। सभी जातियोंके अपने-अपने बिहिश्त हैं, अपने-अपने दोजख हैं, जहाँ अपने-अपने धर्म, मजहबी विश्वास, काल्पनिक प्रेरणाके अनुसार वे सुखी या तकलीफके दिन गुजारते हैं। फर्क बस इतना है कि उनकी कल्पनाके मुताबिक मौतके बादकी वह जिन्दगी बेइन्तहा लम्बी होती है, मजेके

से सिद्ध वर्षा और आँधीसे उद्वेजित ऊपरकी शिलाओंपर धूपका सेवन करते हैं। भोजपत्रोंसे रह-रहकर मर-मर ध्वनि उठती है। पवन बाँसके रन्ध्रोंमें सरसरा कर वही ध्वनि उत्पन्न करता है जिससे किन्नरियोंके गानेको सहायता मिलती है। गंगासीकरोंमें लदी शीतल वायु यात्रियोंका मार्गश्रम दूर करती है। नमेरु वृक्षकी घनी छायामें बैठे कस्तूरीमृगके नाभिके स्पर्शमे शिलाएँ गमक उठती हैं। सरल द्रुमोंके परस्पर घर्षणसे सहसा दावाग्नि प्रज्वलित हो उठती है। रात्रिके समय वनस्पतियाँ तैल-हीन प्रदीपोंका रूप धारण करती हैं। हिमालयकी शृंखलामें एक ओर क्रौंचरन्ध्र है जिसे परशुरामने अपनी शक्तिकी परीक्षाके लिए बाणसे भेद द्वार-सा प्रस्तुत कर दिया था। उसीकी पृष्ठभूमिमें हालके कटे हाथी दाँत-की तरह तुषारमण्डित कैलास है जिसकी दर्पणकायामें देवांगनाएँ अपनी छवि निहारती हैं। हिमालयकी शालीनता उन चमरी गायोंके गमनागमन-से बढ जाती है जिनकी पूँछ सम्राटोंको उनके चमर-लाञ्छन प्रदान करती है। हाथियोंके झुण्ड सदा सर्वत्र देवदारुके जंगलोंमें फिरा करते हैं। उनके संघर्षणसे सरल वृक्ष छिल जाते हैं और उनके दूधकी गंधसे वातावरण गमक उठता है। कवि पर्वतके 'शिलीभूतहिम' और 'तुषारसंघातशिलाओं' का वर्णन करते नहीं अघाता।

दफना दिये जाते थे। बेशक मिस्री या तो उनसे ज्यादा रहमदिल थे या बेरहमीका अपना वह पुराना जमाना पार कर चुके थे जब वे भी इन मूरतोंकी जगह हाड़-मासके आदमी मृतकोंके साथ दफनाते रहे होंगे।

मिस्रियोंका यह विश्वास था कि मरे हुए इन्सानकी आत्मा पाताल या यमलोकके पहिले यमलोकके देवता ओसिरिसके पास ले जाई जाती है और जब वह अपनेको बुरे पापोंसे मुक्त होनेका सबूत दे लेती है तब उस देवताका आशीर्वाद पाकर अपने पुराने शरीरमें लौट आती है और आस-पास रखी चीजोंको भोगती है। वह आत्मा जिन्दगीकी दुनियामें तो नहीं लौट पाती पर अपनी 'ममी' में प्रवेश करती और पिरामिडमें निवास करती है। इसीलिए शरीरका 'ममी' बनाना वहाँ इतना आवश्यक होता था। इसीलिए उस ममीकी रक्षाके लिए पिरामिडोंकी इतनी आवश्यकता थी।

मिस्री जीवनमें मृत्युकी उपासना सबसे अधिक महत्त्व रखती थी। मौतके परेकी जिन्दगी पहलेकी जिन्दगीसे बँधी थी और उन दोनोंका एक अटूट सिलसिला था। खुद जिन्दगी भी मौतके बादकी जिन्दगीके लिए ही एक तैयारी थी। स्वाभाविक ही मौतका देवता ओसिरिस भी वहांके देवताओंकी परम्परामें कभी बड़ा ऊंचा स्थान रखता था।

मिस्री देवताओंका एक परिवार था जिसमें ओसिरिस पिता था, ईसिस माता थी और होरस या सूरज उनका पुत्र था। पहिले उसे अज या बकरेका रूप मिला, फिर बाज और सांडका। बाजको मिस्री लोग 'सोत्री' और सांड को 'हापी' कहते थे। उस जमानेमें, या कुछ बाद, सांडकी पूजा हमारे देशके मोहनजोदड़ो और हड़प्पा तथा बाबुल, निनेवे, आदिमें भी होने लगी थी। (हमारे देशमें तो शिवके सांडकी पूजा आज भी होती है) कुछ काल बाद वही ओसिरिस, जो कभी अन्न और फसलोंका देवता था, ओसिरिस-खेन्तामेन्तियका नया नाम धारणकर मृतकोंका

वहाँ बेशुमार जरिये होते हैं, सुखके अपार साधन जिनसे इन्सानकी आत्मा अनन्तकाल तक छकती-अघाती रहती है।

स्वयं आत्मा या रूपकी कल्पना भी इसी आधारसे उठी, कि आदमी जी हुई ज़िन्दगीसे चिपका रहना चाहता है और तृष्णापर हज़ार लानत भेजता हुआ भी उसकी छाया नहीं छोड़ पाता।

यही कहानी बाबुली जातियोंकी रही है, यही आत्मा मानने वाले आर्योंकी और यही प्राचीन मिस्रियोंकी। हाँ, मिस्रमें मौतके बाद ज़िन्दा रहनेकी यह हविस गजबका ज़ोर पकड़ गई। मिस्रियोंका यह विश्वास था कि जब तक हमारा भौतिक शरीर—इस ज़िन्दगीमें जीने वाला तन—जीवित या मरी हालतमें बना रहता है तब तक उसकी आत्मा भी वहीं न कहीं घूमती रहती है और फिर घूमकर उसी शरीरमें पैठ जाती है और इन्द्रियोंको अच्छी लगने वाली सभी चीज़ोंको भोगती है।

इसीलिए मिस्रियोंने अपने मृतकोंकी 'ममियाँ' बनाईं और उन्हें बचा रखनेके लिए विशाल पिरामिड खड़े किये। ताजसे हज़ारों साल पहिले—मुहम्मद, ईसा और बुद्धसे हज़ारों साल पहिले—उन्होंने वह लेप या उबटन खोज निकाला जिससे वे लाशको लेपकर, उसे कपड़ेसे लपेटकर ताबूतमें रखकर आज तक सुरक्षित रख सके। इसी तरह उन्होंने अपने और अपने देवताओंके प्रियपात्र स्वयं देवता स्वरूप बन्दरों, बिल्लियों, घड़ियालों तककी 'ममियाँ' बनाईं और उन्हें उनके खाने-पीने आरामकी चीज़ोंसे घेरकर अपने पिरामिडोंमें बन्द कर दिया, जिससे उन्हें धूप और नमी न छू सके, नष्ट न कर सके।

संसारके अचरज ये पिरामिड प्राचीन मिस्रियोंके मक़बरे हैं जिनमें उनके राजाओंके मृत शरीर बचा रक्खे गये हैं। उनके चारों ओर मृतकके साथ रहनेवाले दास-दासियाँ, कुत्ते-बिल्ली आदिकी मूर्तियाँ हैं, चिरकाल तक चलने वाली खाने-पीनेकी चीज़ें हैं। प्राचीन बाबुलके पासके पुराने शहर ऊरकी कब्रोंमें यही दास-दासी अपने हाड़-मांसके शरीरके साथ कभी

दफना दिये जाते थे। बेशक मिस्री या तो उनसे ज्यादा रहमदिल थे या बेरहमीका अपना वह पुराना जमाना पार कर चुके थे जब वे भी इन मूर्तोंकी जगह हाड़-मांसके आदमी मृतकोंके साथ दफनाते रहे होंगे।

मिस्रियोंका यह विश्वास था कि मरे हुए इन्सानकी आत्मा पाताल या यमलोकके पहिले यमलोकके देवता ओसिरिसके पास ले जाई जाती है और जब वह अपनेको कुछ पापोंसे मुक्त होनेका सबूत दे लेती है तब उस देवताका आशीर्वाद पाकर अपने पुराने शरीरमें लौट आती है और आस-पास रखी चीजोंको भोगती है। वह आत्मा जिन्दगीकी दुनियामें तो नहीं लौट पाती पर अपनी 'ममी' में प्रवेश करती और पिरामिडमें निवास करती है। इसीलिए शरीरका 'ममी' बनाना वहाँ इतना आवश्यक होता था। इसीलिए उस ममीकी रक्षाके लिए पिरामिडोंकी इतनी आवश्यकता थी।

मिस्री जीवनमें मृत्युकी उपासना सबसे अधिक महत्त्व रखती थी। मौतके परेकी जिन्दगी पहलेकी जिन्दगीसे बँधी थी और उन दोनोंका एक अटूट सिलसिला था। खुद जिन्दगी भी मौतके बादकी जिन्दगीके लिए ही एक तैयारी थी। स्वाभाविक ही मौतका देवता ओसिरिस भी वहाँके देवताओंकी परम्परामें कभी बड़ा ऊँचा स्थान रखता था।

मिस्री देवताओंका एक परिवार था जिसमें ओसिरिस पिता था, ईसिस माता थी और होरस या सूरज उनका पुत्र था। पहिले उसे अज या बकरेका रूप मिला, फिर बाज और साँडका। बाजको मिस्री लोग 'सोक्री' और साड को 'हापी' कहते थे। उस जमानेमें, या कुछ बाद, साँडकी पूजा हमारे देशके मोहनजोदडो और हड़प्पा तथा बाबुल, निनेवे, आदिमें भी होने लगी थी। (हमारे देशमें तो शिवके साँडकी पूजा आज भी होती है) कुछ काल बाद वही ओसिरिस, जो कभी अन्न और फसलोंका देवता था, ओसिरिस-खेन्तामेन्तियका नया नाम धारणकर मृतकोंका

महान् देवता बना। धीरे-धीरे उसका प्रताप इतना बढ़ा कि वह सूरज भी मान लिया गया।

ओसिरिसकी पत्नी ईसिस शायद सीरियासे मिस्र आई। कहते हैं कि देवता सेतने ओसिरिसको मारकर उसकी लाशको देवदारकी सन्दूकमें बन्दकर बिब्लस नामक नगरमें छोड़ दिया था जहाँ ईसिसने उसे पाया और जिलाकर उसे अपना पति बनाया। ईसिस भी अपने पति ओसिरिस और प्ताहकी ही तरह इशारों पर चलने वाली देवी है। पितृहन्ता सेतको मारकर पुत्र होरसने पिताकी मौतका बदला लिया।

मिस्रियोंके अनेक देवताओंके सिर जानवरोंके थे। आदमीके तनपर जानवरका सिर बिठानेका खास मतलब हुआ करता था। मोहनजोदड़ो आदिकी मोहरोंपर उभारी तसवीरोंमें भी आदमीके तनपर शेर आदिके सिर बने हुए हैं जिससे उनकी शेरकी-सी ताकतका अन्दाज लगाया जा सके।

साधारण तौरसे प्राचीन मिस्री नर और नारी प्रसन्न जीव थे। बाजोंके साथ नाचते हुए नगरोंकी सड़कोंपर उनका निकलना त्योहारोंका विशेष दृश्य होता था। इसीसे मौतके बाद जिन्दगीका खत्म हो जाना उन्हें गवारा न हो सका और उन्होंने मौतके परे भी जिन्दगीकी दुनिया सिरज डाली। वे करीब चार किस्मकी रूहों या आत्माओंपर विश्वास करते थे। इनमेंसे पहली आत्माको वे 'का' या 'को' कहते थे। 'का' का मतलब उनकी जबानमें 'दूसरा' होता था, यानी शरीरका दूसरा रूप, जिसकी मूर्तियाँ अक्सर लाशके पास ही पिरामिडोंमें बना दी जाती थीं। 'बाई' दूसरे प्रकारकी आत्मा थी जिसका सिर तो इन्सानका होता था और शरीर पक्षीका। तीसरे प्रकारकी रूह 'इख' कहलाती थी जिसका सम्बन्ध भी पक्षीसे ही था। कहते हैं कि 'बाई' तो लौटकर 'ममी' बने हुए शरीरमें प्रवेश कर जाती थी और 'इख' सीधे आसमानमें उड़ जाती थी। चौथी आत्मा एक प्रकारकी छाया थी जो बहुत कालतक इधर-उधर फिरा करती

थी। अपने देशमें भी आत्माको 'हंस' माना गया है और छाया तो प्रेतका दूसरा नाम ही है। आत्माएँ या छाया-शरीर ओसिरिस या पाताल के दूसरे देवताओंके साथ विश्राम करते थे और जैसे सूरज रातमें छिपकर सुबह आसमानके सिरेपर फिर निकल आता है ये प्रेतात्माएँ भी कब्रोंमें अपने पाप-पुण्यका लेखा-जोखा देकर एक नये जीवनमें प्रवेश करती थी। उनके पापोंका लेखा-जोखा ओसिरिसके सामने थोथ नामकी देवी करती थी। वह तराजूके एक पलड़ेपर 'सत' नामकी देवीके परोंको रखती थी और दूसरेपर आत्माके हृदयको और इस प्रकार इस हृदयको परोंसे तौलकर उसके पाप-पुण्यका अंदाज लगाती थी। वैदिक देवता वरुण भी इसी प्रकार मृतात्माओंके पाप-पुण्यका लेखा-जोखा रखता था और यम-राज उसके अनुसार उनको दुःख-सुख देता था।

मृत्युके बाद आदमीका क्या होता था, वह कहाँ जाता था, क्या करता था—यह सब अनेक प्रकारकी कहानियोंमें मिस्रकी चित्र-लिपिमें लिखा मिलता है। बड़ी दिलचस्प कहानियाँ इस सम्बन्धमें उन तस्वीरोंमें लिखी मिलती है जो पिरामिडोंकी दीवारोंपर खुदी हुई है। अनेक कहानियाँ अब विद्वानोंने पढ़ डाली है और उनसे प्राचीन मिस्रियोंके धार्मिक विश्वासोंपर खासा प्रकाश पड़ा है। उनके उस कालके साहित्यका एक बड़ा संग्रह ही तैयार हो गया है जिसे संसारका सबसे प्राचीन साहित्य मानना चाहिए। उस साहित्यकी अनेक कहानियोंमें तो कल्पनाकी इतनी ऊँची उड़ान है कि आजका पढ़नेवाला उन्हें पढ़कर हैरतमें आ जाता है। इस प्रकारकी एक कहानी रूसके सेंट पीटर्सबर्ग (अब लेनिनग्राद) के हर्मिटेज नामक संग्रहालयमें १९ वी सदीके अन्तमें मिल गई थी।

इस साहित्यको मृतकोंकी किताब कहते हैं क्योंकि उनके पन्नोंपर अनेक कहानियाँ, टोने-टोटके, जन्तर-मन्तर इसलिए लिखे हुए है कि उनकी मददसे मृतककी आत्मा मौतके बादकी अपने सफरकी राह आसानीसे तय कर सके और खतरोंसे बच सके। सेंट पीटर्सबर्ग वाली कहानी उसी वर्ग-

की है। उसमें एक ऐसे मल्लाहकी कथा दी हुई है जो अद्भुत लोककी यात्रा करता है और जहाज डूब जानेपर एक अद्भुत सर्पलोकमें जा पहुँचता है। वहाँसे लौटकर वह देवताके प्रसादसे स्वदेश पहुँच अपना हाल बयान करता है। यह बयान मिस्री साहित्य और संसारकी प्राचीनतम कहानी बन गया है। उसे पढ़ते ऐसा लगता है जैसे हम माँझी सिन्दबादकी कहानी पढ़ रहे हों। नीचे वह ज्योंकी त्यों दी जाती है—

विद्वान् अनुचरने कहा, "प्रभु, चित्तको प्रसन्न करें, क्योंकि हम पितृदेश पहुँच गये हैं। नौकाके अग्रभागमें हमारे आदमी बैठे और डाँडोंको चलाकर हम यहाँ आ पहुँचे। नौकाका अग्रभाग अब रेतीपर टिक गया है। हमारे सारे आदमी आनन्द मना रहे हैं, एक दूसरेका आलिंगन कर रहे हैं, क्योंकि हमारे अतिरिक्त अन्य भी भली-भाँति घर आ पहुँचे हैं। हमारे जनोंमें-से एक भी नहीं खोया और हम उवाउआतकी दूरतम सीमाओं तक जा पहुँचे थे। हमने सेनमुतके प्रदेशों तकको लाँघ लिया था। अब हम शान्तिपूर्वक लौट भी आये और आज यहाँ पितृदेशमें हैं। सुनें, मेरे प्रभु, यदि आप मुझे सहारा न देंगे तो मेरा कोई सहायक नहीं। जलसे शुद्ध हों, हाथोंपर जल डालें, तब फराऊनसे वक्तव्य निवेदन करें और आपके चित्त तथा वक्तव्यमें एकता स्थापित हो, वक्तव्यमें किसी प्रकारका पेंच या अस्पष्टता न हो। इस बातको न भूलें कि जहाँ मनुष्यका मुख उसकी रक्षा कर सकता है वहीं वह उसे ढक दिये जानेका कारण भी बन सकता है। (बातोंसे ही रक्षा भी हो सकती है, विपत्ति भी आ सकती है। मुँह ढककर तब वहाँ अपराधी ले जाये जाते थे। इससे इस पदका अर्थ विपत्तिका आगम है।) अपने हृदयकी चेतनाके अनुकूल आचरण करें, फिर जो कुछ आप कहेंगे उससे मेरा चित्त शान्त होगा।

"अब मैं आपको बताऊँगा कि मुझपर कैसी बीती। मैं ही नहेमकी खानोंके लिए चल पड़ा। डेढ़ सौ हाथ लम्बे और चालीस हाथ चौड़े जहाजमें चढ़ मैं समुद्रमें चला। हमारे जहाजमें डेढ़ सौ मिस्रके सर्वोत्तम

नाविक थे जिन्होंने आकाश-पाताल देखा था और जिनके हृदय सिंहसे भी अधिक साहसी थे। उन्होंने तो यह कहा कि वायु प्रतिकूल न होगी, बल्कि होगी ही नहीं। परन्तु समुन्दरके वक्षपर हमारे उतरते ही वायुका एक प्रबल झोंका आया और हमने किनारे पहुँचनेका जैसे ही प्रयास किया झोंके वेगवान् हो गये और आठ-आठ हाथ ऊँची लहरें उठने लगी। (नौका टूट गई), मैंने एक तख्ता पकड़कर किसी प्रकार जान बचाई परन्तु शेष सभी नष्ट हो गये, एक न बचा। अकेला, अपने चित्तके सिवा सर्वथा निमित्र तीन-दिन-तीन रात मैं उस तख्तेपर झूलता रहा और तब लहरोंने मुझे एक द्वीपके किनारे फेंक दिया। पेड़ोंके झुरमुटमें तनिक आराम करनेके लिए मैं पड़ रहा। अन्धकारसे फिर मैं आच्छन्न हो गया। तब मैंने मुँहके आहारकी खोजके लिए अपने पैरोंका उपयोग किया। मुझे अंजीर और अंगूर मिले, कई प्रकारके साग मिले—फल, छुहारे, गरी, तरबूज, मछली, पक्षी—किसी चीजकी वहाँ कमी न थी। मैंने अपनी भूख शान्त की और उससे जो कुछ बच रहा था उसे फेंक दिया। फिर मैंने एक खाई खोदी, आग जलाई और देवताओंके लिए यज्ञके साधन जुटाये।

"सहसा मैंने बिजलीकी कड़क-सी एक आवाज सुनी, जो मैंने समझा, समुद्रकी लहरकी थी। वृक्ष काँप उठे, पृथ्वी हिल गई। मैंने अपने मुँहसे पर्दा हटाया और देखा कि एक सर्प चला आ रहा है। वह तीस हाथ लम्बा था, दो हाथ नीचे लटकती उसकी दाढ़ी थी। उसके लाल रंगपर ऊँचे सुवर्ण चढ़ा हुआ था। वह मेरे सामने रुका, उसने अपना मुँह खोला और अभी मैं स्तम्भ-मंत्रवत उसकी ओर देख ही रहा था कि उसने कहना प्रारम्भ किया —

"तू यहाँ क्यों आया, तू यहाँ क्यों आया, तुच्छ जीव, तू यहाँ क्यों आया? यदि तूने यह बतानेमें देर की कि तू यहाँ क्यों आया तो मैं तुझे बता दूँगा कि तू क्या है—या तो फिर तू आगकी लपटकी भाँति लुप्त ही हो जायगा या कुछ ऐसी बात कहेगा जो मैंने पहिले कभी न सुनी या

पहिले कभी न आया।' तब उसने मुझे अपने मुँहमें लिया और ले जाकर अपनी बिलमें बिना कोई हानि पहुँचाये रख दिया। मैं सर्वथा सकुशल था, साबुत।

'तब उसने अपना मुँह खोला। मैं फिर भी उसके सामने पड़ा था। वह बोला—'तू यहाँ क्यों आया, तू यहाँ क्यों आया, तुच्छ जीव, इस द्वीपमें जो समुद्रके बीच है और जिसके तट लहरोंसे घिरे हैं?'

"बाहुओंको नीचे लटका मैंने उत्तर दिया। मैंने कहा—'फ़राऊनकी आज्ञासे डेढ़ सौ हाथ लम्बे और चालीस हाथ चौड़े जहाजपर चढ़कर मैं खानोंकी ओर चला। मिस्रके सर्वोत्तम डेढ़ सौ मांझी उसमें सवार हुए, मांझी जिन्होंने आसमान और पृथ्वी देखी थी और जिनके हृदय देवताओंके हृदयसे दृढ़तर थे। उन्होंने कहा कि वायु प्रतिकूल न होगी, वायु होगी ही नहीं। उनमेंसे हर एक दूसरेसे हृदयकी बुद्धि और भुजाओंकी शक्तिमें बढ़ा-चढ़ा था और मैं स्वयं उनमेंसे किसी बातमें कम न था। परन्तु जब इस समुद्रमें पहुँचे तब तूफान उठा और जब हम तटकी ओर बढ़े तब तूफान और बढ़ा और लहरें आठ-आठ हाथ ऊँची उठने लगीं। मैंने तो एक लट्ठा पकड़ लिया परन्तु शेष नष्ट हो गये, इन तीन दिनोंमें एक भी साथ न रहा और अब मैं यहाँ तेरे सामने हूँ, क्योंकि समुद्रकी एक लहरने मुझे इस द्वीपमें फेंक दिया है।'

"तब वह मुझसे बोला—'डर नहीं, डर नहीं, तुच्छ जीव, तेरा चेहरा दुःखका आवरण न पहिने। अगर तू यहाँ मेरे पास है तो इसका अर्थ है कि देवता तुझे जिन्दा रखना चाहता है। वही तुझे इस द्वीपमें लाया है, जहाँ किसी वस्तुकी कमी नहीं और जो सारी अच्छी चीजोंसे भरा है। देख, तू इस द्वीपमें चार महीने बिता, महीने पर महीना, तब देशके नाविकोंके साथ एक जहाज आएगा तब तू अपने देशको जाएगा और अपने नगरमें ही मरेगा। आओ अब हम बात करें, प्रसन्न हो, जो बात-चीतका आनन्द जानता है वह विपत्तिको सफलतासे झेल सकता है। अब

न कि इस द्वीपपर बसा है। यहाँ मेरे साथ भाई और बच्चे हैं—बच्चे
रे नौकर मिलाकर पचहत्तर सर्प हैं। इनमें मेरी इस कन्याको जोड़
ही है, जिसे सौभाग्यने मुझे दिया था परन्तु जिसपर भगवानकी अग्नि
गिरी और जो जलकर भस्म हो गई। और यदि तू समझता है और
तेरा हृदय धीर है तो तू निश्चय अपने बच्चोंको हृदयसे लगाएगा,
अपनी पत्नीका आलिंगन करेगा, तू फिर अपने गृहको देखेगा और सबसे
उत्तम तो यह है कि तू अपने देशको पहुँच जाएगा, स्वजनोंको
भेटेगा।' तब उसने मुझे प्रणाम किया और मैंने भी उसके सामने पृथ्वी-
पर माथा टेका, कहा कि 'अब मुझे तुमसे इस विजयपर यह कहना है—
मैं फराउनके सामने तेरा वर्णन करूँगा और उसे तेरी महत्ता बताऊँगा।
मैं तुझे विविध सुगन्धित द्रव्य, अंगराग, धूप, नैवेद्य, भेजूँगा जिनका
उपयोग हमारे मन्दिरोंमें होता है और जो देवताओंको चढ़ाये जाते हैं
मैं जो कुछ तेरे अनुग्रहसे देख सका उसका भी वर्णन करूँगा और सारं
जाति मुझे धन्यवाद देगी। मैं तेरे लिए यज्ञमें गन्धोंकी बलि दूँगा।
तेरे लिए पक्षी पकडूँगा और मिस्रकी सारी अद्भुत वस्तुओंसे भर-भ
मैं तेरे पास जहाज भेजूँगा, तुझे—उस देवताके लिए जो दूरदेश
निवासियोंका मित्र है पर जिसे वे निवासी नहीं जानते।'

"मेरी बातपर वह मुसकराया और बोला—'निश्चय तू गन्धोंका ध
नहीं है क्योंकि जिनके नाम तूने अभी गिनाये हैं वे मेरे लिए कुछ
नहीं है। मैं पुन्त देशका स्वामी हूँ और इन चीजोंका यहाँ अकराल
परन्तु हाँ, 'हाकेनू' द्रव्यको भेजनेकी बात तू कहता है वह नि:
इस द्वीपमें अधिक नहीं है, परन्तु एकबार जब तू इस द्वीपको
देगा फिर उसे न देख सकेगा क्योंकि यह तत्काल लहरोंमें परिवर्तित
जाएगा।'

"और देख, जैसा कि उसने कहा था, जहाज आ पहुँचा। ई

उसे खबर देनेके लिए दौड़ा पर वहाँ जाकर मालूम हुआ कि उसे मुझसे पहिले ही खबर मिल चुकी है। और वह मुझसे बोला—'सुयोग! स्वदेश की तेरी यात्रा, तुच्छ जीव, निर्विघ्न हो। तेरी आँखें तेरे बच्चोंको देखें और नगरमें तेरा यश फैले। यही तेरे लिए मेरी शुभकामना है।' तब अपनी बाहुओंको उसकी ओर लटकाकर मैं आगे झुका और उसने मुझे सत्, हाकेनु, रस, तेल, और अनेक प्रकारकी और अत्यधिक मात्रामें धूपादि, गजदन्त, कुत्ते, बनमानुस, हरित कपि तथा अनेक अन्य रत्न और कीमती वस्तुएँ भेंट की। इन सारी वस्तुओंको मैंने उस आये हुए जहाज़में रखा और दण्डवत् कर मैंने उसे पूजा अर्पित की। उसने तब मुझसे कहा—'देख, तू अपने देशमें दो महीनेमें पहुँचेगा, तू अपने बच्चोंको हृदयसे लगाएगा और शान्तिपूर्वक अपनी क़ब्रमें सोएगा।' उसके बाद मैं किनारे, जहाजकी ओर, गया और मैंने माझियोंको पुकारा। मैंने तटपर खड़े होकर द्वीपके स्वामी और उसके निवासियोंको धन्यवाद दिया।

"जब दूसरे महीने उसके कहनेके मुताबिक फराऊनके नगरमें पहुँचे, तब हम राज-प्रासादकी ओर बढ़े। मैं फराऊनके समीप गया और उसे उस द्वीपसे लाई हुई सारी वस्तुएँ प्रदान की और उसने एकत्रित जनताके सामने मुझे धन्यवाद दिया। इसीसे उसने मुझे अपना अनुचर बनाया और दरबारके मुसाहिबोंमें मुझे जगह दी। अब मुझे देखें कि कितना सह और देखकर मैं फिर इस तटपर पहुँचा हूँ। मेरी प्रार्थना सुनें, क्योंकि लोगोंकी बात सुनना अच्छा है। किसीने मुझसे कहा, 'मेरे मित्र, विद्वान् हो, तुम्हारी पूजा होगी।' और देखें, मैं यहाँ आ पहुँचा।"

× × ×

ईराक देशमें दजला-फ़रातकी घाटीमें प्राचीनकालमें तीन सभ्यताएँ फली-फूली—सुमेरी, बाबुली, असूरी सभ्यताएँ—तीनों एक दूसरीमें गुँथी, एकके बाद एक उठती। सुमेरी नदियोंके संगममुहानोंपर, ईराकके

इजिप्तमें आजसे कोई पाँच हजार साल पहले, बाबुली, उससे कुछ उत्तर बाबुल नगरके इर्द-गिर्द, लगभग चार हजार साल पहले, असुरी, दजला-फरातकी उत्तरी घाटीमें, करीब तीन हजार साल पहले। सुमेरियोंने उन सभ्यताओं-को लिखावट दी, कीलनुमा अक्षर दिये, बाबुलियोंने लिया और असुरोंने लिखे साहित्यकी रक्षा की।

पीछे आनेवाली सभ्यता अपनी पुरखा सभ्यताका विरसा सम्हालती गई। सुमेरमें छोटे-छोटे आजाद नगरोंके अपने-अपने राज थे जहाँ पहले पुरोहित-राजा राज करते थे। बाबुलका जब बादमें दबदबा बढ़ा तब वहाँ एक नई सामी जातिके सम्राट् हम्मुराबीने पहला बाबुली साम्राज्य खड़ा किया और अपनी रियायाको पहली बार अधिकार-कानून दिये। पर वहाँ सबसे ज्यादा ताकतवर असुर हुए जिनकी विजय और प्रतापका जिक्र उस कालके ससारके साहित्यमें हुआ। उनका राज एक ओर फारस दूसरी ओर मिस्र तक फैला। सारगोन, असुर नजीरपाल, और असुर बनिपाल इतिहासमें प्रसिद्ध हुए। उनकी जातिका नाम असुर था, प्रधान देवता और नगरका नाम असुर था। पहली बार उन्होंने वैज्ञानिक रीतिसे सेनाका सगठन किया। लड़ाईमें घोड़ों और घोड़ेजुते रथोंका इस्तेमाल किया। वे दाढ़ी और सिरपर लम्बे बाल रखते थे, खूँखार और ताकतवर थे, जब कोई देश जीतते वहाँके मर्दोंको तलवारके घाट उतार देते या गुलाम बना लेते, औरतों और मवेशियोंको हाँक ले जाते, समूची रियायाको उखाड़कर दूसरी जगह बसाते। पर दो बातें असुरोंने बड़े मार्केकी कीं—एक तो उन्होंने कलाका निर्माण किया, सब जगह उनके महल-इमारतें बनानेवाले राजों-कारीगरोंकी माँग हुई, ससारके सारे साहित्योंमें उनका कलावन्त-शिल्पी और असुर मय विख्यात हुआ। दूसरे उनके राजा असुर बनिपालने मिट्टी ईंटोंपर कीलनुमा अक्षरोंमें लिखे प्राचीन सुमेरी-बाबुली सभ्यताके साहित्यको अपने पुस्तकालयमें इकट्ठाकर उसकी रक्षा की।

हालमें पुराविदोंने उसे खोद निकाला है, जिससे हमें सुमेरी-बाबुली-असूरी सभ्यताओंकी जानकारी हुई।

उन्ही ईंटोंसे हमने जाना है कि वहाँ सबसे पुराने जमानेमें हर नगरके अपने-अपने देवता थे और जब-जब वे नगर एक दूसरेपर हावी होते उनके देवता भी उसी तरह प्रधान हो जाते। प्राचीन सुमेरी नगरोंके नाम थे—एरिदू, ऊरु, लारसा, उरुक, नुप्पुर, इसिन, कीश, कुतू, बाबिलू (बाबुल), बारसिप (बोरसिप्पा), सिप्पर और अक्काद। बादमें उत्तरमें असुरोंके नगर बसे—असुर (अश्शुर), निनुआ (निनेवे), अरबैल (अरबेला) और ईरान।

पहले तीन देवता प्रधान हुए—अनु, एन्लिल और इया। अनु आकाश या स्वर्गका देवता था, एन्लिल पृथ्वीका और इया जलका। एक दूसरा दल तीन देवताओंका और था—सिन (चन्द्रमा), शमश (सूरज), और इश्तर देवीका। धीरे-धीरे जब बाबुलका प्रभुत्व बढ़ा तब उसका देवता मरदुक भी देवताओंमें प्रबल हुआ। उसने अप्सूके मरनेपर उसकी रानी तियामत (अकाल और सूखेकी अजगरनुमा देवी) को वज्र मारकर देशके जलका उसकी गुजलकोंसे रक्षा की। देवता नबू पहले मरदुकका पुत्र मात्र था, बादमें प्रबल हो गया। इसी प्रकार पिछले कालमें एन्लिलके बेटे निनिबका भी रुतबा बढ़ा। नरगल नरकका राजा था, सुमेरियों—बाबुलियों-का यम, जिसकी पत्नी एरेश-कीगल नरककी स्वामिनी थी। सिनका पुत्र नुस्कू प्रकाशका देवता था, जैसे गिर्रू अग्निका। रम्मन या अदाद बादलों-बिजलीका देवता था, वर्षाका तुम्मूज़ देवी इश्तरका पति था जिसके मर-सियासे पुराना बाबुली साहित्य भरा पड़ा है। असुर (अश्शुर) असुरजाति का प्रधान देवता था। उसका मन्दिर असुर नगरमें था।

इन देवताओंके आपसी राग-द्वेष प्रबल थे और इनके बीच अक्सर लड़ाइयाँ होती रहती थीं। इन लड़ाइयोंमें कुछ मर भी जाया करते थे। इनके भिन्न-भिन्न परिवार थे और इन परिवारोंका आचरण मानव गृहस्थों-

काफी हो गया था। देवताओंके क्रोधका एक दिलचस्प उदाहरण सुमेरी-बाबुली साहित्यमें सुरक्षित है। देवता एन्लिलने आदमियोंके पापसे चिढ़कर देवताओंकी सभा की और उनके मतसे जल-प्रलय द्वारा सृष्टिका नाश कर देनेका निश्चय किया। देवता इयाने उसका भेद शुरुप्पक नगरके रहनेवाले मानव जिउसुद्दु (उत्नपिश्तिम-अत्रहसीस) को बताकर मानव जातिकी रक्षा की। जल-प्रलयकी यह कथा, जिसे जिउसुद्दु अपने वंशज गिल्गमेशसे कहता है, इस प्रकार है—

"मैं तुमसे एक भेदकी बात कहूँगा, और तुमसे देवताओंकी रहस्य कथा सब कह दूँगा। नगर शुरुप्पकको तू जानता है, उसे जो फरात (फरात्) के तटपर है—यह नगर पुराना हो गया था, और उसमें बसने वाले देवता—महान् देवताके चित्तमें हुआ कि जल-प्रलय करें

"दिव्य स्वामिन्—नेत्र देवता इया—उनके विरुद्ध था। उसने उनकी योजना एक नरकटकी झोपड़ीको सुनाकर कही—नरकटकी झोपड़ी! दीवार, ओ दीवार! सुन, हे नरकटकी झोपड़ी। समझ, ओ दीवार!"

यह इस प्रकार झोपड़ीके कहने इसलिए कहा गया कि जिउसुद्दु, जो उसी झोपड़ीमें रह रहा था, सुन ले। फिर देवताने खुलकर उससे कहा—

"शुरुप्पकके मानव, उबर्दुदके पुत्र, घरको गिरा डाल, एक नौका बना, माल असबाब छोड़ दे, जानकी फिक्र कर। जायदादको नोचा कर और (अचानक मर नहीं) जिन्दगी बचा ले! सारे जीवोंके बीज चुनले और नौकाके बीच ला रख।"

जिउसुद्दुने नौका बनाई और उसे जीव-बीजोंसे, भोजन आदिसे भर लिया और नगरवासियोंसे वह बोला—"शक्तिमान पवन देवता एन्लिल उससे घृणा करता है। इससे वह जिउसुद्दु उनके बीच नहीं रहेगा। जाते समय उसने झूठ कहा कि देवता उनपर कृपा करेंगे, रहमत बरसाएंगे। उसने अपने परिवारको फिर नावमें चढ़ा उसे सब ओरसे बन्द कर लिया।

और तब भयानक तूफान आया और मानो विकराल मेघोंके बीच स्वयं देवताओंको समग्र नागरिकोंने मशाल चमकाते देखा।

"भाई-भाईको न पहचान पाता था। मनुष्य और आदमीमें कोई फ़र्क नहीं था (ये लोग दिखाई नहीं पड़ते थे)। स्वयं देवताओंको जलप्लावनसे भय हो चला। वे गरके। वे देवता स्वर्गमें जा पहुँचे। देवता कुत्तोंकी भांति भयसे कांप रहे थे, स्वर्गकी देहलीमें एक दूसरेसे चिपटे। देवी इनन्ना (सुमेरी मातृदेवी, सामियोंकी इश्तर अथवा अस्तार्ते) प्रसव-पीड़िता नारीकी भांति चीख उठी। वह मधुभाषिणी देवरानी रो-रोकर देवताओंसे कहने लगी—'दिन मिट्टी हो जाय क्योंकि मैंने देवसभामें अनुचित कहा ! भला क्यों देवताओंकी सभामें मैंने कुवाच्य कहा ! क्यों अपनी ही प्रजाके लिए तूफ़ान बरपा किया ? मैंने क्या अपनी प्रजाको इसीलिए जना कि उनसे मछलियोंके अण्डोंकी तरह समुद्र भर जाय ?' "

छह दिन और छह रात तूफान और जलकी बाढ़ उमड़ती रही और जलकी सतहपर बहता जिउसुद्दू अपने साथियोंके लिए जार-जार रोता रहा। पर्वत शृखलाके ऊँचे शिखर मात्र जलके ऊपर थे। इन्हींमें एकसे नौका जा लगी और सप्ताह भर वहीं लगी रही। जिउसुद्दू कहता गया—

"सातवें दिन मैंने एक कबूतर निकाला और उड़ा दिया। कबूतर उड़ गया। वह चहुँओर उड़ता रहा पर कहीं उतरनेको जगह न मिली और वह लौट आया। मैंने एक अबाबील निकाली और उड़ा दी। अबाबील उड़ गई। वह चहुँओर उड़ती रही पर कहीं उतरनेको जगह न मिली और वह उड़ती हुई लौट आई। मैंने एक काग निकाला और उड़ा दिया। काग उड़ गया। और उसने घटते हुए जलको देखा। उसने (दाना) चुगा, जल हेला, डुबकियाँ लगाईं, लौटकर नहीं आया। मैंने (हविष) निकाला और कुर्बानी की (यज्ञ किया) चारों हवाओंके प्रति। पर्वतकी उत्तुङ्ग शिलापर मैंने आपान (मदिरा) चढ़ाया, और सात बोतल रख दिये,

उनके नीचे बेंत, दारू और धूप-अगुरु विगेरे। देवताओंने सुरभि सूँघी, देवताओंने प्रभूत गन्ध ली, देवता यज्ञके स्वामीके चारो ओर इकट्ठे हो गये। अन्तमें देवी (इनन्ना) ने पहुँचकर वह ग्रैवेयक (हार) उठाकर, जो देव अनने उसके पहननेमे बनाया था, कहा—'देवताओ, जैसे मैं अपने गलेकी नील मणियोंको नही भूलती, उसी प्रकार मैं इन दिनोंको नही भूल सकती। इन्हें सदा याद रखूँगी। देवता यज्ञमें पधारें, परन्तु एन्लिल न आवे, इस यज्ञका भाग वह न पावे, क्योंकि उसने कहना न माना, क्योंकि उसने जलप्रलयकी सृष्टि की और नाशके लिए मेरी एक-एक प्रजा गिन ली।' तब देवता एन्लिलने नाव देखी। एन्लिल क्रुद्ध हो उठा। उसने पूछा कि किस प्रकार कोई मर्त्य (उस प्रलयमें) बचकर निकल गया? श्रीमान् और शिष्ट भूदेव एकीने उससे तर्कपूर्वक कहा—

"देवताओंके देवता, वीर, क्यों, क्यों तूने कहना नही माना और बरबस प्रलय की? पाप पापीके ऊपर डाल, सीमोल्लंघनका अपराध सीमा लाँघनेवालेपर। कृपाकर, जिससे वह सर्वथा उच्छिन्न (नष्ट) न हो जाय, नितान्त विभ्रान्त (मूढ) न हो जाय। तेरे जलप्रलय लानेसे अच्छा है कि सिंह भेजकर प्रजाकी संख्या कम कर दे। तेरे जलप्रलय लानेसे अच्छा है कि भेड़िया भेजकर प्रजाकी संख्या कम कर दे।'

"क्रुद्ध देवता शान्त हो चला, एकी बूढ़ेके किये पापोंका दण्ड बहुतो-को देनेवाले उस देवकी भर्त्सना करता गया। अन्तमे एन्लिल नौकाके भीतर चला आया। उसने मेरा हाथ पकड़ा और मुझे बाहर लाया, स्वयं मुझे। वह मेरी पत्नीको भी बाहर निकाल लाया और मेरी बगलमें उसने घुटने टेकवाये (प्रणाम कराया)। उसने हमारे माथेका स्पर्श किया और हमारे बीच खड़े होकर हमें आशीर्वाद दिया—'पहले जिउसुद्दू मनुष्य था पर अबसे जिउसुद्दू और उसकी पत्नी निश्चय ही हमारी तरह देवता होंगे। जिउसुद्दू और उसकी पत्नी दूर नदियोंके मुहानेमें वास करेंगे।'"

यह उस जलप्रलयकी कहानी है जो सुमेर जाति दजला-फरातके मुहाने के मैदानमें ईसासे करीब ३५०० साल पहले घटी। तौरातकी वह नूहकी बाढ़ वाली कहानी ईसासे प्रायः ढाई हजार साल पहले उन ईंटों लिख ली गई थी जो असुर बनिपालके महल निनेवेके पुस्तकालयमें मिली है। यह कहानी कथाके भीतर कथा है जो गिलगमेश नामक सुमेरी-बाबुली महाकाव्यमें लिखी है। इस कहानीको प्राय सभी प्राचीन जातियोंने अपनी-अपनी धर्म पुस्तकों और साहित्योंमें लिख लिया। इसीलिए जल-प्रलयकी सारी कहानियोंका नायक नूह वह बिलकुल ही है, जैसे वही हिन्दू जल-प्रलयकी कहानीका नायक मनु भी है।

सुमेरी-बाबुलियोंका भी मिस्रियोंकी ही भांति परलोकमें विश्वास था, इससे उनकी कब्रोंमें मुर्दोंके साथ आरामकी सभी चीजें दफनाई जाती थीं। उनके राजाओंकी कब्रोंमें उनके दास-दासी, नम्बर आदि जिन्दा जहर पिलाकर अपने मालिकोंकी लाशके साथ दफनाये गये थे। उन कब्रोंमें इन लाशोंकी ठठरियाँ, रथ, बाजे, कीमती जवाहरात, सोने-चाँदीकी चीजें मिली हैं। जाहिर है कि सबकी जिन्दगी गरीबोंके लिए बड़ी मुश्किल और सांसतकी थी।

× × ×

ईराक मध्य दुनियाका पश्चिमी भाग है। ईराक उसके पच्छिममें फारसकी खाड़ीसे उत्तर तुर्की और अरमनी पहाड़ों तक सीरियासे मिला-जुला फैला हुआ है। ईराकका उत्तरी भाग सीरियासे मिलकर असुर या असुरिया देशका निर्माण करता था। उसके दक्खिन दजला और फ़रात नदियोंके बीच बाबुलका साम्राज्य था, और उससे भी दक्खिन नदियोंके मुहानेपर सुमेरियोंकी बस्तियाँ थी। यह समूचा इलाका एशियाका पच्छिमी भाग है। मिस्र, अफ्रीकाके उत्तरमें, भूमध्यसागरके किनारे है। सुमेरके लोग किस जातिके थे यह ठीक-ठीक कहना आज नामुमकिन है पर उनकी

तातनको समझकर जिन बाबुलियों, असुरों और खल्दियोंने अपने राज कायम किये उन्हें आज सामी कहा जाता है। प्राचीन मिस्री इसी प्रकार हामी कहलाते थे। ईरानी, इनके विपरीत, आर्य नस्लके थे और आर्य देवताओंको पूजते थे।

प्राचीन ईरानियोंकी धर्म पुस्तक (अवेस्ता) है जिसके पढ़नेसे उनके प्राचीन धर्म और विश्वासका पता चलता है। भारतके आर्योंकी ही भाँति, जिनके प्राचीन ईरानी भाई-बिरादर ही थे, वे प्राकृतिक देवताओं—द्यौग्, पृथ्वी, अग्नि, वरुण, असुर आदिकी पूजा करते थे। बादमें जरथुस्त्रने उस धर्ममें अनेक सुधार किये जो एक नई दृष्टिकोणके सूचक थे। जरथुस्त्रने ईरानियोंके जानवरों और आदमियोंकी कुर्बानी और होम (सोम) के विरुद्ध विद्रोह किया और प्राचीन धर्मको एक नई आचार-प्रधान व्यवस्था दी। प्रतापी असुर देवताको नियामक मान ईरानियोंकी व्यवस्था और आचारके देवता वरुणको उसने असुर महान् या अहुरमज्दाकी उपाधि दी और उसे सारे देवताओंमें ऊँचा माना। ऋत या सत्यको उसने विशेष मान दिया और असत्य या झूठके खिलाफ जंग छेड़ दिया। प्रकाश और अन्धकार या ऋत और मिथ्याकी इस लड़ाईमें सत्यकी विजयकी उसने घोषणा की। उसके नये सुधारवादी आन्दोलनके बावजूद प्राचीन ईरानियोंके देवता अहुरमज्दा और मित्र (ऋग्वेदका सूर्य) नये धर्ममें बने रहे। जरथुस्त्रका पहला चेला उसका भाई बना, फिर धीरे-धीरे हख़मनी सम्राट् भी उसके प्रभावमें आये। हख़मनी प्रभुताका सिकन्दर द्वारा दाराको हारसे जब ३३० ई० पू० में लोप हो गया तब करीब अगले सौ वर्षों तक ईरान-पर ग्रीकोंका राज रहा। २११ ई० में ससानी वंशने जरथुस्त्रके धर्मको ईरानका राजधर्म बनाकर उसकी फिरसे प्रतिष्ठा की और जब तक ६४० ई० में उस वंशका इस्लामकी सेनाओं द्वारा नाश न हो गया तबतक जरथुस्त्री धर्मका देशमें बोलबाला बना रहा। ईरानके बरबस मुसलमान बना लिये जानेपर अनेक ईरानियोंने अपने अग्निपूजक जरथुस्त्री धर्मके

प्राचीन मिस्रका शंकर इख्नातून : १२ :

मजहब चलानेवाले राजाओंमें पहला नाम इख्नातूनका है। जब-जब राजाओंके नाम गिने जायेंगे पहला नाम इस इख्नातूनका ही होगा। इख्नातूनका नाम इसराइलके बुद्धिमान राजा सुलेमान, अशोक, हारूँ रशीद और शार्लमानके साथ लिया जाता है। फिर दिलचस्प बात है कि यह इन सारे सभी राजाओंसे पहले हुआ, ईसासे करीब १३०० साल पहले, अशोकसे कोई ११ सदियां पहले।

और इख्नातूनने जग नहीं जीता, लड़ाइयाँ नहीं लड़ीं, अपने राजकी सीमाएँ बढ़ानेमें इंसानियतको बरबाद नहीं किया। उसने जीता जरूर, पर बजोर इंसानको नहीं, अनेक देवताओंको जीता, उनके ताकतवर पुजारियोंको जीता। उसने मजहब चलाया, नया मजहब, मिस्रके पुराने धर्मको उखाड़कर, पुराने अनगिनत देवताओंके दबदबेको मिटाकर। और अपना वह मजहब उसने तब चलाया जब अभी आदमी बालिग भी नहीं कहलाता, कुल १८ सालकी उम्रमें। इसके लिए उसे पागल कहा गया, "अमूनका अपराधी"। मगर न तो वह पागल था, और न, जैसा ऐसी हालतमें अक्सर हो जाया करता है, हत्यारेके छुरेसे वह मरा। हाँ, पर वह धर्मका दीवाना जरूर था, और दीवाना ही शायद वह मरा भी। पर सच वह पागल न था, सो पागल उसे कहा जरूर गया है।

इख्नातून शानदार पिता और रोबीली माताका बेटा था। पिता आमेनहोतेप तीसरेकी रगोंमें शायद सीरियाके मितन्नी आर्योंका खून बहता था, और माता तीईकी नसोंमें जंगली जातियोंके रक्तकी रवानी थी। इख्नातूनकी आत्माकी बेचैनी इससे स्वाभाविक थी। दो ताकतें इस

तरह मिलकर उस बालकमें जाग उठीं और उसने अपने मुल्कके मज़हब की काया पलट दी।

इखनातूनके पिता आमेनहोतेपने जब गद्दी छोड़ी तब बेटा बस ७-८ सालका था। १५ सालकी उम्रमें उसने अपना वह इतिहास प्रसिद्ध धर्म चलाया जो इजीलके पुराने नबियोंके लिए अचरज बन गया। २६-२७ सालकी उसकी उम्र थी जब उसकी तूफ़ानी ज़िन्दगीका अन्त हो गया। पर १३ और २६ सालके बीचके अपने १३ ही बरसके जीवनमें उसने वह किया जो सौ-सौ बरस पककर जीनेवाले नहीं कर सके।

इखनातूनने मिस्रके पुराने तवारीख़को देखा, देवताओं और अपने पुरखे फराऊनोंके लम्बे इतिहासको। देवताओंकी भीड़ और उनके पुजारियोंकी क़ुव्वतसे बेबस और नाचीज़ होते अपने पुरखोंको देख उसके मनमें बड़ी व्यथा जगी। बचपनकी ज़िन्दगीमें सपनोंका ताँता बँध जाता है, कल्पना आसमानमें बेहद पर मारा करती है। इखनातूनके मनके आसमानकी हदें न थीं और उसकी कल्पनाकी उड़ान क़ाबूके बाहर थी। जब-जब वह सोचता देवताओंकी वह भीड़ उसे बौखला देती और उसकी अराजकतामें, वह चाहता, एक व्यवस्था बन जाय। पुरखोंकी राजनीतिमें उत्तरी अफ़्रीकाके स्वतन्त्र इलाक़ोंको, दूर पच्छिमी एशियाके राज्योंको उसने मिस्रके फराऊनोंकी छायामें सिकुड़ते और हुकूमतके एक सूतमें नथते देखा था, और वह राज़की बात उसके मनमें बैठ गई।

उसने कहा—जैसे नील नदीके निकाससे फ़िलिस्तीन और सीरिया तक एक फराऊनका दबदबा है, क्यों नहीं देवताओंकी झूठी भीड़की जगह फराऊनी साम्राज्यकी सीमाओं तक एक देवताका राज व्यापे, बस एककी ही पूजा हो। चिंतनके समय उसकी नज़र देवताओंकी भीड़ पारकर सूरजकी गोलाईसे जा टकराई। उस चमकते आगके गोलेने उसकी आँखें चौंधियां दीं। नज़र उस चमकके परे न जा सकी। इखनातूनने जाना कि उसके

चिन्तनका जवाब मिल गया, दिलके पुराने घावका मरहम, और उसने सूरजको अपना इष्ट देव बनाया।

पुरानी जातियोंके विश्वासमें सूरजके गोलेने बराबर एक कुतूहल पैदा किया था और उसे जाननेकी कोशिश सभी जातियोंकी ओरसे हुई थी। ग्रीकोंका प्रोमेथियस् उसीकी खोजमें उड़ा था, हिन्दू पुराणोंके जटायुका भाई सम्पाती उसी अर्थ सूरजकी ओर उड़ा था और अपने पंखोंको झुलसाकर जमीनपर लौटा था। और उन उड़ानोंका नतीजा हुआ था आग की जानकारी।

पर कोई यह जान न पाया कि सूरजके पीछेकी हस्ती क्या है। पर लगा सबको ही था कि हस्ती है कोई उसके पीछे, सो वे उसको जानते नहीं। ऐसा ही हमारे उपनिषदोंको भी लगा था और उन्होंने सूरजके बिम्ब या गोलेको ब्रह्मकी आँख कही थी।

इख्नातूनको भी कुछ ऐसा ही लगा, कि सूरजके गोलेके पीछे कोई ताकत है जरूर, सो वह उस ताकतको नहीं जानता, उपनिषदोंके ऋषियोंकी ही तरह। पर उन ऋषियोंसे कितना पुराना था वह, करीब हजार साल पुराना! इख्नातूनने निश्चय किया कि कुदरतका सबसे महान, प्रकृतिका सबसे सत्तावान, दुनियाका सबसे सारवान सत्य सूरजके गोलेके पीछेकी वह हस्ती है जिसे हम नहीं जानते। पर न जानना सत्ताके न होनेका सबूत नहीं है, अव्यक्तकी पूजा तो हो ही सकती है चाहे उसकी सूरत न बन सके। और सत्ता जितनी ही अमूर्त होती है, जितनी ही जानकारीके दायरेमें नहीं समा पाती उतनी ही अधिक वह व्यापक होती है उतनी ही वह सारवान होती है, उतनी ही महान्। और जो उस अनजानी शक्ति तक हमारी मेधा नहीं पहुँच पाती, हमारी बुद्धि उसे नहीं पहचान पाती, उसका नूर, उस आगके दहकते गोले सूरजके रूपमें तो दुनियापर बरस ही रहा है, हरचन्द जाहिर है ही। वही सूरजके गोलेके पीछेकी हस्ती इख्नातूनके विश्वासकी दैवी शक्ति बनी, उसीको उसने पूजा।

पर देवता या हस्तीका बोध हो जाना एक बात है, उसका प्रचार बिलकुल दूसरी। ज्ञान जब इलहाम होता है, सत्यका जब दर्शन होता है, तब सवाल यह उठता है कि जानकारीकी सच्चाई, इलहामका ज्ञान अपने तक ही सीमित रक्खा जाय या दुनियामें इसे बाँटा जाय, उसका लाभ दूसरों-को भी कराया जाय। बुद्धने जब ज्ञान पाया तब यही सवाल उनके सामने उठा और उन्होंने उसे दूसरोंमें बांटनेका निश्चय किया। इतना ही नहीं बौद्ध धर्ममें जो अकेले निर्वाण पानेकी कोशिश है उससे समझदारोंने हीन-यान कहा यानी छोटी नाव जिसपर केवल एक ही इंसान अपने स्वार्थका टोकरा लेकर चढ़ सकता है। पर उसी धर्ममें जब उस बोधिसत्वकी समझ जगी, जिसने कहा कि जब तक एक जनकी भी पहुँचके बाहर निर्वाण रह जायगा तब तक मैं निर्वाण न लूँगा, तब और इसीसे वह दृष्टि महायानकी दृष्टि कहलाई जिसके बड़े जहाज़पर संसारके सारे प्राणी चढ़कर भवसागर पार कर सकते हैं।

जो पाता है वह देकर ही रहता है। इख़नातूनने पाया था और पाई हुई चीज़का अकेले तक ही इस्तेमाल उसे स्वार्थपर लगा और उसने तय किया कि वह देकर ही रहेगा। मगर मिस्रकी दुनिया तकको नये सन्देशों पहुँचना कुछ आसान न था, सामने अन्धविश्वासोंकी, परम्पराकी, देवताओंकी, उनके शक्तिमान पुजारियोंकी मोटी मज़बूत और अटूट दीवार खड़ी थी। पर वैसी ही अटूट इख़नातूनकी आस्था भी थी, उतनी ही दृढ़ उसका संकल्प भी था। और उसने उससे लोहा लेनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। यह नयेका पुरानेके विरुद्ध विद्रोह था। नये और पुरानेमें घमासान छिड़ गया।

इस लड़ाईमें उसकी-सी ही महाप्राण उसकी बहन और बीबी नेफ़ेर्तीती कमर कसकर मददको उसकी बगलमें खड़ी हुई। रूहों और नरकके देवता ओसिरिस और उसकी बीबी ईसिस, प्ताह और सेनरा और आमेन आदि देवताओंकी भारी कतारको सूरजके पीछेकी हस्ती वाले व्यापक देवताके ज्ञानमें इख़नातूनने बेधना चाहा। यह काम और मुश्किल इस वजहसे हो गया था

कि रा और आमेन सूरजके ही नाम थे जिनकी पूजा सदियों पहलेसे मिस्रमें होती आती थी और इसीलिए सूरजके नये देवता अतोनको रा और आमेनके मिस्री लोगोंको समझा पाना जरा मुश्किल था। यह बता पाना और कहना था कि सूरज या सूरजका गोला अतोन स्वयं वह विश्व-व्यापी देवता नहीं है, उसके पीछेकी शक्ति वह हस्ती है जिसका सूचक सूरजका गोला है और जो स्वयं दुनियाकी हर चीजमें रम रहा है, जो अकेला है, फकत अकेला और जिसके परे दूसरा कुछ नहीं है, जो अपने ही नूरसे रोशन है, जो चराचरका कर्ता है। शंकराचार्यके इस अद्वैत ब्रह्मका निरूपण, इजील-की पुरानी पोथियोंके नबियोंके एकेश्वरवाद, मुहम्मदके एक अल्लाहके इस्लाम होनेके सदियों-सदियों पहले इखनातून इन महात्माओंके विचारोंके बीजका आदि रूपमें प्रचार कर चुका था। और तब वह केवल १५ सालका था। ३० सालकी उम्रमें सिकन्दरने जहान् जीता, ३० सालकी उम्रमें शंकराचार्यने अपने वेदान्तसे भारतकी दिग्विजय की, उनकी आधी, १५ सालकी, उम्रमें इखनातूनने अपने अतोनके एकेश्वरवादकी महिमा गाई। एक भगवान्को सारे चराचरके आदि और अन्तका कारण माननेवाला इतिहासमें यह पहला एकेश्वरवादी धर्म था।

पुराने देवताओंके पुजारियोंने विद्रोह किया। पुराने राजाओंकी राजधानी थीबिज थी। इखनातूनने सूरजके नामपर अपनी नई राजधानी बसाई और उस राजधानीके बाहर वह कभी न निकला। राजधानी आखेतातेनकी चहारदीवारीके भीतर बने रहना उसके लिए आसान इसलिए और भी हो गया कि उसने अशोकसे हजार बरस पहले यह तय कर लिया था कि वह देश जीतने और लड़ाई लड़नेके लिए अपनी नगरीसे बाहर नहीं जायगा। वह गया भी नहीं। दूरके सूबोंने करवट ली पर वह हिला नहीं, अपने नये मजहबका प्रचार करता रहा।

उसके कण्ठमें आवाज डालता है,
उसकी जरूरतें पूरी करता है।

× × ×

तेरे कामोंको भला गिन कौन सकता है ?
और तेरे काम हमारे नजरसे ओझल हैं, नजरसे परे।
और मेरे देवता, मेरे मात्र देवता, जिसकी शक्तिका कोई दावेदार नहीं,

तूने ही यह जमीन सिरजी, अपने मनके मुताबिक।

× × ×

तू मेरे हियेमें बसा है, तुझे कोई दूसरा जानता भी नहीं,
अकेला मैं, बस मैं तेरा बेटा इखनातून, जान पाया हूं तुझे।
और तूने ही उसे इस लायक बनाया है कि वह तेरी हस्तीको जान ले।

जिस प्रकार आल्प्स पार करनेपर यूरोपियनको एक नई दुनियाका अनुभव होता है, उसी प्रकार एशियायी पर्यटकको भी फारस, मीडिया या अजेमी ईराककी पहाड़ी भूमिसे उतरकर अरबी ईराककी राजधानी आधुनिक बगदाद या प्राचीन बाबुलके मैदानमें पहुँचनेपर होता है। वहाँके निवासियोंके रस्म-रिवाज, उनके रहनेके तरीके, पहनावे सभी कुछ नये होते हैं। एशिया और मीडियाकी पोशाक यद्यपि लम्बी होती है फिर भी आदमीके बदनपर चुस्त और सटी रहती है परन्तु वहाँ बाबुलमें इसके विरुद्ध पोशाक ढीली-ढाली नीचे तक लटकती है। काली भेड़की खालकी टोपीके स्थानपर ऊँची पगड़ीके अनेक घेरे होते हैं और छुरी लगी कमरबन्द-की जगह क़ीमती शाल और बहुमूल्य खंजर ले लेते हैं। एक आधुनिक यात्री लिखता है कि "खलीफाके नगरमें प्रवेशकर उसकी सड़कोंको मैंने हर प्रकारके कपड़े पहने और हर रंगके आदमियोंसे भरा पाया। फारसके मकान छोटे हैं परन्तु बगदादके मकान कई मंजिल ऊँचे थे और उनकी जालीदार खिड़कियाँ बन्द थीं। विस्तृत बाजार लोगोंसे भरा था और मेरे चारों ओर असंख्य दुकानें और बाकी भवन थे। स्वरोंकी आवाज़ और रेशमी पोशाककी सरसराहटसे जान पड़ता था कि जैसे मधुमक्खियोंके छत्तेके पास पहुँच गये हों। क्योंकि यद्यपि आज बगदादमें उसके प्राचीन गौरवकी छाया भर रह गई है तथापि वह अब भी एशियाका विशालकाय सराय है।" परन्तु वस्तुतः जीवनकी भाव-भंगियों और तौर-तरीकोंमें कितना अन्तर पड़ गया है! फ़ारसी दरबारकी रौनक गायब हो गई है, समाजकी शक्ल बदल गई है, नर-नारियोंके पारस्परिक सम्बन्ध अब अपेक्षाकृत कम नियन्त्रित हैं और

प्रत्येक वस्तुमें आमोद-प्रमोद और नंगे विलासका परिचय मिलता है। यद्यपि ग्रीष्म ऋतुमें चमकती हुई धूपसे दिनमें भागकर निवासी अपने तहखानोंकी शरण लेते हैं तथापि रात्रिमें खुली छतोंपर, खुली हवामें शीतलताके वे आनन्द लेते हैं। नवम्बरसे फरवरी तकका सुंदर मौसम ग्रीष्मकी असुविधाओंका प्रतिकार कर देता है, यद्यपि वासना उमड़ पड़ती है और इन्द्रियोंको हर प्रकारकी मोहक उत्तेजना मिलने लगती है।

जहाँ तक कि इस रूपका सम्बन्ध है, सम्भवतः प्राचीनोंने भी इसी प्रकार अनुभव किया होगा। इसमें क्या कोई सन्देह है कि जो उन दिनों फारससे होकर फारस और मीडियाके राजकीय नगरोंसे व्यापारके उस महान् केन्द्रको जाते थे वे यही अनुभव न करते थे? परन्तु आधुनिक बगदाद उस पूर्वी जगत्की प्राचीन राजधानीके सामने क्या है? जब पूर्व और पच्छिमके और दक्षिणके व्यापार करनेवाले जहाजोंके व्यापारी वहाँ एकत्र होते होंगे, तब उसके नगरों और मैदानोंमें कितनी भीड़ दीख पड़ती होगी, जब खल्दी और ईरानी शाह अपने असख्य अनुचरोंके साथ यहाँ निवास करते होंगे तब इस नगरका गौरव कैसा रहा होगा, जब यह ससारके व्यापार और सारी जातियोंका आकर्षणका केन्द्र था तब उसकी शालीनता कैसी रही होगी? तब उन मैदानोंमें कितना जीवन इठलाता होगा, जहाँ आज भयानक नीरवता है, जो अब तक बहुतोंकी पुकार या सिंहकी गर्जनसे ही भग होती है।

यहूदी और ग्रीक लेखकोंने प्राचीन बाबुलका जो वृत्तान्त छोड़ा है, उसमें वहाँके धन और गौरवका पता चलता है। यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि उन्हीं वृत्तान्तोंसे अनियमित विलास और उच्छृङ्खल व्यभिचारका परिचय भी मिला है। बाबुलियोंकी दावतें असीम उन्मादकी होती थीं और दावतोंके बाद जिस उच्छृङ्खल आचरणका आरम्भ होता था उसका अनुमान करना कठिन है। आचारभ्रष्टता और नंगी विलासिताका जो रूप प्राचीन बाबुली जीवनके इन अवसरोंपर मिलता है वह इतिहासकी अन्य जातियोंमें

सर्वथा अज्ञात है। जब एक ऐसी ही पुनीत दावतके अवसरपर विजेता पारसियोंने प्रवेश किया तब बाबुलके अभिजातकुलीय और राजा उन्मत्त विलासितामें डूब रहे थे। बेलशज्जार हजारों सम्भ्रान्त दरबारियोंके साथ मदिराके दौरमें डूबा हुआ था जब अदृश्य हाथने राजकीय भवनकी दीवार-पर उसके अभाग्यकी भावी लिपि और उसे भयानक विपत्तिका बोध कराया। परन्तु आचरणकी यह भीषण उच्छृङ्खलता और पतन जितना पुरुषके आचरणमें प्रदर्शित होते उससे कहीं बढ़कर व्यापार नारियोंके जीवनमें दृष्टिगोचर होता। प्राचीन अन्तःपुर और विशेषकर पूर्वी सुल्तानोंके हरम संयम और सदाचारकी पराकाष्ठा रहे हैं परन्तु बाबुली नारीके चरित्रमें उसका कहीं आभास नहीं। इसी कारण नबी जब बाबुलके पतनको धिक्कारता है तब उसका वर्णन उस उन्मत्त विलासिनीके रूपमें करता है जो अपने नारीत्वसे उठकर दासत्वके गर्तमें उचित ही जा गिरती है। इन विलासकी दावतोंमें नारी सर्वथा नग्न शामिल होती थी और अपनी वेशभूषाके साथ ही वह लज्जाको भी तिलाञ्जलि दे देती थी। हेरोदोतस् तो यहाँ तक लिखता है कि बाबुलमें एक धार्मिक विधान भी था जिसके अनु-सार प्रत्येक स्त्रीको मिलित्ताके मन्दिरमें जीवनमें एक बार अपरिचितके साथ समागम करना पड़ता था और इस सम्बन्धमें वह अपने साथीको अपरिचित कहकर छोड़ नहीं सकती थी। इस विलासिताका प्रधान कारण निश्चय वह अनन्त धनराशि और वैभव था जो बाबुलके व्यापार द्वारा उस नगरमें धारासार बरसता था। जलवायु और धर्म उस पतित व्यापारमें सहायक थे।

व्यापारकी दृष्टिसे बाबुलकी स्थिति एशियाके प्रत्येक प्रदेशमें सम्भवतः अच्छी थी। स्थल मार्गसे व्यापार तो उसके लिए सुगम था ही नदीका जलमार्ग भी व्यापारकी कम सुविधा नहीं उत्पन्न करता था। दजला और फरात नामकी दो बड़ी नदियाँ इसके दोनों ओर बहती थीं। वे एशियाके भीतरी देशोंके साथ इसके आवागमनके दो प्राकृतिक साधन

बन गई थी, और निश्चय फारसकी खाडीमे पोत-व्यापारियोकी सुविधाएँ अरबकी खाडीसे कही अधिक थी। भारतका व्यापार भी बाबुलके साथ था और उसके कुत्तो तथा सिन्धु नामक मलमल कपड़के बाबुल आनेका वृत्तान्त तो बाइबिलमे भी मिलता है।

प्राचीन लेखक बाबुल निवासियोंकी विलासी और वैभवप्रिय लिखते हैं। उनके विलासके अनेक साधन और वस्तुएँ तो ऐसी थी जो बाबुलमे अप्राप्य थी और दूर देशसे आया करती थी। उनके लिबासमे सुविधा और उपादेयताके बजाय बहुमूल्यतापर कही अधिक ध्यान रखा जाता था। उनके सार्वजनिक अवसरो और यज्ञोंमे धनका नितान्त अपव्यय होता था और जिन बहुमूल्य सुगन्ध द्रव्योपर वे इतना खर्च करते थे वे केवल विदेशोसे ही आते थे। कीमती तथा मालकी कच्ची सामग्री भी बाहरसे ही आती थी; उस देशकी मिट्टीमे वह किसी प्रकार उपजाई न जा सकती थी। उनकी अनेक नागरिक सस्थाएँ भी यह सिद्ध करती है कि उस नगरमें विदेशियोका निरन्तर आना-जाना होता रहता था। इसीसे उनके उस व्यवहारका अर्थ लग सकता है जो वे अपने बीमारोंसे करते थे, उनके बीमारो बाजारमें खडे कर दिये जाते जिससे आने-जानेवाले उनसे बीमारीके सम्बन्धमें प्रश्न करें और सहानुभूति अथवा अन्य प्रकारके अपने ज्ञानसे उन्हे रोगमुक्त करनेमे सहायता करें। मिलित्ताके मन्दिरमें होनेवाली वेश्यावृत्ति तथा कुमारियोकी नीलामी भी इसी सिद्धान्तमे समझी जा सकती है।

इन व्यवहारोसे निष्कर्ष निकालना चाहे जितना सही हो, बाबुलके व्यापारके सम्बन्धमें विस्तृत वृत्तान्त प्रस्तुत करना निश्चय कठिन है। व्यापार सम्बन्धी सामग्री ग्रीक और इब्रानी लेखकोंके वृत्तान्तोंमे ही कुछ हद तक मिल सकती है। यद्यपि इसमें सन्देह नही कि तत्संबन्धी श्रम व्यर्थ न जायगा और उसका परिणाम वह चित्र होगा जो, चाहे वह

अपने सर्वांग पूर्ण न हों, हमारे सामने एक स्पष्ट रूप-रेखा अवश्य प्रस्तुत कर देगा।

इस सम्बन्धमें बाबुल द्वारा उत्पादित वस्तुओंपर एक नजर डाल लेना उपादेय होगा। हम जानते हैं कि उनके वस्त्र कई प्रकारसे बुने होते थे। वे कुछ तो ऊन, कुछ रेशो और कुछ सम्भवतः सूतके बने होते थे। हेरोदोतस लिखता है —वे रेशे अथवा सूतका चोगा पहनते हैं जो पैरों तक लटकता है, उसके ऊपर एक ऊनी कपड़ा और एक सफेद कुर्ता पहनते हैं जो सबको ढक लेता है। निश्चय इतने भारी वस्त्रकी उस देशमें आवश्यकता न थी और वह सम्भवतः प्रदर्शनप्रियताके कारण ही प्रयुक्त होता होगा, हाँ, सदियोंमें उसका आकार-प्रकार अवश्य बदल दिया जाता होगा। उनकी बुनावटकी वस्तुएँ अपने देशमें ही नहीं उपयुक्त होती थीं वरन् विदेशोंको भी भेजी जाती थीं। गलीचे जितने रंग-बिरंगे बाबुलमें बनते थे उतने एशियाके किसी अन्य देशमें नहीं। उनके ऊपर जो अनन्त चित्र बनते थे उनमेंसे एक वह भारतीय काल्पनिक जीव भी था जिसका सिर गरुड़ पक्षीका होता था, और जिसकी आकृति पर्सिपो-लिसके भग्नावशेषोंमें अनेक बार मिल चुकी है। बाबुलको उसका ज्ञान सम्भवतः फारसके जरिये हुआ। विदेशोंमें इनका उपयोग रंगमों और राजसभाओंमें होता था। फारसमें तो जितना इनका उपयोग होता उतना किसी अन्य देशमें न था। ईरानी अमीर केवल फर्शको ही नहीं अपने पलंग और सोफोंको भी इन गलीचोंसे ढक लेते थे। उनकी प्राचीन समाधियाँ तो बराबर इन्हींसे अलंकृत होती थीं। सम्राट् कुरुषकी समाधि-पर एक नीले गलीचेका अलंकरण है।

बाबुली वस्त्रोंकी बाहर कम माँग न थी। उनमेंसे एक प्रकारके वस्त्र जिनको ग्रीक सिन्दोनिस कहते थे, अत्यधिक मात्रामें प्रसिद्ध थे। वे साधारणतः सूतके बने होते थे और ये अपने रंगोंकी चमक और बुनावटकी बारीकीके कारण अत्यन्त मँहगे दामों बिकते थे। सिकन्दरने

बन गई थी; और निश्चय फारसकी खाड़ीमे पोत-व्यापारियोंकी सुविधाएं अरबकी खाडीसे कही अधिक थी। भारतका व्यापार भी बाबुलके साथ था और उसके कुत्तो तथा सिन्धु नामक मलमल कपड़ेके बाबुल आनेका वृत्तान्त तो बाइबिलमे भी मिलता है।

प्राचीन लेखक बाबुल निवासियोंको विलासी और वैभवप्रिय लिखते है। उनके विलासके अनेक साधन और वस्तुएं तो ऐसी थी जो बाबुलमें अप्राप्य थी और दूर देशसे आया करती थी। उनके लिबासमें सुविधा और उपादेयताके बजाय बहुमूल्यतापर कही अधिक ध्यान रखा जाता था। उनके सार्वजनिक अवसरों और यज्ञोमे धनका नितान्त अपव्यय होता था और जिन बहुमूल्य सुगन्ध द्रव्योंपर वे इतना खर्च करते थे वे केवल विदेशोंसे ही आते थे। कीमती तथा मालकी कच्ची सामग्री भी बाहरसे ही आती थी; उस देशकी मिट्टीमे वह किसी प्रकार उपजाई न जा सकती थी। उनकी अनेक नागरिक संस्थाएँ भी यह सिद्ध करती है कि उस नगरमें विदेशियोका निरन्तर आना-जाना होता रहता था। इसीसे उनके उस व्यवहारका अर्थ लग सकता है जो वे अपने बीमारोंसे करते थे, उनके बीमारी बाजारमें खड़े कर दिये जाते जिससे आने-जानेवाले उनकी बीमारीके सम्बन्धमें प्रश्न करें और सहानुभूति अथवा अन्य प्रकारके अपने ज्ञानसे उन्हे रोगमुक्त करनेमे सहायता करें। मिलिताके मन्दिरमें होनेवाली वेश्यावृत्ति तथा कुमारियोंकी नीलामी भी इसी सिद्धान्तसे समझी जा सकती है।

इन व्यवहारोंसे निष्कर्ष निकालना चाहे जितना सही हो, बाबुलके व्यापारके सम्बन्धमें विस्तृत वृत्तान्त प्रस्तुत करना निश्चय कठिन है। व्यापार सम्बन्धी सामग्री ग्रीक और इब्रानी लेखकोंके वृत्तान्तोंमे ही कुछ हद तक मिल सकती है। यद्यपि इसमें सन्देह नही कि तत्सम्बन्धी श्रम व्यर्थ न जायगा और उसका परिणाम वह चित्र होगा जो, चाहे वह

बने वस्त्रोंसे उनकी तुलना की जाती और वे राजाके परिधानमें ही काम आते थे। कुरुपकी समाधिपर भी वे मिले हैं। उस समाधिपर ईरानी सम्राट् द्वारा जीवनमें उपयुक्त होनेवाली सारी वस्तुओंका संग्रह है। यदि हम इस बातको याद रक्खें कि बाबुल एक ओर आयोनियाँ और दूसरी ओर अरब तथा सीरियाके कितना निकट था तो हमें वहाँके बुने कपड़ों और गलीचोंकी बारीकीपर कुछ भी आश्चर्य न होगा। आखिर इन देशोंमें समारकी सबसे अच्छी रुई पैदा होती थी।

बुनाईके केन्द्र न केवल बाबुलमें ही वरन् उस देशके अन्य नगरोंमें भी स्थापित थे जिन्हे फरात और दजलाके किनारे सेमीरेमिसने मीडिया और फारससे आई हुई वस्तुओंके बाज़ारोंके रूपमें स्थापित किया था। इन्हीं नगरोंमें देशी व्यापारकी आढ़तें भी थीं। इनमें मुख्य नगर फ़रातके तटपर बाबुलसे पन्द्रह मील नीचे अवस्थित था जिसका ज़िक्र इतिहासमें कुरुपके कालसे भी पहले हुआ है। ये ही नगर फ्लेक्स और सूतकी बुनी वस्तुओंके केन्द्र भी थे और वे इतिहासकार स्त्राबोके समय तक उनके केन्द्र बने रहे।

इनके अतिरिक्त बाबुली विलासकी अनन्त वस्तुएँ अपने देशमें प्रस्तुत करते थे। अपने उष्ण वातावरणसे रक्षा पानेके लिए वे मीठा जल प्रस्तुत करते थे। टहलनेके लिए पशुओंकी सुन्दर आकृतियोंसे अलङ्कृत मूठोंकी छड़ियाँ भी बाबुली नागरिकके हाथमें रहती थीं। इन छड़ियोंकी मूँठें अक्सर रत्नजटित होती थीं।

कीमती पत्थरोंका प्रयोग मुहर करनेवाली अँगूठियोंके बनानेमें भी होता था और यह मुहर बाबुली कागज़ातपर दस्तख़तका काम देती थी। बहुमूल्य पत्थरोंकी कटाईका काम जितनी सफ़ाई और खूबसूरतीसे बाबुली करते थे शायद दुनियाकी किसी जातिने कभी नहीं किया। फ़्रान्सीसी सरकारके संग्रहमें जो एक गोल अँगूठीनुमा मुहर है वह लालकी बनी है। और उसके ऊपर एक सुन्दर छोटा अभिलेख खुदा है। उसके साथ ही

हवाके समय जाते हैं और जब वह रेतको उडा देती है तब वे उन्हें प्राप्त करते हैं ।" वह एक स्थानपर फिर लिखता है कि "बाल्वीमें लाये हुए सबसे अच्छे और बडे पन्ने तीरमे हरक्यूलिजके मन्दिरमें हैं" भारतमे आनेवाले रत्न पश्चिमी घाटके पहाड़ोमे भी मिलते थे। ये रत्न अधिकसे-अधिक सख्यामे भडोंच या प्राचीन वेरीगाजा और कम्बादाके पास भी मिलते थे । इन्हीके पासके समुद्र तटसे पश्चिमी माझियोका संबन्ध भी था । ऊपर बताया जा चुका है कि बाबुलमें भारतसे कुत्ते भी आते थे। इन कुत्तोंकी नस्ल ससारमे सबसे बडी और मजबूत होती थी और इसी कारण वे बनैले जन्तुओके शिकारमे काम आते थे । वे सिंह तकसे लड़ जाते थे और उनपर वे उन्हें देखते ही हमला करते थे। इस प्रकारके कुत्तोंकी एक नस्ल सिकन्दरने भी पजाबमें देखी थी और एक कुत्तेको उसने शेरसे लड़ाया भी था । ईरानी तो शिकारसे बडा प्रेम करते थे और उसे व्यायाम समझते थे । इसी कारण ये कुत्ते भी उनकी आवश्यकता सिद्ध हुए और बादमें ऐशकी भी एक चीज समझे जाने लगे। ईरानी उन्हें बड़ी संख्यामें रखते और अपने साथ यात्राओ और युद्धोमें ले जाते थे। इन कुत्तोंपर वे काफी धन व्यय करते थे । क्षयार्षके सम्बन्धमे हेरोदोतस् लिखता है कि वह अनन्त सख्यामें कुत्ते लेकर ग्रीसपर चढाई करने गया था । बाबुलका क्षत्रप एक तो कुत्तोको इतना पसन्द करता था कि उसके चार नगरोंकी आय केवल इन्ही कुत्तोंपर व्यय होती थी और वे नगर अन्य करोंसे मुक्त थे। इनमें व्यापार भी भारतसे काफी होता होगा यद्यपि इनकी नस्ल बाबुलमें भी कालान्तरमें उत्पन्न की जाने लगी होगी।

मतेवियसकी रायमें, जहाँसे ये कुत्ते आते थे वहीसे बहुमूल्य पत्थर भी आते थे। और इस प्राचीन ग्रन्थकारका यह वृत्तान्त एक आधुनिक पर्यटकने अनुमोदित कर दिया है। वेनिसका यात्री मार्को पोलो अपने भ्रमण-वृत्तान्तमें भारतके कुत्तोंका भी वर्णन करता है। वह लिखता है कि वे इतने ताकतवर थे कि सिंहोंको भी फाड डालते थे।

युद्धके अवसरोंपर जितनी प्रधानता एशिया माइनरको देते उतनी अपने और किसी सूबेको नहीं और उस प्रान्तके साथ वे सर्वदा यातायात द्वारा सम्पर्क बनाये रखना चाहते। परन्तु हेरोदोतस्के वृत्तान्तसे तो प्रमाणित है कि ईरानी नगरोंको एशिया माइनरसे जोड़नेवाले इस प्रशस्त मार्गपर कारवाँ भी चलते थे। उसका कहना है कि यह मार्ग बाबुलसे नहीं सूसासे चलता था परन्तु इन दोनों नगरोंका पारस्परिक सम्बन्ध इतना गहरा था कि इस वक्तव्यसे मार्गके मूलके विषयमें कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता।

इसी प्राचीन मार्गपर इस्पहान और स्मिरनाके बीच आज भी कारवाँ चलते हैं। फ्रेंच यात्री तावर्नियेने इसका पूरा वर्णन किया है। आज यह मार्ग स्मिरनासे तोकात और तोकातसे एरिवान जाता है। इस मार्गके केवल उत्तरार्द्धमें परिवर्तन हुआ है क्योंकि इस्पहान जानेके लिए यात्रियोंको उन सिएह झील्के बाद उत्तर-पूर्व फिर जाना पड़ता है। इसके विरुद्ध प्राचीन यात्री इतना पूर्व न जाकर दक्षिणकी ओर बढ़ दजलाका तट पकड़ लेते थे।

फिर एक विषयमें, हेरोदोतस्के वृत्तान्तानुसार, प्राचीन और अर्वाचीन मार्गोंमें समता थी, दोनों लम्बी राहका अवलम्बन करते जिससे वे आबाद प्रदेशोंसे होकर जा सकें और दस्युओंके आक्रमणोंसे बच सकें। सीधा रास्ता मेसोपोतामियाँके मैदानोंसे होकर जाता जहाँ खानाबदोश जातियोंकी घुमक्कड़ प्रवृत्तियोंके कारण रक्षाका सर्वथा अभाव होता। इसी कारण प्राचीन और अर्वाचीन दोनों कालोंमें यात्राका मार्ग उत्तरकी ओरसे अर्मनी पहाड़ोंकी छायामें होकर जाता जिससे यात्रीकी रक्षा हो सकती।

कारवाँकी यात्राकी विविध मञ्जिलें नियत थी। हेरोदोतस्के विचारमें इन मञ्जिलोंकी दूरी सात-आठ घंटोंकी यात्रा थी। और तावर्नियेके वृत्तान्तसे प्रमाणित है कि ठीक इतनी ही दूरी मालसे लदे हुए ऊँटके कारवाँ एक दिनमें तै कर पाते थे। परन्तु निःसन्देह घोड़ोंके कारवाँ इस परिमाणसे

तीसरा उत्तरकी ओर मुड जाता। इसी तीसरे मार्गके ज़रिये भारत और बाख्त्रीके बीच यातायात होता। उसकी राजधानीका नाम भी बाख्त्री था और वह पूर्वी एशियाका व्यापार-केन्द्र था।

उत्तरी भारतके सौदागर उत्तरकी राहमे बाख्त्री पहुँचते और वहाँ अपने रग बेचते। फिर वे कारवाँ बनाकर गोबीके रेगिस्तानकी ओर पहुँचते जहाँसे पश्चिमी एशियाके लिए रग और सर्वोत्तम ऊन जाता। इसी गोबी रेगिस्तानमें सोना पाया जाता था। क्तेसियम् लिखता है: "जिस मरुभूमिमें सोना निकलता है और जहाँ गरुड होता है वह अत्यन्त उजाड है। भारतीयोंके पडोसी बाख्त्री निवासी कहते हैं कि गरुड़ स्वर्णकी रक्षा करते हैं, यद्यपि भारतीय इसे अस्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि गरुड केवल अपने बच्चोंकी रक्षाके लिए मुस्तैद रहते हैं। भारतीय हजार दो हज़ारकी संख्यामें सशस्त्र होकर उस मरुभूमिमें जाते हैं। परन्तु वे एक बार उधर जाकर तीन-चार वर्षसे पूर्व नही लौट पाते।" स्पष्ट है कि ये भारतीय उत्तरी प्रदेशोंके थे और उल्लिखित मरुभूमि गोबीकी थी।

स्त्राबोने लिखा है कि किस मार्गसे बाबुलके भाण्ड मेडिटेरेनियन सागर तटको ले जाये जाते थे। यह मार्ग मैसोपोतामियाके ठीक बीचसे उत्तरकी ओर चलता और पचीस दिन चलकर अन्थेमूसियाके पास फ़रात पहुँचता। वहाँसे पश्चिम मुड यह सागर तटपर जा पहुँचता। इस मार्गपर प्रबल कारवाँ ही चल सकते थे क्योंकि राहमें ख़ूनी जातियोंके आक्रमणका बडा भय रहता था। अनेक बार तो उनको लूटसे बचनेको कर देकर जाना होता। यही मार्ग संभवतः ईरानी शासनमें भी प्रयुक्त होता रहा।

सारदिस और एशिया माइनरके अन्य ग्रीक व्यापारी नगरोंको जानेवाले एक दूसरे सैन्य-मार्गका विस्तृत वर्णन हेरोदोतस्ने किया है। इसे ईरानी सम्राटोंने प्रभूत व्ययसे निर्मित किया था। इसके निर्माणका प्रधान कारण और आवश्यकता राजनीतिक थी। ईरानी ग्रीकोंके साथ

अफ्रीकाका महाद्वीप अंध-महाद्वीप कहलाता है क्योंकि उसके सबसे बड़े हिस्सेपर अज्ञानका अँधेरा छाया रहता है। समुद्रसे लगे चारों किनारोंको छोड़कर बाकी समूचा महाद्वीप घने आदिम जंगलोंसे ढका हुआ है। पच्छिम-दक्खिन और पूरबके किनारोंपर कुछ गहराई तक समय-समयपर यूरोपकी जातियोंने हमले करके अपनी बस्तियाँ बसा ली है या अपने साम्राज्य खड़े कर लिये हैं। सहाराके उत्तरमें भू-मध्य सागर तक हब्शी-इस्लामी या अरबी जातियाँ बसी है। मिस्रपर तो बड़े प्राचीन-कालसे ही एक महान् सभ्यताका अधिकार हो चुका था और वहाँ अरबों-की हुकूमत जमनेके बाद नूबिया और सहारा तककी सारी हब्शी जातियाँ मुसलमान हो गई। पास ही अबीसीनिया या एथियोपियाका संसारमें सबसे पुराना ईसाई राज्य है। इन जगहोंमें मिली-जुली हब्शी जातियाँ रहती हैं जो, चाहे मजहबसे मुसलमान या ईसाई है, बोलती वे अपनी-अपनी हब्शी बोलियाँ ही हैं।

सहाराके दक्खिन दूर तक तीनों दिशाओंमें फैली अनेकानेक हब्शी जातियाँ रहती है जिनकी अपनी-अपनी बोलियां है, अपनी-अपनी लोक-कथाएँ है, अपनी-अपनी किंवदन्तियाँ और अपनी-अपनी कहावतें है। यही उनका साहित्य है—लोककथाओं, किंवदन्तियों और कहावतोंके आधारपर खड़ा। इनमें उन हब्शियोंका भी साहित्य है जो अब अफ्रीकामें नहीं रहते, कनाडा और अमेरिकामें रहते है और जिन्हें "नीग्रो" कहते हैं। इन्हें यूरोपीय जहाज़ोंके मालिक अफ्रीकाके सागर तीरकी इनकी बस्तियोंपर छापे मारकर सदियों पहले पकड़ ले गये थे और उन्हें यूरोपके अनेक

कहीं अधिक तेज चलते थे। चूँकि यह मार्ग अत्यन्त निरापद था, इसमें सन्देह नहीं कि सौदागर और यात्री अकेले भी इसपर चला करते थे।

बाबुलका एक तीसरा व्यवसाय-मार्ग अर्मनीकी दिशामें जाता था, उत्तरकी ओर। अर्मनी सौदागरोंको फरातके जलमार्गका लाभ था और उसी मार्गसे वे अपनी वस्तुएँ, विशेषकर शराब, बाबुल पहुँचाते थे। हेरोदोतस्ने इस जल-यात्राका उल्लेख किया है और उसके वृत्तान्तसे ज्ञात पड़ता है कि अर्मनी जहाजों या बँधे बेड़ोंकी बनावट दजलामें चलनेवाले उन आजके ही जहाजोंकी-सी थी जिन्हें 'किलेत' कहते हैं। इन नावों-का पंजर मात्र लकड़ीका था जिसके ऊपर चमड़ा चढ़ा होता था और तख्तेसे यह नीचे पाट दिया जाता। उसका आकार अण्डेका-सा हो जाता। उनमें सौदेकी चीजें विशेषकर शराबके भारी पीपे भर दिये जाते और डाँड़ोंके सहारे धारामें वे चल पड़तीं। ये नावें बड़ी-छोटी सभी प्रकारकी थीं। हेरोदोतस्ने कुछ १२००० टन तक माल ढोनेवाली देखी थीं। बाबुल पहुँचकर सौदागर मालके साथ-साथ नावका पंजर बेच डालते और साथ लाये गधोंपर खालें लादकर स्वदेश लौट जाते। वह लिखता है कि धारा इतनी तेज थी कि नावें उसमें लौट ही न सकती थीं। इसी प्रकार जर्मनीमें भी जो नावें डैन्यूबकी राह बिकने जाती हैं वे मालके साथ स्वयं भी बिक जाती हैं।

इस प्रकार बाबुलका व्यवसाय एशियाके दूर-दूरके देशोंसे फैला था, अपने देशकी उपज वहाँ पहुँचाने और उससे अधिक अपनी आवश्यकताकी वस्तुएँ प्राप्त करनेके लिए। बाबुलका नगर-जीवन इतना विलासप्रिय था कि दूसरी विविध आवश्यकताओंकी पूर्ति केवल उस देश-की उपजसे न हो सकती थी, उस कालकी सारी सभ्य जातियोंके व्यापार-का उसमें योग था।

अफ्रीकाका महाद्वीप अंध-महाद्वीप कहलाता है क्योंकि उसके सबसे बड़े हिस्सेपर अज्ञानका अँधेरा छाया रहता है। समुद्रसे लगे चारों किनारोंको छोड़कर बाकी समूचा महाद्वीप घने आदिम जंगलोंसे ढका हुआ है। पश्चिम-दक्खिन और पूरबके किनारोंपर कुछ गहराई तक समय-समयपर यूरोपकी जातियोंने हमले करके अपनी बस्तियाँ बसा ली हैं या अपने साम्राज्य खड़े कर लिये हैं। सहाराके उत्तरमें भू-मध्य सागर तक इस्लामी-इस्लामी या अरबी जातियाँ बसी हैं। मिस्रपर तो बड़े प्राचीन-कालसे ही एक महान् सभ्यताका अधिकार हो चुका था और वहाँ अरबों-की हुकूमत जमनेके बाद नूबिया और सहारा तककी सारी हब्शी जातियाँ मुसलमान हो गईं। पास ही अबीसीनिया या एथियोपियाका संसारमें सबसे पुराना ईसाई राज्य है। इन जगहोंमें मिली-जुली हब्शी जातियाँ रहती हैं जो, चाहे मजहबसे मुसलमान या ईसाई हैं, बोलती वे अपनी-अपनी हब्शी बोलियाँ ही हैं।

सहाराके दक्खिन दूर तक तीनों दिशाओंमें फैली अनेकानेक हब्शी जातियाँ रहती हैं जिनकी अपनी-अपनी बोलियाँ हैं, अपनी-अपनी लोक-कथाएँ हैं, अपनी-अपनी किंवदन्तियाँ और अपनी-अपनी कहावतें हैं। यही उनका साहित्य है—लोककथाओं, किंवदन्तियों और कहावतोंके आधारपर बना। इसमें उन हब्शियोंका भी साहित्य है जो अब अफ्रीकामें नहीं हैं, कनाडा और अमेरिकामें रहते हैं और जिन्हें "नीग्रो" कहते हैं। इन्हें यूरोपीय जहाजोंके मालिक अफ्रीकाके सागर तीरकी इनकी बस्तियोंपर छापे मारकर सि... पकड़ ले गये थे और उन्हें यूरोपके अनेक

स्वय इन जातियोंके सयानोंने अपने इस लोकसाहित्यमें वर्गीकरण किये हैं और इन्होंने अपने पौराणिक विश्वासों और साधारण लोककथाओं या किवदन्तियोंमें भेद किये हैं। इस प्रकार उन्होंने अपने साहित्यके प्राय: ६ वर्ग किये हैं। पहला वर्ग उन किवदन्तियों या पारिवारिक कहानियोंका है जिनमें जानवरोंका भी इस्तेमाल हुआ है और जानवर आदमीकी तरह बातचीत और आचरण करते हैं। इन कहानियोंको वहाँ "मिन्गोगो" कहते हैं। दूसरा वर्ग "माका" कहलाता है जिनमें साधारण पुटीकी कहानियाँ होती हैं। तीसरा वर्ग प्राय: ऐतिहासिक कहानियोंका है और उनमें जातियोंकी पुरानी घटनाओंका जिक्र होता है। उन्हें 'मानुन्ता' कहते हैं। चौथा वर्ग कहावतोंका है और जिन्हें [illegible] कहलाता है। पाँचवें वर्गमें गीत हैं और छठेमें पहेलियाँ। पहेलियोंको इन्हीं लोग 'जिनेगो' कहते हैं। इस साहित्यका एक दूसरा वर्गीकरण इस प्रकार भी किया जा सकता है—

(१) जानवर सम्बन्धी कहानियाँ, (२) देव और दानव सम्बन्धी कहानियाँ, (३) हब्शियोंके जीवन सम्बन्धी कहानियाँ, (४) पौराणिक कहानियाँ और किवदन्तियाँ और (५) बाहरसे आई हुई कहानियाँ।

इन कहानियोंमें अनेक ऐसी चक्करदार हैं जिनमें कहानीके अंदर कहानी खुलती चली जाती है। उनमें राजाओं और उनकी प्रजाके वर्णन हैं, जानवरों और अलौकिक जीवों, देवताओं और दानवोंका। जानवरोंकी कहानियोंमें कछुए और खरगोशका जिक्र होता है, जहाँ जानवर अपनी चालाकीका बार-बार परिचय देता है। इस प्रकारकी चक्करदार कहानियाँ कछुए और खरगोशकी कहानियोंके अलावा [illegible] भी कही गई हैं जो पूर्व और [illegible] हैं। एक दूसरा चक्कर [illegible] आदमीकी कहानियोंका है, तीसरा सयाने जानवरकी [illegible] और [illegible] आदमीकी कहानियोंका और [illegible]। और इस प्रकारकी कहानियोंके चक्कर [illegible] है।

स्वयं इन जातियोंके सयानोंने अपने इस लोकसाहित्यमें वर्गीकरण किये हैं और इन्होंने अपने पौराणिक विश्वासों और साधारण लोककथाओं या किंवदन्तियोंमें भेद किये हैं। इस प्रकार उन्होंने अपने साहित्यके प्राय ६ वर्ग किये हैं। पहला वर्ग उन किंवदन्तियों या पारिवारिक कहानियोंका है जिनमें जानवरोंका भी इस्तेमाल हुआ है और जानवर आदमीकी तरह बातचीत और आचरण करते हैं। इन कहानियोंको वहाँ "मि-सोमो" कहते हैं। दूसरा वर्ग "साका" कहलाता है जिनमें साधारण बूढ़ोंकी कहानियाँ होती हैं। तीसरा वर्ग प्राय ऐतिहासिक कहानियोंका है और उनमें जातियोंकी पुरानी घटनाओंका जिक्र होता है। उन्हें "माल्लुन्दा" कहते हैं। चौथा वर्ग कहावतोंका है और "जि-साबू" कहलाता है। पाँचवें वर्गमें गीत हैं और छठेमें पहेलियाँ। पहेलियोंको स्वाही लोग 'जितोंगो सोंगो' कहते हैं। इस साहित्यका एक दूसरा वर्गीकरण इस प्रकार भी किया जा सकता है—

(१) जानवर सम्बन्धी कहानियाँ, (२) दैत्य और दानव सम्बन्धी कहानियाँ, (३) इन्सानोंके जीवन सम्बन्धी कहानियाँ, (४) पौराणिक कथाएँ और किंवदन्तियाँ और (५) बाहरसे आई हुई कहानियाँ।

इन कहानियोंमें अनेक ऐसी चक्करदार हैं जिनमें कहानीके भीतर कहानी खुलती चली जाती है। उनमें राजाओं और उनकी प्रजाओंका बयान है, जानवरों और अलौकिक जीवों, देवताओं और दानवोंका। जानवरोंकी कहानियोंमें कछुए और खरगोशका जिक्र होता है, जहाँ जानवर अपनी चालाकीका बार-बार परिचय देता है। इस प्रकारकी चक्करदार कहानियाँ कछुए और खरगोशकी कहानियोंके अलावा 'थो'के सम्बन्धमें भी कही गई हैं जो धूर्त और पेटू है। एक दूसरा चक्कर ठिगने आदमियोंकी कहानियोंका है, तीसरा सयाने बालककी कहानियोंका, चौथा मातृहीन बालककी कहानियोंका और पाँचवाँ शिकारीकी कहानियोंका। और इस प्रकारकी कहानियोंके चक्कर अफ्रीकाके साहित्यमें असीम हैं।

और ये उन कहानियोंसे बिलकुल अलग हैं जो पौराणिक और ऐतिहासिक कथाओंकी हैं। इन चक्करदार कहानियोंमें एकका दूसरी कहानीसे सम्बन्ध बदलेका सूत्र कायम रखता है। एकमें हारा हुआ जानवर दूसरेमें जीते हुए शत्रुको हरानेकी कोशिश करता है। इसीलिए अधिकतर चक्करकी अगली कहानियाँ एक खास इबारतसे शुरू होती हैं, जैसे, "तुम्हें याद होगा कि किस तरह कछुआ हिरनसे दौड़में बाजी जीतकर घर लौटा था...." या "जेलसे निकलनेके बाद मकड़ीने अब उस हाथीसे बदला लेनेका निश्चय किया जिसने उसे जेलमें डाला था।" इन जानवरोंकी कहानियोंमें भी हमेशा सिर्फ जानवर ही नहीं होते, उनमें अनेक बार आदमी भी अपने कारनामे दिखलाता है। एक बड़ी प्रचलित कहानीमें जिक्र है कि आदमीको जानवरोंकी बोली इस शर्तपर सिखाई गई है कि वह फिर दूसरोंको वह बोली न सिखाये, और शर्त तोड़नेपर उसे बदलेमें अनेक मुसीबतें झेलनी पड़ी है। अफ्रीका और अमेरिकाके हब्शियोंमें अनेक कहानियाँ इस तरहकी भी कही जाती हैं जिनमें जानवरों द्वारा खतरेसे बचाये गये आदमियोंकी उनके प्रति नमकहरामीका बयान हुआ है। जानवरोंकी इन कहानियोंमें पौराणिक कहानियाँ और उनको स्पष्ट करनेवाली दिगर कहानियाँ, रोमानी कहानियाँ, शिक्षाप्रद और नीतिपरक कहानियाँ सभी भरी पड़ी हैं। कुछ कहानियोंमें देवता भी पात्र बनकर आते हैं और आदमियोंकी तरह या अलौकिक काम करते हैं। अनेक पौराणिक कहानियोंमें आदमियोंको अपने शिकंजेमें जकड़नेवाली मौतका जिक्र हुआ है। अशान्ती नामक हब्शी जातिकी कहानियोंमें सबसे लोकप्रिय वह है जिसमें मकड़ी अनान्सी चतुराईसे अनेकानेक असम्भव कार्य करती है और आकाशके देवता नियामेको मजबूर करती है कि वह "न्यानकोनसेम" कहानियाँ (आकाश-देवताकी कहानियाँ) को बदलकर उनका नाम "अनानसेसेम" (मकड़ीकी कहानियाँ) नाम दे दे।

कहानियोंके पौराणिक विश्वास भिन्न-भिन्न जातियोंमें भिन्न-भिन्न

प्रकट करते हैं। इस प्रकारकी पवित्र कथाएँ संसारकी सृष्टि, देव-ताओंके जन्म, दुनियामें उनके कारनामों, उनके आपसी और मनुष्योंसे सम्बन्ध, आदि बातोंसे सम्बद्ध रहती हैं। वे धार्मिक क्रियाओं और कर्मकाण्डोंको स्पष्ट करती हैं। अनेक पौराणिक कहानियाँ तो कुछ परि-वारोंसे जुड़ी हैं जिनका नाम जातियोंके सामूहिक सम्बन्धपर प्रकाश डालता है।

हब्शी लोककथाका एक प्रधान वर्ग ऐतिहासिक और राजनीतिक कहा-नियोंका है। इनका काम प्राचीन परम्पराको कायम रखना बीते हुएको फिरसे जगाना, मनोरंजन करना या उपदेश देना है। जातिके बड़े-बूढ़े अक्सर ये कहानियाँ कहा करते हैं।

पर अफ्रीकी लोककथाका प्राण तो जानवर सम्बन्धी कहानियाँ हैं। इनका विस्तार अफ्रीकाकी पुरानी दुनियासे अमेरिकाकी नई दुनिया तक है। इनमेंसे कुछकी ओर यहाँ इशारा किया जा सकता है। एक लोकप्रिय कहानी रस्साकशीकी है। उसमें छोटा कमजोरसा धूर्त जानवर अपनेसे बहुत बड़े जानवरसे रस्साकशीकी बाजी लगाता है। साथ ही वह ऐसी ही बाजी एक दूसरे, पहले जैसे ही मजबूत, जानवरसे लगाता है। फिर दोनोंको वह एक दूसरेसे अनजाने, एक दूसरेकी आँखोंसे ओझल, रस्साकशीमें भिड़ा देता है। दोनों समझते हैं कि उनका दूसरा प्रतियोगी स्वयं बाजी लगाने-वाला कमजोर जानवर है। इस प्रकार दोनोंको भिड़ाकर छोटा जानवर उनसे बाजी जीत लेता है। यह कहानी हब्शियोंमें इतनी लोकप्रिय है कि यह पुरानी दुनियाके सेनेगल, आइवरी कोस्ट, सुडान, तोगोलैण्ड, दाहोमी, नाइजीरिया, कालावार, गबुन, कामरून, कांगो और दक्खिनी तथा पूरबी अफ्रीकामें और नई दुनियाके अमेरिका, बहामा, हाइती, तृनिदाद, डच-गायना और ब्राजील सर्वत्रकी हब्शी जातियोंमें कही जाती है।

इसी प्रकार तार-बालककी कहानी इतनी लोकप्रिय है कि वह नीग्रो जातियोंमें सर्वत्र कही जाती है। ऐसी ही लोकप्रिय वह कहानी है जिसमें

सियार बन्दरको गलेमें डाल लेता है पर तावीज उसके पड़े रहनेकी हरकतें हाथ निकलकर देखना कह नहीं पाता। आखिर बन्दरगर वह तावीज-को उलटकर पटक देता है और बुद्धिमानी केवल उसीकी होकर नहीं रह पाती, दुनिया भरमें फैल जाती है।

जानवरोंकी इन कहानियोंमें मनोविनोद और सामाजिक बोधका एक-सा मेल होता है। बड़े और छोटेके सम्बन्धकी नैतिकतापर इन कहानियों-पर ध्यान जाता है। मक्खी, खरगोश, कछुआ, हिरन कैसे रह पाते, जब शेर, हाथी, भैंसे और दूसरे बड़े जानवर उनके सर्वनाशका प्रयत्न सदा करते रहते हैं?

अफ़्रीकाके जंगलोंकी जिन्दगी कुछ आसान नहीं है। वहाँ घास खाने-वालोंसे लेकर आदमखोर तक पाये जाते हैं और सभ्यताके अभावमें उस अराजक दुनियामें जिसकी लाठी उसकी भैंसका राज है। फिर भी उचित और अनुचितका भेद और बुरेका विचार सब जगह सभी काल होता आया है, वहाँ भी होता है। इसलिए इन कहानियोंमें कम-से-कम आसानन यह दिखानेकी कोशिश की जाती है कि कमज़ोर दिखनेवाला जीव असलमें कमज़ोर नहीं होता बल्कि अपनेसे कहीं बड़े और मजबूतसे मजबूत जानवर-तकको हरा सकता है। तभी मजबूतके बीच कमज़ोरकी रक्षा हो सकती है और उसकी जिन्दगी निभ सकती है वरना मजबूतोंकी हस्तीके सामने भला उसकी बिसात ही क्या है। पर जैसे इस कुदरतकी बनाई जमीनपर घास-का तिनका और बरगद दोनों रहते हैं, उसपर चींटी और हाथीको, खरगोश और शेरको एक साथ रहनेका हक होना चाहिए।

तारकोल या गोंदवाली शेखचिल्लीकी कहानियाँ हिन्दुस्तान, यूरोप और अफ़्रीका सर्वत्र कही जाती हैं। उनका आरम्भ हिन्दुस्तानमें हुआ या अफ़्रीकामें, यह कहना कठिन है, गो इसमें कोई शुबहा नहीं कि ये कहानियाँ यूरोपमें हिन्दुस्तानसे पहुँचीं। जानवरोंकी कहानियाँ, भारत और यूनान दोनों जगह कही जाती थीं। भारतकी पंचतंत्रकी कथाएँ और यूनानकी

ईसोपकी कहानियाँ जानवरों और चिड़ियोंसे सम्बन्ध रखती है। इसमें तो सन्देह नही कि इन दोनो देशोने कहानियाँ एक दूसरेसे ली होगी, खासकर इसलिए भी कि उनकी जुबानें दूर-दराज़के जमानेमे एक-सी ही थी। पर उनके और अफ्रीकावालोके बीच मिलती-जुलती कहानियोका फेर-बदल कैसे हुआ, यह कह सकना आज कठिन है। अफ्रीकाकी कहानियोमे जानवरोकी प्रधानता है और वही बात अपने देशकी पञ्चतन्त्रकी कहानियोंमें है। कुछ अजब नही कि एकने दूसरेसे, या असलमे दोनोने दोनोसे लिया हो। बात चाहे जो रही हो, जाहिर है कि इन कहानियोंने अफ्रीकाके घने जगलोमे बसनेवाले कलाहीन जातियोंका हजारो सालसे मनोरजन किया है और उनके लोक-साहित्यको सम्पन्न किया है।

यूनानी और रोमन पुराण कथाएँ : १५ :

जब सभ्यता न थी तब भी विश्वास थे। विश्वास तर्क सम्मत भी होते हैं, अन्धविश्वास भी। जब हम बिला वजह बगैर तर्क या बुद्धिका इस्तेमाल किये, विश्वास करते हैं तब उसे अन्धविश्वास कहते हैं। आदिम इनसान इस तरहके अन्धविश्वासोंका मरकज़ था। वह अचरज करता था पर अचरजकी चीजका सही अर्थ या कारण नहीं बता पाता था, गो उसका अर्थ या कारण बतानेकी कोशिश वह ज़रूर करता था। अक्सर उसका अटकल डरसे जुड़ा होता था। इससे घटनाओंकी उसकी व्याख्या भी अधिकतर ख्याली होती थी, जिसका कोई बौद्धिक आधार न होता था।

पर आदिम इनसान सोचता था, गुनता था, रहस्यकी गाँठ खोलनेकी कोशिश करता था। नदी बहती है, झरना गिरता है—उसकी समझमें यह अकारण ही न था। वह सोचता—नदीके जलमें कुछ ज़रूर है जो काँपता हुआ बहता है, झरनेमें कुछ ज़रूर है जो अपने आप तरल होकर भी, अनायास सैकड़ों फुट ऊँचेसे गिरकर भी, नीचेकी चट्टानोंको चूर-चूर कर देता है। बीज मिट्टीमें पड़ता है, ज़मीनकी छाती फाड़ उसका अँगुआ निकल पड़ता है, पौध लहराने लगती है और हरा-भरा पेड़ एक दिन फैले बरगदकी जटाएँ बन अनेकानेक बरगद बन जाता है। उसमें कुछ है ज़रूर जो गुठलीसे पौधा और पौधेसे विशाल तने और अनगिनत डालोंवाला पेड़ बन जाता है। वह आदिम इनसान जलमें, जंगलमें, हवामें सर्वत्र कुछ खोजता, उससे डरता, और काँपते हाथोंसे उसे पूजता, उसे प्रसन्न करनेके लिए उसकी वेदीपर अपने बेटे तककी बलि चढ़ा देता था।

बहनेवाले जल, बढ़नेवाले दरख्त, अन्न उगलनेवाली जमीन, कड़कनेवाली बिजली, गरजनेवाले बादल, सबके भीतर कुछ थे, जो ताकतवर थे, उनसे कहीं ताकतवर, पर जो उस कमजोरको घेरे-घेरे फिरते थे, उसके सुख-दुःखके कारण थे, और जिन्हें वह देवता कहने लगा। ये देवता प्रकृतिके डरावने और सुहावने रूप थे जिनको बिना देखे भी, उनके असरसे, आदमीने पहचाना और अपना त्राता और संहारकर्ता माना।

उस आदि मानवको लगा कि यह सारा चराचर जगत् उन्हीं हस्तियोंका सिरजा हुआ है, उन्हींके खेलसे बनता, बदलता और बिगड़ता है। और चूँकि आदमी आदमीसे बढ़कर, अपनेसे बढ़कर, शक्लमें कुछ और नहीं पाता था, उसने अपने देवताओं या कुदरतकी छिपी हस्तियोंको आदमीके ही रूप-रंगका, पर ताकतमें उससे कहीं महान् माना, और उन देवताओंमें इनसानकी इनसानियत, उसके राग-वैर, लोभ-क्रोध, जन्म-मरण, सब भर दिये। उसके देवता रहते तो आसमानमें थे पर विचरते इनसानी दुनियाके बीच जंगलों और पहाड़ोंमें, नगरों और बस्तियोंमें थे।

विश्वासकी इस भूमिपर वैसे तो सभी मानव जातियाँ प्रायः समान थीं, सबने इस प्रकार अपने बीच विचरनेवाले देवताओंको सिरजा, पर निःसन्देह हिन्दुओं, यूनानियों और रोमनोंके देव-परिवार अधिकतर हमारे थे, इनसानकी तरह ही एक दूसरेसे प्यार-दुश्मनी करनेवाले, मरने मारनेवाले। यही वजह है कि उनके देवता मनुष्योंकी तरह ही आचरण करते हैं, लड़ाइयाँ हारते और जीतते हैं, राज करते हैं। इस तरहके मान्यताओंमें विश्वासकी गुंजायश ज्यादा आजकी कम थी, और देवताओंके करतूतों या करामातोंका एक भण्डार ही जमा हो गया जिसे मनुष्य मौखिक रूप धारण करते हैं।

लिया। इसीसे रोमन देवता दूसरे नामोंवाले ग्रीक देवता ही है। ग्रीक देवताओंकी कहानियाँ ही रोमन देवताओंकी कहानियाँ बन गई है। फर्क बस इतना है कि जहाँ ग्रीकोंकी अनेक जातियाँ, अनेक बस्तियाँ, अनेक नगरियाँ थी, रोमनोंकी प्रायः एक जाति थी, अधिकतर एक ही नगरीमें बसी। इससे जहाँ ग्रीकोंके देव-परिवारों और विश्वासों-पुराणोंमें अनन्त विविधता थी, रोमनोंके विश्वास-पुराणोंमें अनेकता बहुत कम बन गयी।

१

नीचे हम विशेषतः ग्रीक या यूनानी देवताओंकी घरेलू कहानियाँ कहेंगे, उनके राग-द्वेष, लड़ाई और मौजकी कहानियाँ, मिटने और बसनेकी कहानियाँ, हारने और जीतनेकी कहानियाँ। ख्याल यह था कि जमीन और उसपर रहनेवालोंको सिरजनेवाले वे देवता ही थे और उन्होंने एक ऐसे धुन्धमें जमीनको ठोस बना उसे समुद्रके पानीसे घेरा। जमीन फैली हुई चिपटी थी, जिसके ऊपर आसमानका चंदोवा तना था, जिसके सिरे जमीनके सिरेकी पहाड़ी चोटीसे लगे हुए थे। और इसी आसमान और जमीनके बीच देवताओंका निवास था, फिर जमीनके नीचे पातालमें भी। ग्रीस देशमें ओलिम्पस् पहाड़ है जिसकी कमरके गिर्द कुहरा छाया रहता है और जिसकी चोटी बादलोंको छेदकर उसपर अपना साया डालती है। बर्फसे सफेद चोटीपर देवताओंके महल है, जहाँसे वे इनसानके कारनामे देखते रहते है। यूनानी विश्वासोंके इतिहासमें एक जमाना ऐसा भी आया जब देवताओंका निवास ओलिम्पस्की चोटीसे उठकर आसमानसे परे दूर चला गया जहाँसे वे दुनियाके कारनामे ओलिम्पस्की चोटीके पासके एक झरोखेसे देखने लगे। वैसे ओलिम्पस्की चोटीके महलोंमें ही उन ग्रीक देवी-देवताओंका निवास था जिनका राजा ज्यूस् था। उसी ज्यूस्को रोमन जूपिटर कहते थे। ज्यूस्के साथ ग्यारह और देवी-देवताओंका

ओलिम्पर निवास था। इनके नाम थे, हिरा, हर्मिस, अथेनी, अपोलो, आर्तेमिस्, अरेस्, अफ्रोदीती, हेफाइस्तस्, हेस्तिया, पोसिदन और दिमितर।

ग्रीक देवताओं और देवियोंकी पैदाइश और लडाईकी कहानी बडी दिलचस्प है। ऊरेनस् आसमानका देवता था, स्वयं आसमान, ग्रीकोंका पहला देवता। उसने अपनी माँ जमीनको ब्याहा, जिसका नाम गाइया था। इस ब्याहसे जो देवता या दैत्य पैदा हुए वे तितान, हेकातोंचीरी, और कीक्लोप कहलाये। तितानोंका नाम अपने पिताके नाम सरीखा ही ऊरेनिदाई पडा। वे सख्यामें छ थे और उन्होंने अपनी छः बहनोंसे विवाह कर लिया। ऊरेनस्को डर लगा कि दैत्याकार लड़के कहीं उसे मार कर उसकी बादशाहत न छीन लें। इससे उसने उन्हें पकड कर पातालमें बंद कर दिया। उसकी रानी गाइयाको अपने बेटोंकी किस्मतपर बडा रोना आया, और उसने उनकी रक्षा करनेपर कमर कस ली। क्रोनस् उसका सबसे छोटा बेटा था। उसने एक हँसिया बनाकर क्रोनस्को दिया और बापके खिलाफ उसे ललकारा। क्रोनस्ने अपने पिता ऊरनस्को घायल कर अपने भाई तितानोंको पातालसे आज़ाद कर दिया। इन्हीं तितानोंने, अपने पिताके पतनके बाद अपनी बहनोंको ब्याहा और देवताओंका अनगिनत परिवार पैदा किया। तितानोंका देव-परिवार गिगान्तियोंके जोगमें और बढ चला। गिगान्ती ऊरेनस्के खूनकी बूँदोंसे पैदा हुए थे।

रोमनोंका देव-परिवार भी इसी प्रकार अलौकिक देवताओंसे भरा था। उनके दैत्योंको लारची कहते थे, जो उन मुर्दों तकको जमीनसे उखाड लेते थे जिनके पापोंको क्षमा न मिली थी।

२

अब क्रोनस्की कहानी सुनिए। क्रोनस्ने, पिताकी गद्दी ले चुकनेपर, अपनी बहन रियासे शादी की। उससे उसे तीन बेटे और तीन बेटियाँ

हुईं। हेडीज, पोसिडन और ज्यूस् बेटे थे और हेस्तिया, डिमिटर और हिरा बेटियाँ थीं। एक दिन क्रोनस्को भविष्यवाणी हुई कि चूँकि उसने अपने पिताको गद्दीसे उतार दिया है, उसे भी उसके बेटे गद्दीसे उतार देंगे। फिर तो उसने डर कर अपने पाँच बच्चोंको निगल लिया। और जब रियाने अपने सबसे सुन्दर छठे बालकको जना। उसकी खूबसूरतीसे मोहित प्यार उमड़कर बहने लगा और उसने निश्चय किया कि जानकी बाजी लगाकर भी बेटेकी रक्षा करेगी। सो रियाने एक पत्थरको नवजात शिशुके रूपमें कपड़ोंमें लपेट कर नया बेटा बताकर अपने पतिको दिया और क्रोनस्ने उसे चबा डाला। कहानी मथुराके कंसकी कथासे किस कदर मिलती है, कहना न होगा।

इस तरह अपने पतिको धोखा देकर रियाने बेटे ज्यूस्को क्रीटके टापूमें भेज दिया, जहाँ उसे एक गुफामें छिपा रखा गया। वनकी देवियोंने उसे बकरीका दूध पिलाया, मधुमक्खियोंने शहद ला-ला कर उसे दिया और गरुड़ने स्वर्गके अमृतसे उसे सींचकर अमर कर दिया। रियाके अनुचरोंने गुफाके आगे और नाच-नाच कर तलवारों और ढालोंके शोरसे उसकी आवाज दबा रखी जिससे क्रोनस् उसे सुन न ले और उसकी जिन्दगीके लिए खतरा पैदा न कर दे।

जब ज्यूस् सयाना हुआ, वह मेटिसके पास पहुँचा और उसके साथ साजिश कर उसने पिताको मजबूर किया कि निगले हुए अपने बच्चे वह उगल दे। उगले हुए भाइयोंने ज्यूस्की फौरन् मदद की और ज्यूस्ने पिता क्रोनस्को स्वर्गकी गद्दीसे नीचे ढकेल दिया। स्वर्गकी गद्दी अब उसकी हुई। पर क्रोनस्के भाई तितान इसे सह न सके और ज्यूस्के देवताओं और दैत्यों (तितानों) में घमासान छिड़ गया।

तितानोंने ज्यूस्से बगावत कर दी, और गो फतह ज्यूस्की हुई, लड़ाई एक अरसे तक होती रही। ग्रीक पुराणोंका कहना है कि यह प्रलयकर लड़ाई थेसालीके मैदानमें हुई। ओलिम्पस्की चोटीपर ज्यूस्का सिंहासन

जमा, जहाँ अपने देव-परिवारके साथ देवराजने डेरा डाला। सामने ओथिस् पर्वतके शिखरपर तितानोंके साथ उनका नेता जापेतस् जम गया। ज्यूसको उस लड़ाईके दरमियान बड़े-बड़े सदमे सहने पड़े और अन्तमें उसने हेकातन्चीरियों और कीक्लोपोंसे मदद लेनेकी ठानी। वे पातालमें अब भी कैद थे। उन्हें उसने आज़ाद कर दिया और वे अपने भयंकर हथियारों—बिजली, वज्र और भूकम्पके साथ ज्यूस्की मददको आ पहुँचे। आखिर दुश्मन सर हो गये और उन्हें चट्टानोंके नीचे लोहेकी दीवारके पीछे पाताल की देवी हिकेतकी हुकूमतमें उस दोज़खमें दबा दिया गया जहाँ सदा सर्दी और अँधेरेका राज रहता है। तीफोन, जो गाइया और तारतारसका बेटा था, आँधी और बवंडरका दैत्य था! उसकी ताकतका कोई अन्त न था। ज्यूसके वज्रसे वह आहत हुआ।

ग्रीक देवताओं और दैत्योंकी इस लड़ाईकी कहानियाँ कवियोंके गानके विषय बन गई।

है जिसे उसने अपना प्यार दिया था पर जिसे जंगली सुअरने मार डाला। पहली बार अफ्रोदीतीके हियेमें मुहब्बतका दर्द उमड़ा और वह दर्द किसी तरह दूर न किया जा सका। बेचैन हो-हो वह अपनी प्यारी लाशको चूमती रही, उसे छोड़नेको राजी न हुई। तब देवताओंने उसपर रहमकर ऐलान किया कि वह आधा साल ऊपरी दुनियामें अफ्रोदीतीके साथ बिताया करेगा और बाकी आधा पातालमें पर्सिफोनके साथ। अदोनिस् तबसे गर्मियोंका प्रतीक बन गया है, वसन्तका हरकारा। इटलीमें अप्रैलके महीनेमें जब फूल और पौधे वसन्तको निहाल करने लगते हैं तब ऊपरी दुनियामें अदोनिस् लौटता है और वीनसके साथ वन-काननमें विचरता है। रोमन नागरिक उस अवसरपर प्रेमकी देवीको पूजामें विभोर हो उठते थे। अफ्रोदीती और वीनसके अनेक मन्दिर ग्रीस, इटली, मिस्र, सीरिया आदिमें बने।

४

एरोस् और साइकीकी कहानी कहे बगैर ग्रीसकी पौराणिक कथाओंको समाप्त करना कठिन होगा। एरोस्, अफ्रोदीती और अरेसका पुत्र था। ग्रीक देवताओंमें वह सबसे सुन्दर और सबसे कमउम्र माना जाता है। वह पंख और धनुष धारण करता है और अक्सर मूर्तियोंमें उसका रूप बालक-सा गढ़ा जाता है। साइकी, क्रेता टापूके राजाकी बेटी थी और उसे देवताओंने ऐसी खूबसूरती दी थी कि अफ्रोदीतीको भी उससे लजाना पड़ता था। इसीसे अफ्रोदीती उससे डाह करने लगी थी। उसने एरोस्‌के जरिये ही साइकीका नाश करना चाहा। एरोस्‌को जब उसने उसके खिलाफ भेजा तब साइकीके रूपका जादू उलटे एरोस्‌पर ही चल गया और वह उसकी मुहब्बतमें दीवाना हो गया। इसी बीच साइकीके पिताने अपोलोसे सगुन विचरवाया था। सगुनने उसे राय दी कि राजा अपनी बेटी साइकीको दुलहिनके कपड़े पहनाकर एक खास चट्टानके ऊपर ले जाकर छोड़ दे। वहीं डैनोंवाले दैत्यका इन्तजार करे और उसके आनेपर उसको

बीवी हो जाय। पिताने सगुनका यह कठिन आदेश रो-गाकर पूरा किया। पर जैसे ही साइकी चट्टानके पास अकेली छोड़ी गई उसे एक बादलने ढक लिया और हवाके हलके झोंकेने उसे उठाकर एक खूबसूरत महलमें पहुँचा दिया। वहाँ हर रात दिन डूबते ही उसके पास एरोस् जा पहुँचता पर वह खुद उसे देख न पाती। न उसने उसका नाम ही जाना, न यही कि वह कौन था, और उसे सख्त ताकीद भी कर दी गई कि वह यह जानने-की कोशिश तक न करे कि उससे मुहब्बत करनेवाला कौन है। लेकिन जब साइकीकी बहिनें उसके खूबसूरत महलको देखने आयी तब उन्होंने उसे मौका मिलते ही अपने प्रेमीको पहिचानकर कुतूहल शान्त करनेके लिए तैयार किया। इसलिए साइकी चिराग लेकर एरोस्के पास चुपकेसे दबे पाँव पहुँची और उसपर झुकी। जब उसने देखा कि सोया हुआ नौजवान अफ्रोदीतीका बेटा है तब वह इस क़दर घबरा गई कि उसने चिरागके जलते तेलकी एक बूँद अपने प्रेमीके नगे कन्धेपर गिरा दी। देवता जग उठा, उसने उसके कुतूहल और असंयमके लिए धिक्कारा और वह महल छोड़कर चला गया। साइकी बेचैन हो उठी। उसके दर्दकी कोई दवा न थी और वह दर-दर फिरती समूची दुनियामें अपने प्रियको ढूँढती रही। उसी बीच वह अफ्रोदीतीके महलमें जा पहुँची। अफ्रोदीतीने उसे बंदकर लिया और उससे गुलामोंका काम लेने लगी। पीछे तो उसने उसके धीरज-को परखनेके लिए उसे बड़ी ही मुसीबतमें डाला। उसने उसे पाताल भेजकर पर्सीफोनके यहाँसे सिंगारकी पेटी मँगवाई। उसकी मुसीबतके समय एरोस् छिपे-छिपे बराबर उसके साथ रहा था, वरना वह अपनी मुसीबतों-का शिकार हो गई होती। जब उसने पेटी लाकर खोला, उसमेंसे जहरीली भाप निकलने लगी जिससे बेहोश होकर वह जमीनपर गिर पड़ी। एरोस् अब और छिपा न रह सका। उसने दौड़कर उसे अपनी बाहोंमें भर लिया और प्यारसे उसे जिला लिया। अफ्रोदीतीका क्रोध अब शान्त हो गया और ओलिम्पस्के देवताओंके बीच दोनोंका विवाह हो गया।

५

जानुस् देवता ग्रीकोंका जाना न था। वह ग्रीक देवताओंसे भिन्न था रोमनोंका देवता था और रोम देवताओंमें उसका स्थान बहुत ऊँचा और महत्त्वका था। दुनियाकी सारी चीज़ोंका वही मूल कारण माना जाता था, साल और ऋतुओंका वही विधाता था, वही भाग्यका प्रेरक था और इसीकी दयासे मानव जाति और उसकी कलाओंका विकास हुआ था।

पुराणकथाओंके अनुसार जानुस् लातियमका राजा था। सुनहरे युगमें, जब देवता और आदमी कन्धेसे-कन्धा मिलाकर पृथ्वीपर विचरते थे तब, उसने राज किया था, मन्दिर खड़े किये थे, इनसानको अनेक लाभकर बातें सिखायी थीं। जानुस्के नामपर ही सालके पहले महीने, जनवरी, का नाम पड़ा।

ग्रीक या यूनानी शान्तिके प्रेमी थे, युद्धके नहीं, गो उन्हें लड़ाइयाँ अनेक लड़नी पड़ी थीं और लड़ाई लड़नेमें वे प्रवीण भी थे। रोमन, इसके विपरीत, युद्धप्रिय थे और साम्राज्यका विस्तार उनका परम ध्येय था। अपने ज़मानेका सबसे बड़ा दुनियाका साम्राज्य उन्होंने ही खड़ा किया था। उन्हें आये दिन लड़ाइयाँ लड़नी पड़ती थीं। उनकी संस्कृतिमें सेनाकी व्यवस्था और सचालनका महत्त्व असाधारण था और जानुस् युद्धमें उनका देवता था। वह अपनी रोमन जनताके साथ मैदानमें खड़ा होता था, ऐसा रोमनोंका विश्वास था, और इसीलिए रोमके संकटोंके समय उसके मन्दिरके पट सदा खुले रहते थे। जानुस्के सम्बन्धमें भी अनेक पौराणिक कहानियाँ कही जाती हैं। चारणों और कवियोंके लिए तो युद्ध सम्बन्धी उसकी कहानियाँ विशेष प्रेरणाकी चीज़ बन गयी थीं।

× × ×

ग्रीकोंकी पुरानी कहानियोंमें देवताओंका ज़िक्र बार-बार आता है।

कई दफे आदमियोंके पुरखे ही देवता बन जाते हैं और अनेक बार देवता मनुष्योंसे विवाह सम्बन्धकर उनके पुरखे बन जाते हैं। फिर तो उनका आपसी व्यवहार बराबर वालोंका-सा होने लगता है। देवताओंके बेटे अनेक बार ग्रीक कथाओंमें घटनाओंके नायक रहे हैं, अनेक लड़ाइयाँ उन्होंने ग्रीसके नगरोंके नागरिकोंके बीच हारी-जीती हैं। इतिहासप्रसिद्ध त्रायकी इस लड़ाईमें अनेक देवताओंके बेटोंने भाग लिया था जिसकी कहानी अन्धे कवि होमरने अपने अमर काव्य "ईलियद" में गाई है। आकिलीज़, देवताका बेटा, उस काव्यकी नायिका हेलेनके प्रेमी और चोरका प्रधान शत्रु था। त्रायके युद्धके नायकोंकी कहनी देवताओं और उनके बेटोंसे गुँथ गई है, ठीक उसी तरह जैसे हमारे महाभारतके उन पाण्डवोंकी कहानी जो देवताओंके बेटे कहे जाते हैं, उसी तरह जैसे सिकन्दर अपनेको हरकुलीज़का बेटा मानता था, जैसे सीजर अपनेको जूलस् और वीनसका वंशज और अन्तोनी दियोनिसस्का, जैसे चीनी सम्राट् अपनेको सूरजके पुत्र मानते थे, जैसे भारतके कुषाणोंका राजा कनिष्क अपनेको 'देवपुत्र' लिखता था।

कला और साहित्य समाजके प्रसार हैं। दोनोंमें समान स्वर बोलता है और वह स्वर समाजप्रेरित होता है। कल्पनाकी सूक्ष्मतम भावभूमि समाजकी स्थूलतम पृष्ठभूमिसे लगी रहती है। उदाहरण लीजिए, मध्य-कालीन जगत्‌मे पहलेका उदाहरण है पर स्थितिको साफ़ समझा देता है—

नाहं पियासोर्गुरुदर्शनार्थमर्हामि कर्तुं तव धर्मपीडाम्।
गन्धार्यपुत्रैहि च शोघ्रमेव विशेषको यावदयं न शुष्क ॥

अजन्ताकी दीवारोंपर बुद्धके भाई नन्दका चित्रण हुआ है। नन्द धके विहारमें लाया गया है। पर उसकी आकुल प्रिया प्रासादमें उसकी तीक्षा कर रही है और वह भागकर उसे भेंट लेना चाहता है। बार-बार ह भागनेका प्रयत्न करता है, बार-बार उसे रोक लिया जाता है। नारी-ो तृष्णाका उद्गम माननेवाले भिक्षुओंको भला उस मधुर भावबन्धनका ान क्या, जो सचित दाम्पत्य और नवविवाहित दम्पतिमें होता है? र्ण और रेखामें बँधा वह भावस्रोत दोनोंको लाघ जाता है। पर अश्वघोष-ो वह पृष्ठभूमि, जिसमें कलाका यह दर्शन हुआ, उससे बड़ी सबल है।

पिछली शाम नन्द और सुन्दरीका विवाह हुआ है। दोनों एक-दूसरेसे ुर भावबन्धसे जुड़े हैं। रजनीके पर्यवसानके बाद विहान हुआ है और ल्लासकी उन्मद भावना सारे परिवारको नवीन व्यस्ततामें भर देती है। ोई स्नानके लिए जलको फूलोंमें बासने लगता है, कोई अंगराग और अव-ेप तैयार कर रहा है, कोई चन्दन और अगुरकी धूमवर्तिका बनानेमें ल्गा है, कोई पत्र-विशेषकके लेप फेंट रहा है, कोई फेनकका झाग उठा

कई दफे आदमियोंके पुरखे ही देवता बन जाते हैं और अनेक बार देवता मनुष्योंसे विवाह सम्बन्धकर उनके पुरखे बन जाते हैं। फिर तो उनका आपसी व्यवहार बराबर वालोंका-सा होने लगता है। देवताओंके बेटे अनेक बार ग्रीक कथाओंमें घटनाओंके नायक रहे हैं, अनेक लड़ाइयाँ उन्होंने ग्रीसके नगरोंके नागरिकोंके बीच हारी-जीती हैं। इतिहासप्रसिद्ध त्रायकी इस लड़ाईमें अनेक देवताओंके बेटोंने भाग लिया था जिसकी कहानी अन्धे कवि होमरने अपने अमर काव्य "ईलियद" मे गाई है। आकिलीज़, देवताका बेटा, उस काव्यकी नायिका हेलेनके प्रेमी और चोरका प्रधान शत्रु था। त्रायके युद्धके नायकोंकी कहनी देवताओं और उनके बेटोंसे गुँथ गई है, ठीक उसी तरह जैसे हमारे महाभारतके उन पाण्डवोंकी कहानी जो देवताओंके बेटे कहे जाते हैं, उसी तरह जैसे सिकन्दर अपनेको हरकुलीजका बेटा मानता था, जैसे सीजर अपनेको जूलस् और वीनसका वंशज और अन्तोनी दियोनिसस्का, जैसे चीनी सम्राट् अपनेको सूरजके पुत्र मानते थे, जैसे भारतके कुषाणोंका राजा कनिष्क अपनेको 'देवपुत्र' लिखता था।

कला और साहित्य समाजके दर्पण हैं। दोनोंमें समान स्वर बोलता है और वह स्वर समाजप्रेरित होता है। कलाकारकी सूक्ष्मतम भावभूमि समाजकी स्थूलतम पृष्ठभूमिसे लगी रहती है। उदाहरण लीजिए, मध्यकालीन जगत्‌से पहलेका उदाहरण है पर स्थितिको साफ समझा देता है—

> नाहं पिपासोर्गुरुदर्शनार्थमर्हामि कर्तुं तव धर्मपीडाम् ।
> गच्छार्यपुत्रेहि च शीघ्रमेव विशेषको यावदयं न शुष्कः ॥

अजन्ताकी दीवारोंपर बुद्धके भाई नन्दका चित्रण हुआ है। नन्द बरबस विहारमें लाया गया है। पर उसकी आकुल प्रिया प्रासादमें उसकी प्रतीक्षा कर रही है और वह भागकर उसे भेंट लेना चाहता है। बार-बार वह भागनेका प्रयत्न करता है, बार-बार उसे रोक लिया जाता है। नारीको तृष्णाका उद्गम माननेवाले भिक्षुओंको भला उस मधुर भावबन्धनका भान कहा, जो सचित दाम्पत्य और नवविवाहित दम्पतिमें होता है? धर्म और नियमसे बँधा वह भावस्रोत दोनोंको लाँघ जाता है। पर अश्वघोषकी वह पृष्ठभूमि, जिससे कलाका यह दर्शन हुआ, उससे कहीं सबल है।

पिछली शाम नन्द और सुन्दरीका विवाह हुआ है। दोनों एक-दूसरेसे मधुर भावबन्धसे जुड़े हैं। रजनीके पर्यवसानके बाद विहान हुआ है और विलासकी उन्मद भावना सारे परिवारको नवीन व्यस्ततामें भर देती है। कोई स्नानके लिए जलको फूलोंसे बासने लगता है, कोई अंगराग और अवलेप तैयार कर रहा है, कोई चन्दन और अगुरकी धूमवर्तिका बनानेमें लगा है, कोई पत्र-विशेषकके लेप फेंट रहा है, कोई फेनकका झाग उठा

रहा है। गरज कि सभी व्यस्त हैं—अनुचर, वामन, कुब्ज, चेट-चेटी सभी। उन सबका केन्द्र सद्य.परिणीत परिवारके प्रभुका विलास है और प्रासादका वह प्रभु नन्द प्रकोष्ठके एकान्त अट्टमे, अलिन्दके सामने, अपनी प्रिया सुन्दरीके कपोलोपर पत्र-लेखन कर रहा है। मदनकूपसे राग-रेखाएँ उठ-उठकर कपोलोंकी श्वेतभूमिको रक्ताभ कर देती है और उन रेखाओंपर टहनियाँ और टहनियोपर नवपल्लव, कोमल किसलय धीरे-धीरे उभरते आ रहे है। ठीक तभी प्रासादकी देहलीमें तथागतका भिक्षापात्र बढ आता है, पर उसे कोई देख नही पाता या देखकर भी उधरसे लोग आँखें फेर लेते है। सम्यक् सम्बुद्ध रिक्तपात्र कपिलवस्तुके राजमार्गपर लौट पडते है। कपोलोपर भक्ति रचता हुआ नन्द तथागतको रिक्तपात्र ऋद्ध प्रासाद-से लौटते देखता है और उसे सुन्दरीको दिखाता हुआ पूछता है—अब क्या होगा, प्रिये? सभीता मृगी घबराकर पूछती है क्या होगा, प्रिय? पूछता है—मना लाऊँ? उसका मन मथ जाता है, विलास आकर्षक है, मदन उच्छृङ्खल, पर अपराध बडा है। कहती है—जाओ, प्रिय, मना लाओ। पर जल्दी लौटो, इतनी जल्दी कि कपोलोंके ये गीले रग अभी गीले ही रहें। और चला जाता है रोमाञ्चित नन्द, आकुल नेत्रपथके परे। और फिर लौट नही पाता। तथागत और उसके भिक्षु प्रणय कमलपर तुषार बन जाते है। नन्द नही लौटता। सुन्दरीके कपोलोंकी गीली रेखाएँ सूख जाती हैं। दिन, सप्ताह सरक चलते है, पर वह नही लौटता जिसने उन्हे लिखा था।

अनेक-अनेक गृहस्थोकी दुनिया बौद्ध प्रव्रज्याके उस आघातसे उजड गई होगी, अनेक-अनेक मधुर राग-बन्धन दम्पतिके परस्पर वियोगमे टूट गये होंगे, जिस पृष्ठभूमिसे उठकर अजन्ताकी तूलिका और अश्वघोषकी लेखनीसे अनुरागके वे चित्र लिखे गये।

मध्यकालीन कलाकी भी इसी प्रकारकी भावगर्भित सामाजिक पीठिका है। दण्डी और बाणभट्टने अपने दशकुमारचरित और कादम्बरीमें जिन

समाजका वर्णन किया है वह उस कला-संचयकी भी पृष्ठभूमि है उड़ीसा और बुन्देलखण्ड जिसके धनी हैं। कामुक, घिनौना, दूसरोंको मानवताको अपने निर्लज्ज कर्मोंसे ग्लानि देनेवाला जन-परिवार उस समाजका परिचायक था जिसके सारे सामाजिक आचार, सारे आदर्श कुण्ठित हो चुके थे, जो इसे भूल चुका था कि स्पर्शकी सार्थकता उसके देखनेवालेके नयनमें है।

अभिराम सविनय मन्दिरोंका नन्रातीत परिवार भी अपने नग्न विलासकी सम्पदा लिये उसी घिनौनी पृष्ठभूमिसे उठा था। गुप्तकालने अपनी निष्ठा और लगनसे पहलेके रूढिनिविष्ट मानोंको त्यागकर अवयव-आनत यथादर्शन मानवको उसके स्वाभाविक रूपमें देखा, कोरा और लिखा था। उसका परिष्कार उस युगकी देन थी। मध्यकालमें अधिकतर वह कलाभूमि कलाकारके दृष्टिपथसे ओझल हो गई। शिथिलसमाधिके दोषी कलावन्तने यथार्थसे विमुख हो अलौकिककी उपासना आरम्भ की और निष्ट परिष्कारकी कमीको उसने अमर्यादित अलंकरणसे पूरा किया। वह अलंकरण धीरे-धीरे इतना व्यापक हो उठा कि शरीर उसमें ढक गया—प्रधान गौण हो गया, गौण प्रधान।

भुवनेश्वर, कनारक, पुरी, खजुराहो आदिके मन्दिरोंपर, उनके बहिरंगको उभारता अन्तरंगको ढकता, अलंकरणका जाल उनके कलेवरपर फैला। मैथुनो-मैथुनो अवार्य, कामुक आचरण अपने रूप परिवारकी शृंखलामें उन्हें घेर चला, सदियों घेरे रहा और इस प्रकार उसने मानवके बोधको दूषित कर दिया, उसकी पूजाको अपावन। वह सारा उसी सामाजिक पीठिकाका परिणाम था जिसके परिणाम दण्डीका दशकुमारचरित और बाणभट्टकी कादम्बरी थे।

वह समाज किन आदर्शोंसे अनुप्राणित था? उस समाजके आदर्श न थे, व्यवस्था न थी। गुप्तोंकी स्मृति-संस्कृति हूणों, आभीरों-गुर्जरोंकी चोटसे टूक-टूक हो चली थी। स्वयं स्मृतियाँ अपने भीतर, अपनी व्यवस्थाके

नागोंके बीज लिये उठी थी और अस्पृश्यों, शबरों, अन्त्यजोंकी अनन्त परम्परा निरन्तर उन्होंने मानव जातिके असंख्य कुलोंको पशु बना दिया था। और अब उसकी अपनी प्रतिष्ठित वर्ण-व्यवस्थाकी बारी थी।

समाजका क्या रूप था? स्मृति-पद्धति टूट चुकी थी, उसके उन्नायक और सूत्रधार दुर्बल काँपते करोंसे जहाँ-तहाँ टूटे सूत्रोंको जोड़नेका प्रयत्न कर रहे थे। अब न ब्राह्मणराजा वाकाटक थे, न अश्वमेधयाजी भारशिव नाग, और न परम भागवत गुप्त। प्राचीन राजन्यों और क्षत्रियोंकी कमजोर परम्परा टूक-टूक हो चुकी थी, आबूके अग्निकुलीन राजपूत हूणोंको नमिनसे प्रबल हो चले थे। वे निश्चय प्रबल थे और इस धराके सीमान्तके रूपमें उठकर उन्होंने दीर्घकाल तक इसकी रक्षा भी की, पर वे वास्तवमें स्मृतियोंकी संकीर्णताके जवाब थे। पूरबमें पालोंका शक्तिमान उदय हुआ था, उन पालोंका जो बौद्ध थे, शूद्र थे, वर्ण और ब्राह्मण विरोधी थे। सिन्धमें शूद्रोंका परिवार राज कर रहा था। साहित्यका संरक्षक परमार राजा भोज श्लोकोंके चरण-चरण पर तो लाख-लाख सुवर्ण दान करता, पर देशके शत्रुसे लड़ने गये राजाओंकी राजधानी लूटकर राष्ट्रीय अपराधका दोष करते भी नहीं हिचकता था। कश्मीरमें कामुकी मेधाविनी क्रूर रानी दिद्दा पराक्रमी सेनापतिके साथ स्थल-स्थलको सर्वेनस्थान बनाती जीवनके सारे आदर्शोंको चुनौती दे रही थी और तुर्कशाही प्रायः अकेले काबुलके परकोटोंपर सन्तरियोंका आचरण कर रहे थे।

राजनीतिसे जनता उदासीन थी, क्योंकि जनता उस राजनीतिसे वंचित रही थी, क्योंकि साहित्यकारने उसे राजनीति-विहीन प्रणयबोझिल साहित्य दिया। यह वह दूरकी पृष्ठभूमि थी जिससे दूरका वह परिणाम निकला जिसमें जब १८ सवारोंके साथ बख्त्यार नालन्दा पहुँचा तब भिक्षुओंने उसकी तलवारोंके सामने अपने सिर झुका दिये। वह उत्तरप्रदेश और बिहारको भूमि रौंदता हुआ चला गया, पर जनताके कानों जूँ न रेंगी और जनताका रक्षक लक्ष्मणसेन नदियाके राजप्रासादके पिछले द्वारसे

गीतगोविन्दके गायक जयदेवके साथ निकल भागा। फिर उस पृष्ठभूमिका ही वह दूरका परिणाम था कि जब तैमूरने गंभारकी असुविधाके कारण अपने एक लाख बंदी मार डाले, तब पासके गाँव अपने क्रिया-कलापोंमें लगे थे और कि जब राणा सांगा अपने सवारोंके साथ समूचे मध्य एशियाके लड़ाकोंसे कनवाहेके मैदानमें जूझ रहा था तब पासका किसान चुपचाप हल जोत रहा था। पर यह तो सब ही दूरके परिणाम थे। पाल कलाकी, कलिंग कलाकी, चंदेल कलाकी पृष्ठभूमि क्या थी? दशकुमारचरित और कादम्बरीकी परम्परामें जब लोग वारांगनाओंके अनन्य उपासक हो गये थे, किन्नरियों और विद्याधरियोंके काल्पनिक जगत्‌को कैलासकी छायामें मानसरोवरकी सिकता भूमिपर उतार लाये थे, उस परम्परामें मध्यकालीन कलिंग और चन्देल कलाकी पृष्ठभूमि क्या थी?

शाक्तोंकी प्राचीन तन्त्र पद्धति अनेक रूपोंमें आसाम और बंगालकी जनतामें सक्रिय थी। मातृरूपिणी नारी जब कुमारीके आकर्षणमें मण्डित हुई और पूजाके पुष्प जब उसकी नग्नतापर पड़ने लगे तब साधकके औत्सुक्य होने क्या देर लगती? और उस तान्त्रिक साधकको सिद्धान्त और शक्ति दी वज्रयानी सिद्ध और उपासक ने।

हीनयानका यान निस्सन्देह हीन ही था, ओछा, महायानका उसी मात्रामें महान्, उदार। उसने निर्गुण अर्चनाको सगुणका आवरण दिया। सगुणकी शक्ति उसके रूपमें है और रूपकी परिधि रागमें पलती है। महायानसे निकले मन्त्रयानने उस रूपकी सत्ताको रागकी अनेकानेक धाराओंमें सींचा। वज्रयानने रागको प्रधान माना, त्यागको बाधक, संयमको सिद्धिका शत्रु, और उसने कलिंगमें महेन्द्र पर्वतपर उसे वज्रको रूप दे प्रण किया कि इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे हटाकर नहीं, भोगकी अनन्यतामें उन्हें कुण्ठित कर वह तृष्णा या तन्हाकी विजय करेगा। उसने ऐलान किया कि जो ब्राह्मणोंका धर्म है वह हमारे लिए अधर्म होगा, जो अधर्म है वही हमारे लिए धर्म होगा, कि उनका अपवाद हमारा साध

होगा, उनका अपेय हमारा पेय और कि जो सिद्धि तप और साधन, योग और दर्शन, यज्ञ और अनुष्ठान नहीं प्राप्त कर सके थे वह रजक औ चाण्डाल कन्याके सहयोगसे प्राप्त होगी। बौद्ध शूद्र पालोंका प्रायः कामरूप बंगाल, उड़ीसा, बिहार, काशी, प्रयाग तककी भूमिपर अधिकार हो गय था और उस एक सत्ताने इस वज्रयानकी प्रतिज्ञाको सफल होनेमें भरपू सहायता दी। तान्त्रिकोंकी शक्ति जब एक दिन बौद्धोंकी तारा प्रज्ञा पारमिता बन गई, तब दोनोंका संयोग उस दिशामें व्यापक शक्तिक परिचायक हुआ। मरमिया, सहजिया, औघड, कापालिक अनेकानेक स्मृति विरोधी, ब्राह्मण-विरोधी, वर्ण-विरोधी, समाज-विरोधी पन्थ चल पड़े जिन्होंने भोगको इष्ट माना, संयमको साधनाका शत्रु। वज्रयानी सिद्धोंमें अधिकतर नीच वर्णोंके थे, अनेक वर्णच्युत ब्राह्मण थे, और उन्होंने स्मृतियो की व्याख्यापर प्रबल प्रहार किये। कलिङ्गसे बुन्देलखण्ड तक, कामरूपसे सह्याद्रि तक सारे मन्दिर उनके हाथमें आ गये। उन मन्दिरोंके भीतर गृहस्थोंके भगवान् थे, बाहर अद्भुत सौन्दर्यकी नग्नता थी—यौन आसनोंके अनन्त रूपायन थे।

यह सामाजिक पृष्ठभूमि ही उस कलाकी जननी हुई, जो मध्यकालमें विशेषतः मूर्त हुई।

ज़िन्दगीको मौतके पञ्जोंसे मुक्त कर उसे अमर बनानेके लिए आदमीने पहाड़ काटा है। किस तरह इन्सानकी खूबियोंकी कहानी सदियों बाद आने-वाली पीढ़ियों तक पहुँचाई जाय इसके लिए आदमीने कितने ही उपाय सोचे और किये। उसने चट्टानोंपर अपने सन्देश खोदे, लाटोंके ऊँचे धातुओं-से चिकने पत्थरके खम्भे खड़े किये, ताँबे और पीतलके पत्तरोंपर अक्षरोंके मोती बिखेरे और उसके जीवन-मरणकी कहानी सदियोंके उतारपर सरकती चली आई, चली आ रही है, जो आज हमारी अमानत-विरासत बन गई है।

इन्हीं उपायोंमें एक उपाय पहाड़ काटना भी रहा है। सारे प्राचीन सभ्य देशोंमें पहाड़ काटकर मन्दिर बनाये गये हैं और उनकी दीवारोंपर एक-से-एक अभिराम चित्र लिखे गये हैं। मिस्रमें आजसे हजारों साल पहले पहाड़ोंकी दीवारें काटकर खोखली कर ली गई थीं और उनमें [illegible] ताबूत रखनेके लिए ममी बनाकर मुर्दे दफना दिये गये थे। उनकी या मिस्री पहाड़ी मन्दिरोंकी दीवारोंपर मृतकों या देवताओंके [illegible] कहानी चित्रकारीके अक्षरोंमें भी लिख दी गई थी।

चीनमें भी पहाड़ काटकर सैकड़ों मन्दिर प्राचीन कालमें बनाये गये थे। उस महान् देशके उत्तर-पश्चिमी कोनेमें कान्सू नामका एक सूबा है जहाँ कभी वह भयानक हूण जाति रही थी जिसने रोम साम्राज्यकी नींव हिला दी थी। उसी जातिके कबीलाई सिपाहियोंने भारतके गुप्त [illegible] नष्टकर हमारे इतिहासके स्वर्ण-युगका अन्त कर दिया था। पर इनके बदले उन्हीं दिनों हमारे महात्माओंने सैकड़ों मील लम्बे-चौड़े रेगि-

स्तान लाँघकर कान्सूको सर कर लिया था और खूँखार हूँणोंके उस देशमें शान्ति, प्रेम और दयाका प्रचार किया था। वहीके तुन-हुआगके पहाडमें फिर तो गिरि-मन्दिर बनने लगे थे और देखते ही देखते ४६९ मन्दिर पत्थरकी छाती फाडकर खड़े कर लिये गये थे। ४६९ मन्दिर, जितने दुनियाके किसी मुल्कमे पत्थर काटकर नही बने। और इन पहाड़ी मन्दिरोंकी दीवारोपर भगवान् बुद्ध और उनके चेलोकी कहानियाँ हज़ारो चित्रोंमें अजन्ताकी शैलीमे लिख डाली गईं जो आज भी गुमराह संगदिल इन्सानको राह दिखाती हैं।

इन गुहा-चित्रोंकी बुनियाद स्वयं अजन्ता भारतकी पुरानी परम्पराका नमूना है। आजसे कोई सवा दो हज़ार साल पहलेसे ही हमारे देशमें पहाड़ काटकर मन्दिर बनानेकी परिपाटी चल पडी थी। और इस प्रकारके सैकड़ों मन्दिर भाजा, कार्ले, कन्हेरी, नासिक, बराबर आदिमे बना लिये गये। अजन्ताकी गुफाएँ पहाड काटकर बनाई जानेवाली देशकी सबसे प्राचीन गुफाओंमेंसे हैं, जैसे एलोरा और एलिफैंटाकी सबसे पिछले काल की। देशकी गुफाओं या गुफा-मन्दिरोमे सबसे विख्यात अजन्ताके हैं जिनकी दीवारों और छतोंपर लिखे चित्र दुनियाके लिए नमूने बन गये हैं। चीनके तुन-हुआग और लकाके सिगिरियाकी पहाड़ी दीवारोपर उसीके नमूनेके चित्र नकल कर लिये गये थे। और जब अजन्ताके चित्रोने विदेशोंको इस प्रकार अपने प्रतापसे निहाल किया तब भला अपने देशके नगर-देहात उनके प्रभावमें कैसे निहाल न होते? बाघ और सित्तनवसलकी गुफाएँ उसी अजन्ताकी ही परम्परामे हैं जिनकी दीवारोपर जैसे प्रेम और दयाकी एक दुनिया ही लिख गई है।

और जैसे सगसाज़ोने उन गुफाओपर रौनक बरसाई है, चितेरे जैसे रग और रेखामे दर्द और दयाकी कहानी लिखते गये है, कलावन्त छैनी से मूरतें उभारते-कोरते गये है, वैसे ही अजन्तापर कुदरतका नूर भी

जैसे वश्म पड़ा है, प्रकृति भी जैसे वहाँ थिरक उठी है। बम्बईके सूबेमें बम्बई और हैदराबादके बीच, विन्ध्याचलसे पूरब-पच्छिम दौड़ती पर्वत-मालोंसे निर्वाचे पहाड़ोंका एक सिलसिला उत्तरसे दक्खिन चला गया है जिसे सह्याद्रि कहते हैं। अजन्ताके गुहामन्दिर उसी पहाड़ी जजीरको सनाथ करते हैं।

अजन्ता गाँवसे थोड़ी ही दूरपर पहाड़ोंके पैरोंमें साँप-सी लोटती बाघुर नदी कमान-सी मुड़ गई है। वहीं पर्वतका सिलसिला एकाएक अर्ध-चन्द्राकार हो गया है, कोई दो-सौ पचास फुट ऊँचा। हरे वनोंके बीच मचरग सबकी तरह उठते पहाड़ोंका यह सिलसिला हमारे पुरखोंको भा गया और उन्होंने उसे खोदकर भवनों-महलोंसे भर दिया। सोचिए जरा ठोस पहाड़को चट्टानी छाती और कमजोर इन्सान पर उन्होंने एका जो किया तो पर्वतका हिया दरकता चला गया और वहाँ एकसे एक बरामदे, हाल और मन्दिर बनते चले गये।

पहले पहाड़ काटकर उसे खोखला कर दिया गया, फिर उसमें सुन्दर भवन बना लिये गये, जहाँ खभोंपर उभारी मूरतें विहँस उठीं। भीतरकी समूची दीवारें और छतें रगड़ कर चिकनी कर ली गईं और तब उनकी जमीन पर चित्रोंकी एक दुनिया ही बसा दी गई, एक आलम उतार दिया गया। पहले पलस्तर लगाकर आचार्योंने उनपर लहराती रेखाओंमें चित्रोंकी काया सिरज दी फिर उनके चेले-कलावन्तोंने उनमें रंग भरकर प्राण फूँक दिये। फिर तो दीवारें उमँग उठीं, पहाड़ पुलकित हो उठे।

और चित्र ऐसे कि न तो किसीने ऐसे चि[illegible] न उनकी कथा सुनी। कभी तो उनकी खोजकी [illegible] रजामकी रियासतमें बाजसे [illegible] री अजन्ताके पास [illegible] करते घोड़े-

पर उधर जा भटका था, और सहसा जो नजर पड़ी तो सीढ़ियोंके सिल-सिलेके ऊपर मूरतोंसे भरे भवनोंकी कतार देख वह हैरतमें आ गया था। फिर ऊपर चढ़ बरामदों और हालोंकी दीवारोंपर उसने जो नजारे देखे तो उसे लगा जैसे किसी जादूके नगरमें चला आया है। फिर धीरे-धीरे जब यूरोपके पारखियोंने उसे देखा, पेरिसकी नुमायशमें जब उन चित्रोंकी नकलें प्रदर्शित हुईं तब वहाँके लोगोंने जाना कि सन्त पाल और सन्त पीतरके गिरजों, पोपकी राजधानी वातिकन और फ्लोरेन्स, पादुआ और वेनिसकी दीवारोंसे कहीं बढ़ अजन्ताकी गुफाओंकी दीवारें हैं जिनपर रंग बरसाने वाले चितेरे रफेल और माइकेल एँजेलो, लियोनार्दो दा विंची और बोतिचेली, तितियन और वेलास्केज़से कलाके कौशलमें तनिक भी घटकर नहीं।

कितना जीवन बरस पड़ा है इन दीवारोंपर! जैसे फसाने-अजायब-का भंडार खुल पड़ा हो। कहानीसे कहानी टकराती चली गई है। बन्दरों-की कहानी, हाथियोंकी कहानी, हिरनोंकी कहानी। कहानी क्रूरता और भयकी, दया और त्यागकी। जहाँ बेरहमी है वहीं दयाका भी समुद्र उमड़ पड़ा है, जहाँ पाप है वहीं क्षमाका सोता फूट पड़ा है। राजा और कंगले, विलासी और भिक्षु, नर और नारी, मनुज और पशु सभी कला-कारोंके ब्रुशसे निरजते चले गये हैं। हैवानकी हैवानीको इन्सानकी इन्सा-नियतसे कैसे जीता जा सकता है, कोई अजन्तामें जाकर देखे। बुद्धका जीवन हजार धाराओंमें होकर बहता है। जन्मसे लेकर निर्वाण तक उनके जीवनकी प्रधान घटनाएँ कुछ ऐसे लिख दी गई हैं कि आँखें अटक जाती हैं, हटनेका नाम नहीं लेतीं।

यह हाथमें कमल लिये बुद्ध खड़े हैं जैसे छवि छलकी पड़ती है, उभरे नयनोंकी जोत पसरती जा रही है। और यह यशोधरा है, वैसे ही कमलनाल धारण किये त्रिभंगमें खड़ी। और यह दृश्य है महाभिनिष्क्रमणका—यशो-धरा और राहुल निद्रामें खोये, गौतम दृढ़निश्चयपर धड़कते हियाको सँभा-

रहे। और यह नन्द है, अपनी पत्नी सुन्दरीका भेजा, द्वारपर आये बिना भिक्षाके लौटे भाई बुद्धको लौटाने जो आया था और जिसे भिक्षु बन जाना पड़ा था। बार-बार वह घर भागनेको होता है, बार-बार पकड़-कर मठमें लौटा लिया जाता है, और प्रिया सुन्दरी डकरती रहती है। उधर फिर वह यशोधरा है, बालक राहुलके साथ। बुद्ध आये हैं पर बजाय पतिकी तरह आनेके भिखारीकी तरह आये हैं और भिक्षापात्र देहलीमें बढ़ा देते हैं। यशोधरा क्या दे जब उसका अपना साईं भिखारी बनकर आया है? क्या न दे टाले? पर है ही क्या अब उसके पास उसकी मुकुटमणि सिद्धार्थके खो जानेके बाद? सोना-चाँदी, मणि-मानिक, हीरा-मोती तो उस त्यागी जगत्त्राताके लिए मिट्टीके मोल नहीं। पर हाँ, है कुछ उसके पास—उसका बच्चा एक मात्र लाल—उसका राहुल। और उसे ही वह अपने सरवसकी तरह बुद्धको दे डालती है। चित्रकारने जैसे दीवारपर उसका वह रूप अपनी रेखामें पकड़ लिया है—यशोधरा राहुलको जैसे आगेको उठाये हुए है और दोनोंके मस्तक, रूप-रंगमें समान, चेष्टाओंमें समान, बरबस उठ आये हैं। कहानी यहाँ तो यहीं रह गई है पर बौद्ध ग्रंथोंमें पूरी कर दी गई है, जहाँ यशोधरा अपने नन्हे-से बच्चेको भी देकर नारीसुलभ व्यंग्यसे कहती है—ले, वत्स, अपने पितासे तू अब अपना विरसा माँग। और बुद्ध उस चोटसे मलिन नहीं पड़ जाते, मुसकरा कर चेलेसे कहते हैं—मोग्गल्लान, राहुलको प्रव्रज्या दो। सही, बुद्धके पास संन्यासकी विरासतके सिवा और है ही क्या?

और उधर वह बन्दरोंका चित्र है, कितना सजीव, कितना सनिमार्! उधर सरोवरमें जलविहार करता वह गजराज कमलदण्ड तोड़-तोड़कर हथिनियोंको दे रहा है। यहाँ महलोंमें यह प्यालोंके दौर चल रहे हैं, उधर यह रानी अपनी जीवन-यात्रा समाप्त कर रही है, उसका दम टूटा जा रहा है। खाने-खिलाने, हँसने-हँसाने, नाचने-गाने, कहने-सुनने, बन-नगर, ऊँच-नीच, दूर-पास, धनी-गरीबके जितने नजारे हो सकते हैं सब आदमी

इन गुफाओंमेंसे २४ तो विहार हैं, ५ चैत्य हैं। विहार एक प्रकारके मठ होते थे जिनमें बौद्ध भिक्षु रहा करते थे। बीचमें उपदेश या सभाकी बैठकके लिए एक हाल होता था और उसके चारों ओर भिक्षुओंके रहने और ध्यान-चिन्तनके लिए छोटे-छोटे कमरे होते थे। चैत्य एक प्रकारके मन्दिर थे जिनमें स्तूप या बुद्धकी मूर्ति पूजाके लिए स्थापित होती थी।

बाहरके कामदार मेहराबनुमा खिड़कियाँ थी जिनसे प्रकाश भीतर पहुँचता था। इन खिड़कियोंकी बनावट नालीनुमा थी, बरामदे भी अधिकतर मेहराबदार ही हैं। बाहर और भीतर बुद्धकी अनेक मूर्तियाँ हैं जिनकी खुदाई असाधारण है पर जो चित्रोंकी अनन्तता और विविधतामें दब जाती है। अधिकतर गुफा-मन्दिरोंकी दीवारें छतों तक चित्रोंसे ढकी हैं।

इन गुफाओंका निर्माण ईसासे करीब दो सौ साल पहले ही शुरू हो गया था और वे सातवीं सदी तक बनकर तैयार भी हो चुकी थीं। एक-दो गुफाओंमें करीब दो हजार साल पुराने चित्र भी सुरक्षित हैं। पर अधिकतर चित्र भारतीय इतिहासके सुनहरे युग गुप्तकाल, पाँचवीं सदी और चालुक्य काल (सातवीं सदी) के बीच बने। पहली गुफाओं और पहले चित्रोंके बननेके समय अजन्ता और दक्खनकी गुफा और चित्रोंके बननेके समय चालुक्योंका प्रभुत्व इतना था कि इनके राजा पुलकेशिन् दूसरेने उत्तर भारतके प्रसिद्ध राजा हर्षवर्द्धनको हराकर नर्मदा तक अपनी सीमा स्थापित की थी। उसी राजाके दरबारमें फारसके बादशाह खुसरू दूसरेका शिष्ट मण्डल आया था। उस दूत-मण्डलका चित्र ईरानी वेशमें अजन्ताकी गुफामें आज भी देखा जा सकता है।

अजन्ता संसारकी चित्रशालाओंमें अपना अद्वितीय स्थान रखता है। इतने प्राचीन कालमें इतने सजीव, इतने गतिमान्, इतने बहुसंख्यक, कथा-प्रधान चित्र कहीं नहीं बने। अजन्ताके चित्रोंने देश-विदेश सर्वत्रकी चित्र-कलाको प्रभावित किया। उसका प्रभाव पूर्वके देशोंकी कलापर तो पड़ा

हो, मध्य और पश्चिमी एशिया भी उसके कल्याणकर प्रभावसे वंचित न रह सका ।

× × ×

भारतीय कलामें जो सबसे अनोखी और महत्त्वकी बात है वह यह है कि यहाँके कलावन्तोंने अपनी सामग्रीकी कोई सीमा न बाँधी। धातु, लकडी, हड्डी, पत्थर हर चीज़ कलाका आधार बनी और जब उनसे भी उनकी महान् कल्पनाका पोषण न हुआ तब उन्होंने ठोस चट्टानपर अपनी निगाह डाली और पहाडोंको काटकर खोखला कर दिया, उनमें अपने मन्दिर बनाये। ऊपर उन मन्दिरोंका कुछ जिक्र किया जा चुका है, खासकर अजन्ताके मन्दिरोंका। नीचे एलोराके मन्दिरोंका ज़िक्र करेंगे।

एलोरा यादवोंकी प्राचीन देवगिरि और मुहम्मद तुगलकके दौलताबादके पास ही, अजन्तासे करीब पचहत्तर मीलके फासलेपर जिला औरंगाबादमें है। अजन्ता और एलोरा दोनों पहले निजाम हैदराबादके राज्यमें पड़ते थे, अब वे बम्बईके इलाकेमें हैं। अजन्ता जिस तरह अपनी तसवीरोंकी खूबसूरतीमें सानी नहीं रखता वैसे ही एलोरा अपनी मूरतोंकी कारीगरीमें बेजोड है। ऐसा नहीं कि एलोराकी दीवारोंपर चित्रकारी न रही हो, पर जैसे अजन्तामें मूरतोंके होते हुए भी प्रधानता जहाँ चित्रोंकी है, वैसे ही चित्रोंके होते हुए भी एलोरामें प्रधानता उसकी मूरतों और बेल-बूटोंकी है। वैसे तो अजन्ताकी गुफाओंका सिलसिला अर्धचन्द्राकार बडी खूबसूरतीसे काटा गया है और वह दृश्य एक किसलती नजरमें एलोरामें नहीं मिलता, पर एलोराकी इमारतोंका महत्त्व अकेले-अकेले असाधारण है। वहाँके मन्दिरकी सख्या तीससे ऊपर है और प्रायः बारादरीके नमूनेके वे दो-दो, तीन-तीनमें बने हुए हैं। अजन्ताकी गुफाएँ एक ही तलकी हैं और एक ही नजरमें वहाँकी सारी खूबसूरती समेटी जा सकती है। पहाड़की ठोस दीवारको काटना अपने-आपमें कुछ आसान नहीं, फिर उसे काटकर उसमें दो-मंजिली, तीन-मंजिली इमारतें जिन्दा चट्टानोंमें खड़ी कर देना तो

विरलेकी बात है, सो एलोराके राजाओं, उनके राजों और कलावन्तोंने भर कर लिया।

अजन्ताके चैत्य और विहार बौद्धोंके है, पर एलोरामें बौद्ध, हिन्दू और जैन तीनों धर्मोंके विहार और मन्दिर बने हैं। उनकी संख्या भी तीससे ऊपर है। बौद्ध विहारोंकी संख्या ग्यारह और चैत्यकी एक है। हिन्दू मन्दिर वहाँ सत्रह है और शेष जैन। भारतमें धर्मों और सम्प्रदायोंकी विविधता तो जरूर रही, पर कलामें उसके कलावन्तोंने हिन्दू, बौद्ध आदिके भेद न किये। एक ही कलाका विकास युगोंके अपने-अपने नये प्रतीकोंके साथ होता गया और बौद्ध, हिन्दू, जैनोंने समान रूपमें उनका व्यवहार किया। अधिकतर उनके देवता भी समान हैं। अन्तर बस इतना है कि कहीं देवता बौद्ध, हिन्दू या जैन प्रधान देवताके अनुचर बन जाते हैं। यही कारण है कि एलोराके मन्दिरोंकी कला तीनों सम्प्रदायोंके मन्दिरोंमें समान रूपसे बरती गई है। एक ही प्रकारके कटाव अपने भिन्न-भिन्न रूपोंमें प्रयुक्त हुए हैं। मोटे, चिकने, चमकते हुए खम्भोंपर इतने सुन्दर, इतने अनन्त बेल-बूटे काटे गये हैं कि किसीने सच कहा है कि जब भारतीय कलावन्तोंके पास अपने देवी-देवताओंके सजा लेनेके बाद भी अफरात मोती बच रहे, तब उन्होंने अपनी दीवारों और खम्भोंपर उन्हें बिखेर दिये। सही, मोतियोंकी असीम सम्पदा एलोराके मन्दिरोंके खम्भोंपर बिखरी पड़ी है। ऐसे सुन्दर खम्भे भारतके दूसरे गुहा-मन्दिरोंमें देखनेमें नहीं आते।

एलोराके मन्दिर राष्ट्रकूट राजाओंके शासन कालमें बने, छठीसे प्राय नवीं सदियोंके बीच। यहाँके मन्दिरोंमें प्रधान हिन्दू धर्मके हैं। दशावतार और कैलाश नामके मन्दिर तो सचमुच ही संगतराशोंके अचरजके नमूने हैं। दशावतार मन्दिरमें विष्णुके दसों अवतारोंका अत्यन्त सुन्दर मूर्तन हुआ है। परन्तु एलोराके मन्दिरोंकी चूड़ामणि तो कैलाश है, शिवका मन्दिर। संसारमें सैकड़ों-सैकड़ों मन्दिर चट्टानोंको काटकर बनाये गये हैं, पर कैलाशके जैसा कहीं नहीं बना। तीस लाख हाथ पहाड़की कोखसे पत्थर

उनोंका छोटा रूप और दूसरा इन्द्रसभा। इन्द्रसभामें इन्द्र, इन्द्राणी और उनके गज ऐरावतका वैभव तो बस देखने योग्य है।

अजन्ता और एलोराके गुहा-मन्दिर संसारके इस प्रकारके मन्दिरोंमें असाधारण हैं। जिस प्रकार वे मानव कला और कारीगरीके नमूने हैं उसी प्रकार उसके अनन्त श्रम, विश्वास, आस्था और निष्ठाके भी वे आदर्श हैं।

कैलाशका छोटा रूप और दूसरा इन्द्रसभा। इन्द्रसभामें इन्द्र, इन्द्राणी और उनके गज ऐरावतका वैभव तो बस देखने योग्य है।

अजन्ता और एलोराके गुहा-मन्दिर संसारके इस प्रकारके मन्दिरोंमें असाधारण हैं। जिस प्रकार वे मानव कला और कारीगरीके नमूने हैं उसी प्रकार उनके अनन्त श्रम, विश्वास, आस्था और निष्ठाके भी वे आदर्श हैं।

काटकर निकाल लिया गया है और दो-मंजिली इमारत खड़ी कर दी गई है। आदमीके पौरुषका इतना बड़ा सबूत और कहीं देखनेको नहीं मिलता। समूचा ताजमहल मय अपने हातेके उसमें रख दिया जा सकता है। शिवके लिंगपर मन्दिरोंमें निरन्तर जलकी बूँदें टपकते रहनेके लिए सूराखदार घड़ा रक्खा जाता है। सो वैसी कोई मामूली कल्पना कैलासके कलाकारोंको आकृष्ट न कर सकी, उसके इन्जीनियरोंने दूर बहती एक नदीकी धारा उधरको मोड़ दी और इस प्रकार वे उसे शिवलिंगपर सरका लाये कि जल आज हजार सालोंसे उसपर निरन्तर टपकता रहा है। समूचे विशाल हाथी चट्टानोंसे काटकर खड़े कर दिये गये हैं। कालभैरव, काली और शिवके गणोंकी भयानक और बीभत्स एक-से-एक मूर्तियां बनी हैं। सामने एक गगनचुम्बी आकाशदीप है। नन्दी और नन्दीके लिए मण्डप है और बाहर एक जालीदार दीवार है। कृष्ण प्रथम राष्ट्रकूटने इस मन्दिरका निर्माण शुरू किया था और पीढ़ियों बाद प्रायः सौ वर्षमें इसका बनना समाप्त हो सका।

दशावतारके पहले जो हिन्दू गुहा-मन्दिर है, उसमें शिवका ताण्डव और रावणके कैलास उठानेके दृश्य बड़ी सुन्दरतासे उभारे और कोरे गये हैं। शिवके नर्तनमें असाधारण वेग है और रावणके रूपमें तो जैसे श्रम और तेज फूट पड़ता है, कैलास पर्वतकी चूलें ढीली हो गई हैं, पार्वती घबड़ाकर शिवके तनसे चिमटती जा रही है, पर शिव शान्त मुद्रामें व्यग्यात्मक भावसे पैरके अगूठे मात्रसे कैलासको दबाते हैं, और रावणका प्रयास व्यर्थ और अहंकार चूर-चूर हो जाता है।

चार-पाँच गुहा-मन्दिर एलोरामें जैनोंके भी हैं। उनमें भी उसी प्रकार कलाकी बहुरूपी सम्पदाका व्यवहार हुआ है, जैसे बौद्ध और हिन्दू मन्दिरोंमें। उनके तीर्थंकरोंका देव-परिवार भी उसी तन्मयतासे मूर्त हुआ है, उसी अनन्त मात्रामें वहाँकी दीवारों और खम्भोंपर भी बेल-बूटे सजाये गये हैं। उन मन्दिरोंमें दो प्रधान हैं—एक तो कैलासके नमूनेमें ही बना प्रायः

इसीका छोटा रूप और दूसरा इन्द्रसभा। इन्द्रसभामें इन्द्र इन्द्राणी और उनके गज ऐरावतका वैभव तो बस देखने योग्य है।

अजन्ता और एलोराके गुहा-मन्दिर संसारके इस प्रकारके मन्दिरोंमें असाधारण हैं। जिस प्रकार वे मानव कला और कारीगरीके नमूने हैं उसी प्रकार उनके अनन्त श्रम, विश्वास, आस्था और निष्ठाके भी वे आदर्श हैं।

कलाका धर्मसे सम्बन्ध पुराना है। बहुत पुराना, जितना धर्म पुराना है। सारी महान् कलाओंका सम्बन्ध मजहबसे है। अपने देशकी अजन्ता और एलोराकी कलाएँ, भरहुत और सांचीके स्तूप और रेलिङ्ग, उत्तर और दक्षिण भारतके विशाल मन्दिर, कम्बुज (कम्बोडिया) और जावाके, ब्रम्बनम् और बोरोबुदूरके मन्दिर और मूर्तें, बीच कालके यूरोपके गिरजा-घरोंकी तस्वीरें और मूर्तें—सबका सम्बन्ध अपने-अपने काल और देशके धर्मसे रहा है।

इसलिए मूर्तिकलाका भी सम्बन्ध अधिकतर मजहबसे ही रहा है, वैसे मूर्तें खेलने और दिलबहलावके लिए भी बनी हैं, कलाकी नजाकत और नफासत लेकर भी गढ़ी गई हैं पर अधिकतर उन्हें पूजाके लिए ही बनाया गया है। एक जमाना था जब समूची पुरानी दुनियामें मूर्तें पूजी जाती थीं। मिस्रके थीबिज और मेम्फिसमें, दजला-फरातकी घाटीके बाबुल आदि नगरोंमें, असुर और खल्दी राजाओंकी राजधानियोंमें, निनेवेमें, एलाम और अक्कादमें, सूसा और एकबतानामें, चीनके नगरोंमें, सर्वत्र मूर्तोंका बोलबाला था, मूर्तें पूजी जाती थीं। देवताको निर्गुण और निराकार मानकर उसको पूजना इन्सानने कभी नहीं सीखा था और जो उस पुराने जमानेमें ऐसा करनेके इक्के-दुक्के प्रयत्न उसने किये भी तो वे बेकार हो गये। इसराइलके अमूर्त निराकार यहोवासम्बन्धी आवाज बियाबानोंमें गूँजकर चुप हो गई, मिस्रके इखनातूनके एकेश्वरवादका सिद्धान्त भी दुश्मनीकी बाढ़में दम घुट कर मर गया। चारों ओर इन्सानी देवताओंका दबदबा था जो इन्सानकी तरह राग और बैर करते थे, प्यार और

कुमती और मजहबी धर्मविश्वासोंमें आदमीको डराकर उसपर अपनी सत्ता कायम रखते थे।

भारतमें भी मूरतोंको गढ़ने या ढालनेका तांता कभी न टूटा। सिन्ध-की घाटीके मोहनजोदड़ो और पंजाबके हड़प्पाकी शहरी सभ्यताके ज़मानेसे आजतक लगातार इस देशमें मूरतें बनाई और पूजी जाती रही हैं। पिछले ५ हजारसालोंका इतिहास इसका गवाह है कि बीच-बीचमें यद्यपि हमलोंकी चोटसे पत्थर और धातुकी मूरतें भी तिलमिला उठी हैं, उनका बनाना और पूजा जाना कभी रुका नहीं है।

सिन्धकी घाटीकी मूरतोंकी कहानी बड़ी पुरानी है, ईसासे २–३ हजार साल पहलेकी, आजसे कोई ४–५ हज़ार साल पहलेकी। सांचेमें गीले चूने और मिट्टीको ढालकर ढालनेकी कला तबके आदमीने सीख ली थी। खानोंको खोदकर धातुओंको निकालने और उन्हें साफ कर ढालनेका हुनर भी जाना जा चुका था। खूबसूरत अङ्गोंवाली शक्लोंकी उभरी हुई मुहरें जो सिन्धके उन पुराने नगरोंमें मिली हैं वे उस ज़मानेकी कलाकी कहानी कहती हैं। शेर और हाथी, गेंडे और हिरन, भेड़ और बकरी, आदमी और पेड़-पौधोंकी तस्वीरें इन मुहरोंपर जो उभारकर बनी हैं वे आज भी अपनी खूबसूरती और बनावटमें एकता और बेजोड़ हैं। इनमें जो सांड वाली मुहर है उसमें शिराओंका उभार और ताकतका अटाव कुछ ऐसा है कि देखने वाले उसकी सजीवतामें दङ्ग रह जाते हैं। वैसी कोई चीज कलाके मैदानमें मिस्र और ईराककी समकालीन सभ्यतामें नहीं बनी। तभीकी नर्तकीकी एक कांसेकी मूरत कमरपर हाथ रखे नाचकी मुद्रामें जो खड़ी है वह कलाकी सादगीमें लासानी है। सिर और हाथ-पैरोंके बगैर पत्थरकी एक धड़ कुछ ऐसी दम-खम लिये हुए है कि लगता है नाचके वेगमें मूरत-का रोम-रोम थिरक रहा है।

ईसासे करीब डेढ़-दो हज़ार साल [illegible] सभ्यताका अन्त हो

गया, और जो ऋग्वेदके आर्योंकी एक नई सभ्यताकी माया देशको मिला, कलाका विकास करीब-करीब रुक ही गया। अगले हज़ार साल तक देशमें मूरतें शायद बनी ही नहीं। सिकन्दरके हमलेके पहलेकी कुछ हाथकी बनी मिट्टीकी मूरतें जरूर मिली हैं, पर उनके पहले और सिन्धकी सभ्यताके पीछे कलाके इतिहासमें एक बड़ी चौड़ी खाई है जिसमें मूरतोंका बिलकुल अभाव है। सिकन्दरके हमलेके बाद, सम्राट् अशोकके पहले और पीछे, मिट्टीके ठीकरे साँचेमें ढाल पका कर बनाये जाने लगे थे जिनपर उभरी हुई शक्लें सुन्दर लिबासमें सजी होती थीं और ज़ियादातर पूजनेके काममें आती थीं। उस ज़मानेको मौर्यकाल कहते हैं, क्योंकि उन दिनों उत्तर भारतपर मौर्य राजाओंका राज था, तभी चन्द्रगुप्त और अशोकने राज किया। अशोकने एक ही पत्थरके जो अनेक विशाल खम्भे बनवा कर उन-पर अपनी प्रजाके पढ़नेके लिए उपदेश खुदवाये। वे खम्भे ईरानी दाराओंके खम्भोंकी नकलमें बने थे, पर बेशक थे वे उनसे भी खूबसूरत। उनके ऊपरी सिरेपर हाथी साँड़ आदि जानवरोंकी मूरतें बनी थीं। इसी प्रकारकी सारनाथकी एक लाटपर अशोकने चार, पीठ-से-पीठ लगे, सिंह बनवाये थे, जो आज भी वहाँके अजायबघरमें रखे हैं। उन्हींकी तस्वीर आज हमारी भारत सरकारकी मुहर है। उन शेरोंकी शकल इतनी सजीव है, उनकी शिराओंका उभार इतना सही है कि देखनेवाला दाँतों तले उँगली दबा लेता है। अशोकके इन खम्भोंपर जो एक तरहकी चमकदार पालिश है वह ईरानी कलावन्तोंकी देन मानी जाती है। वैसी कोई चीज न तो अशोकके ज़मानेसे पहले भारतमें बनी और न पीछे और वह पालिश सदाके लिए गायब हो गई। अशोकसे कुछ ही पहले पच्छिमी पंजाब और सिन्धपर ईरानी दाराओंकी हुकूमत सदियों रही थी। अशोककी इन चमकती लाटोंके पहलेकी बस दो-चार पत्थरकी बनी बेहद भोंडी मूरतें मिली हैं। मौर्योंका ज़माना ईसासे करीब १८५ साल पहले खत्म हो गया।

नया ज़माना शुंग राजाओंका था जो ब्राह्मण थे और बौद्ध मौर्योंके

पुत्ने-मिले जा रहे थे, पर कला-सम्बन्धी उनकी रुचि बहुतकुछ यूनानी थी और उन्होंने यूनानी शैलीका प्रयोग कलाके मैदानमें किया। कोरने और उभारनेके विषय तो भारतीय और बौद्ध ही बने रहे पर उनको कोरा या उभारा ग्रीक कलावन्तोंने। यह ग्रीक शैली या टेकनीकका प्रयोग भारतीय धर्मकी जमीनपर था। प्रयोग सफल हुआ और एक नई शैली मूर्तिकलामें निकल आयी, जो गान्धार शैली कहलाई। गान्धार शैली इसलिए कि जिस इलाकेमें उस शैलीका विकास हुआ उसका नाम गन्धार था और उसकी राजधानी तक्षशिला थी। उसके दूसरे नाम हिन्दू-ग्रीक और ग्रीक-रोमन पड़े। हजारों-हजारों मूरतें गांधार शैलीमें बनकर मथुरासे बामियान तक इस देशके विदेशी आस्थावानोंकी पूजा पाने लगी। बुद्धके जीवनके अनेकों दृश्य पत्थरकी पटियोंपर उभार दिये गये। उन उभरे दृश्योंकी शक्लोंकी दमखम, रूपरेखा और वेशभूषा योरोपीय थी। उसी गान्धार कलाने पहले-पहल बुद्धकी मूरत कोरी जिसकी हजारों नकलें देशके हर भागमें बनकर तैयार हो गयी।

गान्धार शैलीकी मूरतोंकी सबसे बड़ी राशि ईसवी सन्‌की पहली दूसरी सदियोंमें कुषाण राजाओंकी हुकूमतमें बनी। कुषाण राजाओंकी राजधानी तो थी पेशावर, पर पूरबमें उनके दो बड़े केन्द्र, मथुरा और मिर्जापुर, थे। मथुरामें शक और कुषाण राजाओंकी आदमकद मूरतें देवकुल गाँवसे मिली हैं जिससे जाहिर है कि वहाँ इन राजाओंकी एक मूर्तिशाला कायम थी। इसीसे बादमें उस गाँवने अपना नाम भी पाया। इन्हीं मूरतोंमें एक कुषाण राजाओंमें सबसे महान् कनिष्ककी है, सिरकटी मूरत, अचकन, सलवार और घुटनोंतक पहुँचनेवाले जूतोंके लोवससे लैस। कुषाणोंके जमाने-की भारतकी मूर्तिकला, खासकर पत्थर और मिट्टीकी मूरतें, रूप और संख्यामें बड़े महत्त्वकी है। बुद्ध, बोधिसत्त्वों और बौद्ध धर्म तथा पुराणके अनेकानेक छोटे-बड़े देवताओंकी अनन्य मूर्तियाँ, मथुरा, सारनाथ और अमरावतीमें पत्थरमें कोरी और धातुमें ढाली गईं। जैसे ईसाइयोंमें प्रच-

लित है कि ईसाने कहा था कि संसारके सारे आदमियोंका पाप मैं अपने सिर लेना हूँ वैसे ही और उनसे भी पहले बोधिसत्वकी कल्पना करते समय कहा गया कि जब तक एक जीव भी बिना निर्वाणके रह जायगा तब तक बोधिसत्त्व निर्वाण न लेंगे। इस प्रकारके विचारोंका बौद्ध धर्मके जिस सम्प्रदायने प्रचार किया उसको महायान कहते हैं। वह बुद्ध या अर्हतोंकी दुनियासे भिन्न था जिसकी कोशिश बस अपने ही भवसागर पार करने तक सीमित थी। इसीसे उसे हीनयान या तुच्छ नाव कहने लगे थे। संसार के सभी प्राणियोंको चढ़ाकर भवसागर पार करानेवाले बौद्ध सम्प्रदायका नाम इसीसे महायान पड़ा। बुद्धको निजी देवता माना गया और पहली बार उनकी मूरत बनाई गई। बुद्धने स्वयं अपनी मूरत बनानेका निषेध कर दिया था जिससे उनकी उपस्थिति प्रकट करनेके लिए कलामें उनके छत्र या खड़ाऊँ या हाथ-पैरों या बोधि-वृक्षकी शकलें बना या उभार ली जाती थी। अब नये सम्प्रदायने जो भगवान् बुद्धको अपना निजी देवता मान लिया तो पूजाके लिए उनकी मूरतोंका बनना भी स्वाभाविक था और हज़ारों मूर्तियाँ खड़ी, बैठी या उपदेश करती बनकर तैयार हो गयीं।

पर महायानका असल देवता तो दयाका सागर और दुनियावी जीवों का हमदर्द बोधिसत्त्व था। बोधिसत्त्वकी कल्पना बिलकुल नयी थी और वह उस पुरुषका नाम था जिसका, समय आनेपर, बुद्ध हो जाना लाज़मी था। बोधिसत्त्व बुद्धकी बुद्ध होनेसे पहलेकी स्थितिका नाम था। सो नये सम्प्रदायमें बोधिसत्त्वकी मूरतोंकी बाढ़-सी आ गयी और उनका केन्द्र भी अधिकतर मथुरा बनी। बोधिसत्त्व और बुद्धकी मूरतोंमें ज़ियादातर लेबास का फर्क है। बुद्ध संन्यासी थे और बोधिसत्त्व घरबारी होते थे। इसीसे बुद्ध भिक्षुओं या संन्यासियोंका लेबास त्रिचीवर पहनते थे और बोधिसत्त्व गृहस्थ और अधिकतर राजकुमारके वेशमें रहते थे, पगड़ी और गहने पहनते थे। बुद्ध सिर मुड़ाये होते थे, तीन कपड़े—नीचे अन्तर्वासक (तहमत), ऊपर उत्तरासंग, और सबसे ऊपर संघाटी—पहनते थे। यही लेबास कुषाण

सामने बुद्ध और बोधिसत्वकी मूरतोंपर मिलता है। कुषाणोंके युगमें भारतकी मूर्तिकलामें ये दो नयी बातें हुईं—एक तो ग्रीक या यूरोपीय टेकनीकका भारतीय कलामें उपयोग और दूसरी बुद्ध और बोधिसत्वकी मूरतोंका निर्माण।

पहले लिखा जा चुका है कि कुषाणकालकी कलाका मरकज़ मथुरा थी। वहाँ बौद्धों और जैनों दोनोंके स्तूप बने जिन्हें रेलिंगोंमें घेर दिया गया। इन रेलिंगोंपर भी साँची और भरहुतके स्तूपोंकी रेलिंगोंकी ही तरह मैकड़ों-मैकड़ों छोटी-बड़ी खूबसूरत मूरतें उभार दी गई। इनमें सबमें खूबसूरत मूरतें यक्षियोंकी हैं जो रेलिंगोंके खम्भोंपर अनेक शक्लोंमें उभारी गई हैं। इनमें कोई बीन बजा रही है, कोई नाच रही है, कोई झरने तले नहा रही है, कोई नहाकर बालोंसे जल निचोड़ रही है, जिसकी बूँदोंको मोतियोंके धोखेमें निगलनेके लिए हंस दौड़ पड़ते हैं, कोई तोता और पिंजड़ा लिये हुए है, कोई सिंगार, और कोई अशोकको ठोकर मारकर या बकुलपर शराबका कुल्ला फेंककर उनमें फूल लानेकी कोशिश कर रही है। गरज़ कि असलियत और कल्पनामें जिन्दगीकी जितनी सूरतें हो सकती हैं उन सबका निर्वाह इन मूरतोंमें हुआ है। अधिकतर ये नंगी हैं और मर्दकी पीठपर खड़ी हैं। मर्द बौनेकी शक्लमें जमीनपर औंधा पड़ा दिखाया गया है, जिसकी आँखें निकली पड़ती हैं, जुबान लटकी जा रही है, फिर भी चेहरेपर एक अजीब खुशीकी रौनक बरस रही है। जाहिर है कि कलावन्तोंको यह दिखाना मंजूर है कि मर्द किस कदर अपनी कामनाओंके केन्द्र औरत के मुकाबले बौना है और जो वह उसके भारसे कुचला जा रहा है वह अपनी हालतको नियामत ही मानता है और उसमें फ़ख़्र हासिल करता है।

कुषाणकालकी कलामें जैन मूरतोंका आगमन भी एक नयी बात है। जैन तीर्थंकरोंकी मूरतें भी बुद्धकी मूरतोंकी तरह होती हैं, फर्क बस इतना होता है कि जहाँ बुद्ध कपड़े पहनते हैं वहाँ जैन नंगे रहते हैं। जैसे मथुरा

उत्तर भारतमें कुषाण कलाका केन्द्र थी वैसे ही दक्खनमें कृष्णाकी घाटी अमरावती भी विशेष महत्त्वकी थी। यहाँ भी उन्हीं दिनों पुराने स्तूपके चारों ओर रेलिंगें खोदाई गई और स्तूपके तनपर संगमरमरकी पट्टियाँ जड़ दी गयीं। इन पट्टियोंपर बड़ी खूबसूरत आदमी और जानवरोंकी मूरतें खोदी और उभारी गई हैं। आदमियोंके पतले ऊँचे शरीर तो बस देखने ही लायक हैं।

कुषाणकालकी पत्थरकी मूरतोंकी पहचान कई बातोंके जरिये की जाती है। एक तो शरीरका आकार बजाय चिपटेके कुछ अण्डाकार हो जाता है, जो सर्वथा अण्डाकार नहीं। चेहरेमें गोलाई अधिक होती है, चिपटापन कम। बुद्धके पैरोंके तलवे सर्वथा मांसल होते हुए भी लकड़ीके सख्त से दीखते हैं। नारीका केश-विन्यास बदल जाता है। सामने ललाटके ऊपर बालोंकी सजावटमें एक तरहकी गोलावट होती है जिसमें बीचसे माँग पीछेकी ओर जाती है, और पीछे अधिकतर चोटियों या वेणियोंमें बाल गूँथ लिये जाते हैं। गहनोंकी सजावट पहलेके युगकी अपेक्षा कुछ कम हो जाती है। मर्दोंकी पगडीसे शुंगकालकी दोनों गाँठें गायब हो जाती हैं और उनकी जगह अकेले पत्तेकी शकलकी सजावट ले लेती है। धोती प्राय. आजकी तरह ही एक पैरपर चुन्नटदार दूसरेपर कसी हुई पहनी जाती है।

कुषाणकाल और गुप्तकालके बीच देशमें राजनीतिक क्रान्ति होती है जो गुप्तोंके युग तक क्रियाशील रहती है। पदमपवाँया और कन्तितके नाग राजा विदेशियोंसे विद्रोह करते हैं और कुषाणोंसे भारत-भूमि छीन लेनेकी कोशिश करते हैं। कुषाणोंके पूरबी इलाकोंके मरकज मथुरा तक उनके हमले होते हैं और कुषाण राजाओंको पच्छिमी पंजाब और काबुलकी ओर सरक जाना पड़ता है। नाग लोग अपनी पीठपर शिवकी मूरत धारण करते हैं जिससे वे 'भारशिव' कहलाते हैं और जब-जब वे अभी तक विदेशी समझे जानेवाले कुषाणोंकी भूमि छीनते हैं तब-तब अश्वमेध करते

है, और जब काशीमें ऐसे अश्वमेधोंके नहानकी गश्ला दस हो जाती है तब काशीके उस घाटका महातम स्वर्गकी तरह बढ़ जाता है जिसे दशाश्वमेध कहते हैं। ईसाकी तीसरी सदीके अन्तमें भारतके इतिहासमें गुप्त राजा प्रबल होते हैं और समुद्रगुप्त उत्तरसे दक्खिन तककी जमीन रौंद डालता है। तब उसका बेटा चन्द्रगुप्त शकोंको मालवा और गुजरातसे निकालकर उस राष्ट्रीय विद्रोहका अन्त करता है जिसका आरम्भ भारशिव नागोंने किया था। देशकी हर तरहसे तरक्की होती है और भारतीय इतिहासका सुनहरा युग हर मैदानमें चमक उठता है। अजन्ता और बाघकी गुफाओंमें दीवारें नयनाभिराम चित्रोंसे भर दी जाती हैं जिनकी नकल दूर-दूरके बाहरके देश करते हैं।

सूरतें एक नई दमखमके साथ घेरी और गिरजी जाती हैं। अब तक रूपकी सुन्दरता कल्पनाके आदर्शसे सँवारी जाती थी अब इंसानकी हुबहू शक्लियत सूरतमें खोरने और ढालनेकी कोशिश होती है। चिपटा चेहरा गोलाकारसे अण्डाकार हो जाता है, सही आदमी जैसा। और असलकी नकल की जाती है। रूप कल्पनासे नहीं वास्तविकके नवसृजनमें निखर उठता है। स्वयं मूर्तिकलामें राष्ट्रीय क्रान्ति होती है और गान्धार शैलीके बुद्धकी संघाटी या ऊपरी पहनावेकी चुन्नटें धीरे-धीरे गायब हो जाती हैं, जिस्मानी लकीरें लिबासमे बाहर फूट निकलती हैं, लिबासकी धारियाँ जिस्ममें खो जाती हैं। बाल घुंघराले रखनेकी प्रथा चल पड़ती है और जिनके बाल घुंघराले नहीं होते वे बने हुए घूंघरदार केश सिरपर धारण करते हैं। कन्धोंपर लटकनेवाले इस प्रकारके घूंघरदार बाल गुप्तकालकी सूरतोंकी खास पहचान हैं। तबकी हजार-हजार मिट्टीकी सूरतें इन्हीं असल या बनावटी घुंघराले बालोंसे सजी उत्तर भारतकी खुदाइयोंमें मिली हैं, जिनसे हमारे अजायबघर भरे पड़े हैं। पीछेसे चिपटी इन मिट्टीकी सूरतोंको दीवारोंपर आजके चित्रोंकी तरह टाँग दिया करते थे। रूपकी खूबसूरतीके साथ गुप्तकालके कलावन्तोंने अपनी सुरुचिको भी खूब ही निखारा था।

गहनोंका इस्तेमाल गुप्तयुगसे पहले भी बहुत रहा था और पीछे तो व
जिस्म ढक ही जाने लगा, पर गुप्तकालके नागरिकोंने आभूषणको इस
नहीं अलंकार बनाया, स्वयं अलंकारकी स्तुति न की। सुरुचिसे चुने
कमसे कम गहने पहने जाने लगे और इन्हींसे तबकी मूरतें सज गईं।

मिट्टी और धातुकी ढली मूरतोंके अलावा पत्थरकी मूरतोंने तो कला
मैदानमें जहान जीत लिया। सारनाथकी छेनीसे जैसे कला जादू बन
बैठी और मूरतोंके अपरूपके नमूने कलावन्त सिरजते चले गये। मथु
और सारनाथ तबकी कलाके केन्द्र थे जहाँ एकसे एक सुन्दर मूरतोंक
सृजन हुआ। संसारके डरे जीवोंको निर्भय करती अभय मुद्रामें खड़ी मथुर
की प्रसिद्ध बुद्धकी मूर्ति संसारके पारखियोंके लिए आज भी दर्शनीय अच
रज है। ऐसे ही सारनाथकी बुद्धकी ध्यान मुद्रामें बैठी मूरत रुचि औ
दमखममें बेजोड़ है। गुप्तकालकी ऐसी सुन्दर मूर्तियोंको गिन सकना कठि
है। हर युगमें मूर्तियाँ बनी और उनकी भरी संख्यामें थोड़े-बहुत खूबसूर
नमूने मिल ही जाते हैं, पर अनन्त संख्यामें खूबसूरत मूरतोंकी इतनी बहु
तायत कभी नहीं देखी गयी जितनी गुप्तकालमें। धातुकी ढली मूरतोंम
भी एक बड़ी अदद गया जिलेसे मिली थी जिनकी सुघराई असाधारण है।
धातु ढालनेकी कलामें तो भारत तब इतना कुशल हो गया था कि देहलीके
पास मेहरौलीकी कुतुबकी लाटकी छायामें खड़ी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यकी
लोहेकी लाट एक हैरतकी चीज बन गई है। उसमें कुछ ऐसा लोहा लगा
है कि पन्द्रह सदियोंसे धूप और पानीमें खड़ी उस लाटमें कहीं जंग
न लगी।

भारतकी मूर्तिकलाका अगला युग मध्ययुग कहलाता है। इसका
विस्तार ६०० ई० से १२०० ई० तक है। कलाके इतिहासकारोंने इस
युगके भी दो हिस्से कर लिये हैं—(१) पूर्व मध्यकाल और (२) उत्तर
मध्यकाल। अफसोस कि इन युगोंसे सुरुचि और संयमकी खूबसूरती उठ
गई। इसमें शक नहीं कि इन युगोंमें भी अनेक बार कलाकारोंने जिस्मकी

जितनी उनकी जिस्मानी शक्सियत निराली है, उनकी भाव भगिमा और सजीवता निराली है।

दक्खिनके मन्दिरोंपर मूरतोंकी यह दुनिया और भी घनी सिरजी गई। पर बेशक उनका महत्त्व तनकी एकाकी सुघराई या भावोकी एकान्तिक गरिमामे नही, उनकी अनेकता और बहुलतामे है। पर वही बात नि सन्देह दक्खिनकी धातुकी मूरतोके सम्बन्धमें सही नही है। धातुकी मूरतें सचमुच वहाँ कुछ ऐसी ढाली गईं जिनकी सहजता और अनुपात आजके कलाकारको हैरतमे डाल देते हैं। इन धातुकी मूरतोंमे सबसे प्रसिद्ध और अचरजकी मूरत नटराजकी है जो संसारकी कलाके इतिहासमें अमर हो गई है। नटराज शिव बडे वेगसे कालपुरुषके ऊपर नाच रहे हैं, जिससे शून्य वातावरण जैसे घना होता गया है, जैसे ऊर्जा (एनर्जी) से द्रव्यकी घनता बढ़ती जा रही है। प्रतीकके रूपमे यह मूरत नि.सन्देह बेजोड है—सबको मारनेवाला काल जमीनपर औंधा पडा है और उसके ऊपर चढी ज़िन्दगी जगके शिव या कल्याणके रूपमे नाच उठी है।

भारतकी सिलसिलेवार मूर्तिकलाकी कहानी अब बारहवी सदीके बाद प्रायः खत्म हो जाती है। उसके बाद भी मन्दिरोका निर्माण होता है, उन मन्दिरोंमे मूरतें भी बनाकर पधराई जाती हैं, १२ वी-१४ वी सदीसे १८ वी सदी तक लगातार, पर उन मूरतोंमे अब न तो मौर्यकालकी शालीनता है न कुषाणकालकी जिन्दगी, न गुप्तकालकी सुरुचि, न मध्यकालकी दमखम।

यूरोपीय असरसे २० वी सदीमे भारतकी चित्रकला प्रभावित हुई। मूर्तिकला भी उस असरसे वंचित न रह सकी। नई शैलियोका प्रभुत्व जैसे चित्रकलापर छाया वैसे ही मूर्तिकलाकी जमीनमें भी पच्छिमकी अनेक कलमें लगी और आज भारतीय मूर्तिकलाकी गो अपनी परम्परा उतनी न रही, उसके नये प्रयोग बेशक दिलचस्प हैं।

विदेशोंमें भारतीय संस्कृतिका अध्ययन : १९

कुछ विश्वविद्यालयों और सरकारोंके निमंत्रणसे इधर दस महीन
विदेशोंमें घूमता रहा हूँ। इस सिलसिलेमें मुझे अनेक अमरीकी और यू
पीय देशोंका भ्रमण करना पड़ा है। उन्नीस सितम्बर सन् पचास अ
दस जून सन् इक्यावनके बीच मैंने अमरीकाके संयुक्त राष्ट्र और कैने
यूरोपके इंग्लैंड, नारवे, स्विडन, डेनमार्क, हालैंड, बेल्जियम, फ्रांस, स्वि
जरलैंड, इटली, यूगोस्लाविया और ग्रीस तथा अफ्रीकाके मिस्र आदि दे
का भ्रमण किया।

निमन्त्रणोंका उद्देश्य मुझसे भारतीय संस्कृतिके ऊपर कुछ सुनना
और मेरा अपना उद्देश्य इतिहास और संस्कृति सम्बन्धी अपने विचारो
विकास करना था। मानववादी राष्ट्रेतर इतिहास और संस्कृतियं
अन्तरावलम्बनपर इधर प्राय दस वर्षोंसे लिखता रहा हूँ। इस दृ
कोणको सहानुभूतिपूर्वक समझनेवाले साथियोंकी बड़ी आवश्यकता थी अ
इन आमंत्रणोंसे इस दिशामें मैंने लाभ भी काफ़ी उठाया।

इसके अतिरिक्त मेरा एक अभिप्राय विदेशोंमें स्थापित भारत
संस्कृतिपर अनुसंधान करनेवाली संस्थाओंको देखना-समझना भी था
अनेक विदेशोंमें भारतीय कला, इतिहास, पुरातत्त्व, संस्कृति आदि
खोज और छानबीन आज सौ-डेढ़-सौ वर्षोंसे हो रही है। पर उनमें प
स्पर किसी प्रकारका आदान-प्रदान नहीं, न सार्थक सम्पर्क ही है। इस
परिणाम यह हुआ है कि अनेक देशोंमें एक ही विषयपर एक ही दि
में खोज होती रही है। किसीको यह पता नहीं कि कहाँ कौन किस वि

पुस्तकें नहीं मिल पाती। यह शिकायत मुझसे अनेक विद्वानोंने अनेक देशोंमें की। अच्छा होता यदि हम इन संस्थाओंको भेजी जानेवाली पाठ्य-पुस्तकोंके सम्बन्धमें, विशेषकर विदेशी एक्सचेंजके सम्बन्धमें, कुछ रियायत करें।

स्टाकहोल्मके पास स्विडनका विख्यात विश्वविद्यालय उपशाला है जहाँ भारतीय विद्याओंका अध्ययन होता है। इसके अध्यक्ष अब कोपेनहेगेन विश्वविद्यालयमें डा० टुक्सनका स्थान लेने जा रहे हैं। डा० टुक्सन अत्यन्त वृद्ध हैं। रोगशय्यापर ही वे मुझे मिले और गिरती अथवा गिरी हुई भारतीय सांस्कृतिक शोधकी स्थितिपर दुःख प्रकट किया। कहा भी कि डेन्मार्कमें भारतके विषयमें बड़ी जिज्ञासा है और इस संबंधमें एक संस्था काम भी कर रही है, परन्तु खेद है कि भारत इस दिशामें विशेष सयत्न नहीं। मुझे इस संस्थाके अनेक कार्यकर्त्ताओंसे बादमें मिलनेका सुअवसर प्राप्त हुआ।

हॉलैण्डमें लाइडनका विश्वविद्यालय भारतीय विद्याओंके अध्ययन-अध्यापनमें विशेष सतर्क है। बौद्ध धर्मके प्रसिद्ध विचारक कर्न यहींके थे, और उनके कर्न-इन्स्टीट्यूटमें शोधका अच्छा कार्य हो रहा है। भारतीय पुरातत्त्वके प्रकाण्ड पण्डित सुबुद्ध फोगलका सम्बन्ध दोनोंसे है। भारतीय राजदूत डा० मोहन सिंह मेहताने लाइडनके अनेक विद्वानोंको अपने घरपर मुझसे मिलनेको निमन्त्रित किया और उनसे मालूम हुआ कि कर्न-इन्स्टीट्यूटका नये सिरेसे संगठन हुआ है।

फ्रान्समें भारतीय संस्कृतिके आज भी अनेक विद्वान् हैं। फूशे तो अत्यन्त वृद्ध हो चुके हैं, परन्तु अब भी उनकी जिज्ञासा प्रबल है। मुझे उनके घरपर ही मिलनेका, अवसर मिला। मैंडम फूशेको भारतीय वस्त्र-[illegible] ज्ञान है। सारबोन विश्वविद्यालयमें दिवंगत सिल्वा-[illegible] रनू हैं, जिनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी हैं। डा० जूल

आयु वृद्ध होते हुए भी अभी दृढ़ हैं। इन लोगोंके साथ भारतीय शोधके सम्बन्धमें अनुकूल चर्चा हुई।

फिनलैण्ड और स्वीडन आदिमें भी भारतीय ज्ञानका अनुशीलन किसी-न-किसी रूपमें जारी है। पर इस दिशामें विशेष प्रयास रोम विश्वविद्यालयके संस्कृत विभाग और भारतीय इन्स्टीट्यूटमें हुआ है। दोनोंके अध्यक्ष डा० तुची हैं। इन्होंने अपने कार्यकर्ताओंके साथ मेरा स्वागत किया और इस्ताम्बूलमें होनेवाले ओरियण्टल कांग्रेसमें प्राच्य अनुसन्धान सम्बन्धी मेरे प्रस्तावका समर्थन करनेका वचन दिया।

युगोस्लाविया और ग्रीसमें भारतीय संस्कृति सम्बन्धी कोई परिषद् नहीं। मैंने जब उनके विश्वविद्यालयोंमें अपने व्याख्यानमें बताया कि तीसरी सदी ईसा पूर्वके भारतीय सम्राट् अशोकने उनके देशमें पशु-मानव चिकित्सा-के केन्द्र बनवाये, तब मेरे श्रोताओंको बड़ा कुतूहल हुआ।

युगोस्लावियामें भारतके प्रति अत्यन्त सहानुभूति है। किसी देशमें भारतके विषयमें जाननेकी इतनी उत्कण्ठा मैंने नहीं देखी जितनी वहाँ। उस देशके पाँचों विश्वविद्यालयोंमें बोलनेका मुझे सौभाग्य हुआ और मैंने वहाँके अध्यापकोंको भारतके प्रति अत्यन्त जागरूक पाया। मैंने युगोस्लावियाके मन्त्रियोंसे विश्वविद्यालयोंमें संस्कृत हिन्दी पढ़ानेकी व्यवस्थापर बात-चीतकी और उन्होंने शीघ्र-से-शीघ्र इस दिशामें प्रयत्न करनेका वचन दिया।

संयुक्त राज्य अमेरिकामें प्राच्य विद्या सम्बन्धी शोधमें न्यूयार्कके प्रसिद्ध एशिया इन्स्टिट्यूटने प्रशंसनीय कार्य किया है। विएनाके प्रसिद्ध पण्डित डा० साइगर यहीं हैं और अवस्ता तथा वेदोंपर आज भी सतर्कतासे कार्य करते जा रहे हैं। मुझे इस संस्थामें अनेकबार व्याख्यान देनेका अवसर मिला। एक ऐसी ही संस्था सैन्फ्रान्सिस्कोमें भी स्थापित होने जा रही है।

विद्वत्परिषदोंके अतिरिक्त विश्वविद्यालयों और अजायबघरोंमें भी

पर खोज कर रहा है। अनेक वार लोगोंने एक ही विषयपर दोहरा काम किया है।

इसमे सन्देह नहीं कि इस प्रकारके चिन्तनसे भी एक लाभ होता है, यानी पिछली चीज़ोंकी जाँच हो जाती है और उनकी सचाईपर प्रकाश पड़ता है। परन्तु अधिकतर इससे समय और शक्तिका अपव्यय ही होता है। और इस प्रकारकी दोहरी खोज कुछ जानवूझकर स्वेच्छासे नहीं हुई वल्कि न जाननेके कारण हुई। कोई संस्था संसारमे इस दिशामें काम करनेवालोंकी शोधोंकी परस्पर जानकारी करानेवाली नही जिससे शोधकी दिशाएँ और क्षेत्र बाँट लिये जायँ। इससे इस क्षेत्रमे भी कुछ कार्य करना आवश्यक था, जिससे मेरा बाहर जाना हुआ।

भारतीय सस्कृतिके सम्बन्धमे काम करनेवाली सस्थाओंका विदेशोंमे एक जाल-सा बिछा हुआ है। और एक लम्बे अरसेसे ये सस्थाएँ बड़े परिश्रमसे हमारी सस्कृतिका अध्ययन करती रही हैं। यह सही है कि इनका दृष्टिकोण सदा सराहनीय नहीं रहा, परन्तु अपने अथक अध्यवसाय और उससे बढ़कर अपनी खोज-पद्धतिसे तो निश्चय इन्होंने हमारी संस्कृतिका असाधारण उपकार किया है और उसके अध्ययनके लिए पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत की है। इस काममें अनेक देशों, बीसियों सस्थाओं, पचासों पुराविदोंका योग रहा है।

मैं इस समय केवल उन्हींकी चर्चा करूँगा जिनके सम्पर्कमे मुझे अपने इस प्रवासमें काम करनेका अवसर मिला। ये सस्थाएँ विशेषकर तीन प्रकारकी—विश्वविद्यालय, सग्रहालय, विद्वत्परिषद् हैं।

अनेक विश्वविद्यालयोंमें भारतीय भाषाओं और सस्कृतिका अध्ययन-अध्यापन हो रहा है यद्यपि उसकी स्थिति इस काल उत्साहवर्धक नहीं है। अमरीका और यूरोपके विश्वविद्यालयोंमे इस अध्ययनकी मात्रा और गुण दोनोंमें काफी अवनति हुई है। हारवर्डका प्राचीन विश्वविद्यालय कभी भारतीय सस्कृतिके अध्ययनका केन्द्र था। वहाँ कभी प्रबल मेधावी

हिलमानने संस्कृत साहित्यके अनेक ग्रन्थोंका प्रकाशन किया था। उस पुस्तकोंकी सम्पूर्ण प्राच्य निधि आज नष्ट हो गई है, यद्यपि अब भी वहां भारतीय इतिहास और संस्कृतिके विभाग कायम हैं।

येल विश्वविद्यालयमें भी प्रोफेसर एडजर्टन, जिन्होंने डा० सुकथणकर को भारतमें महाभारतका पाठ शुद्ध करनेमें सहायता की थी, अच्छा काम कर रहे हैं। शिकागो, बर्कले आदिमें भी संस्कृतिके अध्ययनका साधारण इन्तजाम है यद्यपि उसकी विशेष सराहना नहीं की जा सकती। इधर फिलाडेल्फियामें डा० नार्मन ब्राउनकी अध्यक्षतामें पेन्सिल्वेनिया विश्वविद्यालयका दक्षिण-पूर्व एशियाका विभाग भरापूरा है। उसके पास द्रव्यकी प्रचुरता है। काश मेधा और लगनका भी उसमें योग होता!

यूरोपमें अनेक देश अपने दिवंगत पूर्वविदों द्वारा आरम्भ किये कार्यको यथासम्भव चला रहे हैं, यद्यपि यह कार्य वस्तुतः यथासम्भव ही है। आक्सफोर्ड और केम्ब्रिजमें यद्यपि वयोवृद्ध क्रमशः एफ० डब्ल्यू० और ई० जे० टामसोंका दुर्लभ योग है परन्तु लगता है वहाँ अथवा एडिनबरामें अब मैक्समूलर, मैक्डॉनल और कीथ के दिन नहीं लौटेंगे। कैंब्रिजमें डा० बेली अब भी सुदृढ़ हैं यद्यपि लन्दनके प्राच्य अध्ययन विभागका कार्य शिथिल पड़ गया है, फिर भी इस दिशामें कॉड्रिंग्टन और मार्टिमर ह्वीलरका कार्य सराहनीय है। मुझे अपने कार्यमें इनसे, दोनों टामसों और ब्रिटिश म्यूजियमके डा० बार्नेटसे पर्याप्त सहायता मिली। विशेषकर इतिहास जगत्के उस अद्वितीय नक्षत्र डा० ट्वायन्बीसे।

नार्वेके ओस्लो विश्वविद्यालयमें इस दिशामें सराहनीय कार्य हुआ है। प्रो० मार्गेन्स्टर्न हिन्दी-संस्कृतके अध्यक्ष हैं, स्टेनकोनोके स्थानापन्न। पहली मुलाकातमें इन्होंने मुझसे हिन्दीमें ही बात की। यह मुझे अच्छा लगा, क्योंकि अधिकतर हिन्दी-संस्कृत पढ़ानेवाले विदेशी विद्वान् इस संबंधमें कावा काट जाते हैं। स्टेनकोनो द्वारा स्थापित इण्डियन इन्स्टिट्यूटके मार्गेन्स्टर्न अध्यक्ष हैं। उनको भारतसे विशेष शिकायत यह है कि हिन्दीको

पुस्तकें नही मिल पाती। यह शिकायत मुझसे अनेक विद्वानोंने अनेक देशोंमें की। अच्छा होता यदि हम इन संस्थाओंको भेजी जानेवाली पाठ्य-पुस्तकोंके सम्बन्धमें, विशेषकर विदेशी एक्सचेंजके सम्बन्धमें, कुछ रियायत करें।

स्टाकहोल्मके पास स्विडनका विख्यात विश्वविद्यालय उपसाला है जहाँ भारतीय विद्याओंका अध्ययन होता है। इसके अध्यक्ष अब कोपेनहेगेन विश्वविद्यालयमें डा० टुक्सनका स्थान लेने जा रहे हैं। डा० टुक्सन अत्यन्त वृद्ध हैं। रोगशय्यापर ही वे मुझे मिले और गिरती अथवा गिरी हुई भारतीय सास्कृतिक शोधकी स्थितिपर दु.ख प्रकट किया। कहा भी कि डेन्मार्कमें भारतके विषयमें बड़ी जिज्ञासा है और इस संबंधमें एक संस्था काम भी कर रही है, परन्तु खेद है कि भारत इस दिशामें विशेष सफल नही। मुझे इस संस्थाके अनेक कार्यकर्त्ताओंसे बादमें मिलनेका सुअवसर प्राप्त हुआ।

हालैण्डमें लाइडनका विश्वविद्यालय भारतीय विद्याओंके अध्ययन-अध्यापनमे विशेष सतर्क है। बौद्ध धर्मके प्रसिद्ध विचारक कर्न यहींके थे, और उनके कर्न-इन्स्टीट्यूटमे शोधका अच्छा कार्य हो रहा है। भारतीय पुरातत्वके प्रकाण्ड पण्डित सुबुद्ध फोगलका सम्बन्ध दोनोंसे है। भारतीय राजदूत डा० मोहन सिंह मेहताने लाइडनके अनेक विद्वानोंको अपने घरपर मुझसे मिलनेको निमन्त्रित किया और उनसे मालूम हुआ कि कर्न-इन्स्टीट्यूटका नये सिरेसे संगठन हुआ है।

फ्रान्समें भारतीय संस्कृतिके आज भी अनेक विद्वान् हैं। फूशे तो अत्यन्त वृद्ध हो चुके है, परन्तु अब भी उनकी जिज्ञासा प्रबल है। मुझे उनके घरपर ही मिलनेका अवसर मिला। मैडम फूशेको भारतीय वस्त्र-स्थितिका असाधारण ज्ञान है। सारबौन विश्वविद्यालयमें दिवगत सिल्वां-लवीके स्थानापन्न डा० रनू हैं, जिनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। डा० जूल

ब्लाक वृद्ध होते हुए भी अभी दृढ़ हैं। इन लोगोंके साथ भारतीय शोधके सम्बन्धमें अनुकूल चर्चा हुई।

जिनीवा और ब्यर्न आदिमें भी भारतीय ज्ञानका अनुशीलन किसी-न-किसी रूपमें जारी है। पर इस दिशामें विशेष प्रयास रोम विश्वविद्यालयके संस्कृत विभाग और भारतीय इन्स्टीट्यूटमें हुआ है। दोनोंके अध्यक्ष डा० तूची हैं। इन्होंने अपने कार्यकर्ताओंके साथ मेरा स्वागत किया और इस्तम्बुलमें होनेवाले ओरिएण्टल कांग्रेसमें प्राच्य अनुसन्धान सम्बन्धी मेरे प्रस्तावका समर्थन करनेका वचन दिया।

युगोस्लाविया और ग्रीसमें भारतीय संस्कृति सम्बन्धी कोई परिषद् नहीं। मैंने जब उनके विश्वविद्यालयोंमें अपने व्याख्यानमें बताया कि तीसरी सदी ईसा पूर्वके भारतीय सम्राट् अशोकने उनके देशमें पशु-मानव चिकित्सा-के केन्द्र बनवाये, तब मेरे श्रोताओंको बड़ा कुतूहल हुआ।

युगोस्लावियामें भारतके प्रति अत्यन्त सहानुभूति है। किसी देशमें भारतके विषयमें जाननेकी इतनी उत्कण्ठा मैंने नहीं देखी जितनी वहाँ। उस देशके पाँचों विश्वविद्यालयोंमें बोलनेका मुझे सौभाग्य हुआ और मैंने वहाँके अध्यापकोंको भारतके प्रति अत्यन्त जागरूक पाया। मैंने युगोस्लावियाके मन्त्रियोंसे विश्वविद्यालयोंमें संस्कृत हिन्दी पढ़ानेकी व्यवस्थापर बात-चीतकी और उन्होंने शीघ्र-से-शीघ्र इस दिशामें प्रयत्न करनेका वचन दिया।

संयुक्त राज्य अमेरिकामें प्राच्य विद्या सम्बन्धी शोधमें न्यूयार्कके प्रसिद्ध एशिया इन्स्टिट्यूटने प्रशंसनीय कार्य किया है। विएनाके प्रसिद्ध पण्डित डा० गाइगर वहीं हैं और अवस्था तथा वेदान्तपर आज भी सर्वत्रासे कार्य करते जा रहे हैं। मुझे इस संस्थामें अनेकबार व्याख्यान देनेका अवसर मिला। एक ऐसी ही संस्था सैन्फ्रान्सिस्कोमें भी स्थापित होने जा रही है।

विद्वत्परिषदोंके अतिरिक्त विश्वविद्यालयों और अजायबघरोंमें भी

भारतीय मूर्तिचित्रण कलाओंका अध्ययन जारी है। न्यूयार्कके मेट्रोपोलिटन म्यूजियममें अमरावती आदिकी कुछ मूर्तियाँ और राजपूत, मुगल कलमके कुछ चित्र सुरक्षित है। अभाग्यवश इनका केटलग नही बना है। न्यूयार्क विश्वविद्यालयके आर्ट इंस्टिट्यूटमें भी भारतीय मूर्ति-कलाका शिक्षण होता है। परन्तु इस दिशामे प्रशंसनीय कार्य बोस्टन म्यूजियममे हुआ है जिसको उस परम मेधावी भारतीय कुमारस्वामीकी सेवाएँ प्राप्त थी।

यूरोपमे भी इंगलैंडके ब्रिटिश म्यूजियम और पेरिसके म्यूजियमोंमे भारतीय कलाओंके संग्रह हैं। इन सग्रहालयोमें आज भी विशेष लगनके साथ भारतीय पुरातत्त्व और कलाका अध्ययन जारी है, यद्यपि निस्सन्देह पुरानी जिज्ञासा अब कुछ कमजोर पड गई है।

इस सदीके दूसरे चरणमे भारतीय सस्कृति तथा शोधके क्षेत्रमे विशेष कार्य नही हुआ है। वास्तवमें इस बीच इस दिशामें कार्य कम हुआ है और भारतकी ही भाँति विदेशोमे भी विद्वत्ताका ह्रास हुआ है। संस्कृतिकी चर्चा तो निस्चय थोडी-बहुत होती रही है परन्तु उसका विशुद्ध अनुशीलन, व्याख्या और विश्लेषण बहुत कम हुआ है।

विश्वविद्यालयोमें भी भारतीय दर्शनोंकी जो पाठ्यक्रममे पृथक् चर्चा होती है वह सर्वथा अदार्शनिक अर्थात् अतर्क्य होती है। पुरानी विवेकहीन पद्धतिमे काम हो रहा है और जग लगी उखडी लफ्फाजी दर्शनका स्थान ले रही है। संस्कृतिकी चर्चा, विश्लेपणात्मक संस्कृतिकी चर्चा, कही नही है।

भारतीय सस्कृति कितनी उदार, कितनी व्यापक, कितनी प्रगतिशील रही है, इसकी दृष्टि लोगोको बहुत कम हो पाई है। विविध जन-धाराओंका योग इतना किसी देशकी संस्कृतिको नही मिला जितना भारतको मिला है और इसी कारण भारत अपनी सार्वदेशिक सस्कृतिके सस्कारसे शान्तिके पथपर चल रहा है। इस ओर विचारकोंका ध्यान कम गया है। किस प्रकार कोरी, भ्रान्त और रिक्त राष्ट्रवादिताका अपने सांस्कृतिक आचरणमे

सदियों पार भारतने प्रतिवाद किया है यह आवश्यक सत्य जितना लोगोंके ध्यानमें आना चाहिए उतना नहीं आया है।

भारतीय संस्कृतिपर विदेशी पीठोंके कार्यको समन्वित करनेके अतिरिक्त इस भ्रमणसे मेरा एक उद्देश्य और था। वह था आधारभूत सांस्कृतिक एकताके विश्लेषण और अध्ययनके लिए भारतमें एक खोज-पीठ स्थापित करना। अधिकतर देशोंने, जिन्होंने मध्यपूर्वकी संस्कृतिका *अध्ययन किया है, भारतको उस अध्ययनके दायरेसे बाहर रखा है। मुझे* उन संस्थाओंके सामने यह स्थापित करते कठिनाई न हुई कि समकालीन भारतको उस दायरेसे बाहर रखना उन देशोंके इतिहासपर ही एकतान परदा डालना है। इस स्थितिको समझकर शिकागो ओरिएण्टल इन्स्टिट्यूट-ने भारतको भी अपने अन्वेषण क्षेत्रमें स्थान देना स्वीकार किया और हर्षकी बात है कि स्वदेश लौटनेपर उनके भेजे बहुमूल्य प्रकाशन मुझे उपलब्ध हुए।

पूर्वी देशोंमें इस चर्चासे अधिक लाभ हुआ। लेक-सक्सेसमें ही अरब-लीगके मन्त्री श्री अज्जाम पाशासे मेरा साक्षात् हुआ था और उन्होंने एशिया इन्स्टिट्यूटके एशियामें होनेकी सार्थकतापर जोर दिया। अपनी लीगकी ओरसे उन्होंने मुझे सातों अरब देशोंमें भ्रमण करनेको आमन्त्रित किया। बढ़ती गर्मीके कारण मैं अन्य अरब देशोंमें तो तब न जा सका परन्तु मिस्रमें कुछ दिन जरूर बिताये। मिस्रने भारत-मिस्रके सांस्कृतिक सम्बन्धको दृढ़ करनेमें बड़ी दिलचस्पी दिखाई। संस्कृतियोंका अन्तरावलम्बन उस अरब देशको बहुत रुचा।

और यह उचित ही था। संसारके इतिहासमें स्वयं अरबोंका सांस्कृतिक दान कुछ कम नहीं। कुछ हठमुल्के यूरोपीय इतिहासकारोंका मत है कि पोतिएकी लड़ाईमें जो अरब हार गये तो यूरोपका सर्वनाश होते-होते *बच गया। पर वे इस बातको भूलते हैं कि साथ ही यूरोप उनके स्पर्शसे* साक्षर भी हो गया क्योंकि जहाँ प्रकाशके प्रति पोपने पीठ कर ली थी वहाँ